मई–जून, 2016 वर्ष–2, अंक–5 मूल्य–30 रुपये

देस हरियाणा

ISSN 2454-6879

सामाजिक-सांस्कृतिक अभिव्यक्ति का मंच

कबिरा खड़ा बजार में लिये लुकाठी हाथ

ISSN 2454-6879

देसहरियाणा

सामाजिक-सांस्कृतिक अभिव्यक्ति का मंच

मई-जून 2016 वर्ष 2 अंक 5

पता : देस हरियाणा
912, सैक्टर-13, कुरुक्षेत्र
(हरियाणा)-136118

मो. : 94164-82156

Email : haryanades@gmail.com
desharyana@gmail.com

ISSN NO 2454 - 6879

चंदे की दरें :

व्यक्तिगत : एक वर्ष 175 रुपए
तीन वर्ष 500 रुपए

संस्था : एक वर्ष 400 रुपए
तीन वर्ष 1 हजार रुपए

आजीवन : पांच हजार रुपए

संरक्षक : दस हजार रुपए

ऑनलाईन भुगतान के लिए
बैंक खाता : देस हरियाणा,
इलाहाबाद बैंक कुरुक्षेत्र
खाता संख्या : 50297128780
IFS Code: ALLA0211940

लेखकों द्वारा उनकी रचनाओं में प्रस्तुत विचार एवं दृष्टिकोण उनके अपने हैं। सम्पादक की सहमति अनिवार्य नहीं। समस्त कानूनी विवादों का न्याय-क्षेत्र कुरुक्षेत्र न्यायालय होगा। सम्पादक एवं संचालन अव्यवसायिक एवं अवैतनिक। प्रकाशक, मुद्रक और सुभाष चंद्र की ओर से 912, सैक्टर-13, कुरुक्षेत्र, हरियाणा से प्रकाशित

इस अंक में

देख कबिरा रोया...

सुखिया सब संसार है, खावै और सोवै
दुखिया दास कबीर है जागै और रोवै

कबीर ने झूठ के घटाटोप को भेदकर सच्चाई को पा लिया था, इसलिए उनको 'रोना' इस बात पर आता था कि जिस आवाम की मेहनत से दुनिया रोशन है, उसकी हालत सबसे पस्त है। उन्होंने जान लिया था कि श्रम का और मनुष्यता का गहरा संबंध है। मनुष्य का शारीरिक से लेकर सांस्कृतिक तक समस्त विकास श्रम की संबंद्धता से ही संभव हो सका है। श्रम की गरिमा ही असल में मानवीय गरिमा है। श्रम के अवमूल्यन का मतलब है मनुष्य और उसकी मनुष्यता का अवमूल्यन। श्रम के प्रति सम्मान किसी समाजार्थिक-व्यवस्था के अच्छे या बुरे चरित्र की कसौटी है।

देश की जो तरक्की दिखाई दे रही है उसमें श्रमिकों के पसीने की गंध है, लेकिन वह दयनीय हालात में जीवन जी रहा है। एक तरफ धन के अंबार लगे हुए हैं, दूसरी तरफ श्रमिकों की बस्तियों में घोर दरिद्रता व अभावों का पसारा है। एक तरफ 'विकास' का आथू आ रहा है, दूसरी तरफ श्रमिकों के जीवन-सत्व को इस 'विकास' ने चूस लिया। एक तरफ लोग अपनी ही चर्बी तले दबे जा रहे हैं, दूसरी तरफ श्रमिकों के शरीर कंकाल में तब्दील हो रहे हैं। श्रमिकों के ये हालात प्राकृतिक विपदा नहीं हैं, बल्कि व्यवस्था के संस्थागत शोषण के कारण हुई है। रोजगार व सुरक्षा के जो अधिकार स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान अथवा उसके बाद श्रमिकों ने संघर्ष से प्राप्त किए थे, उनको शासन-व्यवस्था देश के विकास के नाम पर छीन रही है।

हरियाणा में भी श्रम कानूनों में ऐसे बदलाव हुए हैं जिनमें जहां चालीस से कम लोग काम करते हैं उसे कारखाना मानने से ही इंकार है। 300 की संख्या में कार्यरत श्रमिकों वाले कारखाने को मालिक अपनी मर्जी से बंद कर सकता है। 50 से कम श्रमिकों के लिए ठेकेदार को लाईसेंस की आवश्यकता नहीं है। इनसे शोषण को बढ़ावा मिल रहा है और श्रमिकों की सामाजिक सुरक्षा धराशायी हो रही है।

स्थानीय स्तर पर रोजगार संकट के कारण लोग रोजगार की तलाश में विस्थापित होने पर विवश हैं। प्रवासी मजदूर लेबरबाड़ों में इतनी सी जगह लेकर रह रहे हैं, कि अपनी शिफ्ट में वे नींद के लिए अपना शरीर फैला सकें। अकूत मुनाफा कूटने के लिए मालिकों को मजबूर कमजोर वर्क-फोर्स चाहिए। जिससे जितना मर्जी काम लिया जा सके, उसका वेतन मार लिया जा सके, इसलिए प्रवासी मजदूर की बेबसी को भुना रहे हैं। स्मार्ट सिटी पर तो पूरे तंत्र की ताकत लग रही है, लेकिन लेबर कालोनी की उसमें कोई जगह नहीं है।

विकास का महात्म्य गाते विकास-पट्ट श्रमिक को चिड़ा रहे हैं। मानो वह देश का हिस्सा ही न हो। क्या कभी ऐसे पट्ट लगेंगे जिस पर गांव-मोहल्ले-कस्बे की समस्याएं लिखी हों, जो हरेक को संकट-समस्याओं के बारे में चेताए। सही है कि शासक अपनी लस्सी को खट्टा क्यों कहेंगे, लेकिन क्या लोग ऐसा कर पायेंगें। 'सारी दुनिया मांगने' के गीत गाने वाला श्रमिक-आंदोलन आज रोटी के लिए नहीं, बल्कि रोटी की एक बुरकी के लिए लड़ रहा है। कार्ड प्राप्त करना ही एक उपलब्धि के रूप में देखा जाने लगा है।

1 मई दुनिया की श्रम-शक्ति का वो पर्व है, जब वह अमेरिका के उन मजदूरों से प्रेरणा प्राप्त करके विकास में अपना योगदान आंकती है और अपने संघर्षों का मूल्यांकन करती है। श्रमिकों के संघर्ष सिर्फ अस्तित्व मूलक नहीं, बल्कि मानवीयता को स्थापित करने के संघर्ष हैं। मई दिवस की परंपराओं को सिर्फ औद्योगिक मजदूरों को ही नहीं, बल्कि किसानों को भी अपनाने की जरूरत है। वैश्विक पूंजीवाद के क्रूर पैर मजदूर और किसान दोनों की हथेली को कुचल रहा है।

अनाज की कोठियां भरने वाला किसान आज खुद अपने पेट में दाना डालने के जुगाड़ के लिए सड़कों पर है। आजादी के बाद भारत के सकल घरेलु उत्पाद में कृषि की हिस्सेदारी 54-55 प्रतिशत थी, जो 2012-13 तक आते-आते घटकर 13 प्रतिशत रह गई। जबकि कृषि में देश की 60 प्रतिशत से अधिक आबादी रोजगार प्राप्त करती है। इसका अर्थ है कि खेती से रोजगार प्राप्त करने वाली 60 प्रतिशत आबादी की आमदनी केवल 13 प्रतिशत है। यह आंकड़ा किसानी पर घोर संकट को रेखांकित करने के लिए काफी है।

जब किसान का ही कचूमर निकल रहा है तो खेती में सबसे निचले पायदान पर स्थित खेत-मजदूर की हालात का अनुमान लगाना कोई राकेट साईंस नहीं है। सफेद मक्खी फसलों को चट्ट कर दे या सूखा-बारिस से फसलें तबाह हो जाए। फसलों की तबाही का असर सिर्फ किसान पर नहीं बल्कि मजदूर पर भी होता है। मंहगाई ने दाल-रोटी या गंठा-रोटी के मुहावरे से दाल-गंठा तो बाहर कर ही दिया है, अब संकट रोटी व पानी पर मंडरा रहा है।

अपने संकट को टालने के लिए किसान सरकारी नौकरियों में आरक्षण के लिए तड़प रहे हैं, और आरक्षण को ही किसानी-संकट के निदान के तौर पर देख रहे हैं। आरक्षण के इस शोर में रोजगार की बात गुम हो रही है। सरकारी क्षेत्र में जब नौकरी निरंतर घट रही हैं।

हरियाणा प्रदेश बनने के पचासवें साल में होना तो चाहिए था--पिछले पचास सालों में खोये-पाये का लेखा-जोखा, सामाजिक-सांस्कृतिक तरक्की का हिसाब-किताब। लेकिन यहां हिसाब लगाना पड़ रहा है कि आरक्षण प्राप्त करने के संघर्ष के दौरान कितने हजार करोड़ की संपत्ति स्वाहा हो गई।

लोग कहने लगे हैं कि वे वहीं पहुंच गए, जहां से शुरु किया था, लेकिन हमारे शासकीय नीति-निर्माता व सूरजमुखी के फूल सरीखे बुद्धिजीवी समस्याओं की पूंछ पकड़ते हैं और अमूर्त शब्दावली में एक रहस्य का निर्माण करता है। ये बुद्धिजीवी विकसित देशों द्वारा फेंके गए सोच के कूड़े के ढेर में से खाली डिब्बे-बोतलें चुनकर समाधान के तौर पर पेश कर रहा है। लेकिन विकास की हुआं-हुआं का शोर करके भी वे व्यवस्था की सच्चाई को ढक नहीं पा रहे।

कबीर ऐसे दार्शनिक लेखक हैं, जिंहोंने अपने समय के अंतविर्रोधों को अभिव्यक्ति दी। सामाजिक भेदभाव, धार्मिक पाखण्ड के खिलाफ लोगों को जागृत किया। वे साम्प्रदायिक सद्भाव की मिसाल बनकर उभरे। कबीर ने समस्याओं का रहस्यीकरण नहीं किया था, बल्कि उनको ठोस व लौकिक धरातल पर ही परखा। जातिगत घृणा व साम्प्रदायिकता के परिवेश में कबीर एक ऐसे लेखक हैं जिनमें समाज की संवेदना को जगाने की क्षमता है।

सामाजिक भेदभाव, साम्प्रदायिक घृणा, धार्मिक पाखंड, सामाजिक लिंगभेद के बरक्स सामाजिक सद्भाव, साम्प्रदायिक सौहार्द, धार्मिक सहिष्णुता तथा लैंगिक संवेदनशीलता की स्थापना के लिए काशी के इस जुलाहे की चेतना को धारण करने की जरूरत है।

इस अंक में कबीर पर विशेष सामग्री दी गई है, जिसमें कबीर साहित्य मर्मज्ञ विद्वान डा.सेवा सिंह का विशेष आलेख है जो कबीर वाणी में ब्राह्मणवादी विचारधारा से संघर्ष के विभिन्न बिंदुओं को उद्घाटित करता है। साथ कबीर के लोकप्रिय व प्रासंगिक पद दिए गए हैं।

खेत मजदूरों के जीवन संघर्ष तथा विभाजन पर केंद्रित कहानियां हैं। असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों की दशा को व्यक्त करता मुकेश कुमार तथा विकास की दौड़ में पीछे छूट गए समुदायों पर अरूण कैहरबा का लेख है।

कुलदीप कुणाल,रोजलीन, रमणीक, अनुराधा बेनीवाल, हरनाम सिंह, भूप सिंह भारती, संतराम उदासी की कविताएं, सुरेन्द्र गाफिल की गजलें तथा मुनीशवर देव, राजेश दलाल की रागनियां अपने समाज की विभिन्न सच्चाइयों को अपने में समेटे हैं। प्रदेश में आगजनी-हिंसा के दौरान पीड़ितों के अनुभवों व हालात पर सुरेंद्रपाल सिंह और सुधीरमणीक के खाके तथा रामधारी खटकड़ की रागनी है।

आजादी मेरा ब्रांड की लेखिका अनुराधा बेनीवाल के साथ कुरुक्षेत्र विवि में जीवन्त संवाद की पूरी कार्रवाई है। शहीद भगतसिंह के बनने की पृष्ठभूमि के साथ क्रांतिकारी घटनाओं को अपने में समेटे हुए प्रो. जगमोहन का वक्तव्य है। शिक्षा में मूल्यांकन के सवाल पर लेख है, धमाचौकड़ी में मगजपच्ची के लिए हरियाणा की पहेलियां हैं। महिला-दिवस, शहीदी-दिवस, जोतिबा फुले व आंबेडकर जयंती पर विभिन्न स्थानों पर हुए कार्यक्रमों की संक्षिप्त रिपोर्ट है।

'तेरा चुन्न तेरा पुन्न' के भाव के साथ अंक जैसा भी है अब आपके समक्ष है। आपकी प्रतिक्रियाओं की पत्रिका को स्वरूप देने में महत्वपूर्ण भूमिका है।

-सुभाष चंद्र

-अपील-

देस हरियाणा सामाजिक-सांस्कृतिक पत्रिका है। पूर्णतः अव्यवसायिक, अवैतनिक पत्रिका है, जिसे किसी तरह का अनुदान प्राप्त नहीं होता है। यह पूर्णतः पाठकों तथा पत्रिका सहयोगियों के संसाधनों से प्रकाशित होती है।

रचनाकारों, सामाजिक कार्यकर्त्ताओं से विशेष अनुरोध है कि पाठकों को पत्रिका से जोड़ें। पत्रिका के लिए अपने शहर में बिक्री का स्थान चिन्हित करके सूचित करें, ताकि पत्रिका पहुंचाई जा सके।

रचनाकारों से निवेदन है कि अपनी रचनाएं भेजें। यूनिकोड, चाणक्य, कृतिदेव फोंट में ईमेल द्वारा सामग्री भेजें तो सुविधा होगी

जब छोरे गाभरू होंगे

प्रभात सिंह

ताजा लेकर खाने वाले मजदूरों व गरीब किसानों के लिए भादवे का महीना तेरहवां महीना होता है। जहां खाते-पीते लोग सावण-भादवे में घूम-घूम कर आ रहे बादलों का आनन्द ले रहे होते हैं, वहीं मजदूरों को इस अभावग्रस्त समय में उधार लेने के लिए भी दर-दर की ठोकरें खानी पड़ती हैं। इस मौके पर कहीं किसी को पांच रुपए सैंकड़ा भी मिल जाए, तो वह अपने-आपको बड़ा भाग्यशाली मानता है। कितने ही लोगों को खेत से घास-फूस चारा आदि लाने के लिए बेगार भी करनी पड़ती है।

रामफल अपनी पत्नी के साथ चिंता में बैठा सोच रहा है। पूरे घर में कुल मिलाकर रसोई समेत कच्ची ईंटों के दो ही कमरे हैं। रसोई की छत बुरी तरह से टूट चुकी है। बरंगों से घास निकला हुआ है। थोड़ी सी बूंद भी अंदर बर्तनों पर आ गिरती है। पास में ही दो बकरियां बंधी हुई हैं, जिनके मिंगण रहने वाले कमरे में ही सीधे आ जाते हैं। कमरे का लेवल भी काफी नीचा है। बरसात शुरू होने पर एक आदमी को तो दरवाजे से नाव की तरह पानी उलीच-उलीच कर बाहर करना पड़ता है। उस रोज आठम का दिन था। रामफल की बेटी गुड्डी ने व्रत रखा हुआ था। उसके लिए कोई फल वगैरा का प्रबंध नहीं था। कुछ बच्चे जो इधर-उधर खेल रहे थे। मन ही मन खुश हो रहे थे कि बहन के व्रत के लिए फल आएंगे तो उन्हें भी कुछ न कुछ तो मिलेगा ही। जहां सभी अपने बच्चों की सेहत को देखकर खुश होते हैं, वहीं रामफल और उसकी पत्नी को अपनी बेटी का दूज के चांद की भांति हो रहा शारीरिक विकास डरावना सा लग रहा था। बेटी के स्याणे होने की चिंता उन्हें घुन की तरह खाए जा रही थी। धर्म चंद जब अगली आगल हटा, उनके पास आकर राम-राम कहता है, तब जाकर कहीं चिंतामग्न बैठे दम्पति का ध्यान भंग होता हैं।

राजी खुशी, चाय-पानी की औपचारिकताएं पूरी होने पर धर्मचन्द ने पूछा, 'क्यों भाई के बात सै, किस चिंता में डूब रहे सो?'

'धर्म चन्द तने बेरा ए सै, जिसके घर मैं छोरी स्याणी हो ज्या, उसने इसतै न्यारी के चिंता हो सै। बस कोए हाण-जोड़ का बालक मिल ज्या, अर कोई सीधा-साधा परिवार मिलज्या, तो लड़की के हाथ पीले कर द्यूं। दो डांकले भी पढ़ रह्या सै वो भी मुंह बावै सै। जुगाड़ क्यां ए का सै नहीं, अर जमाना खराब आ रह्या सै। जै हो ज्या किसी ए दिक्कत तो कोण से कुएं मैं पड़ांगे। इस चिंता मैं बालकां की मां भी दो साल तै अपणे पीहर नहीं गई।'

इस पर धर्म चन्द ने काफी देर चुप रहकर पूरा विचार करके सलाह दी, 'रामफल। बात या सै। जमाने में जड़ै माड़े लोग होंगे ओड़ै या सोचण आले भी कम नहीं अकै किसे कै लिए दियै तै के हो सै? औरत मर्द सब बराबर हो सैं। ना तो दहेज लेणा चाहिए, ना ए देणां चाहिए। आजकल इसी शादी जगां-जगां हो रही सैं। मेरा तो एक तजुर्बा सै, जो शादी विचार मिलने तै होवै सै, उसका कोई मुकाबला नहीं होन्दा। ये शादियां सुथरी ढाल निभदी देखी सैं और दूसरी तरफ रण सिंह नैं थारी आंख्या आगै ए डेढ़ लाख खर्च करे थे। ओ बटेऊ रोज दारू मैं धुत रह्या करदा अर लड़की की मारपीट भी होती रहै थी। दो साल होगे छोरी नै घरां बैठी नै। इसलिए भाई कोए ठीक विचारां का छोरा देख ल्यांगे अर एक रुपया लागण नहीं द्यां। छोरी जिंदगी भी सुख पावैगी।'

रामफल व उसकी घरवाली को यह बात सपने में भी नहीं जंची, परन्तु इस ओर ध्यान जरूर किया। दोनों ने विचार भी किया। अड़ोस-पड़ोस में जब चर्चा की तो सबनै कहा- 'भाई समाज मैं सारी चीज हो सैं। खर्च भी लगाणां पड़ैगा। के भूरी कीड़ी फिर रही सै। के दिक्कत आवै से, दो बीघे किसे के खूड फालतू पाड़ लियो।'

कई दिन तक वे इसी विचार में उलझ-पुलझ रहे। आखिर आस-पड़ोस का दबाव हावी रहा और रामफल ने गुड्डी का रिश्ता कर दिया। रिश्ता करते वक्त अगलों की भाषा से ही लग रहा था के शादी पर जरूरत से ज्यादा खर्च करना पड़ेगा।

इसके लिए पूरा विचार करने पर रामफल का ताऊ धन सिंह उसको पड़ोसी गांव के जमींदार रामसिंह के यहां लेकर चला गया। यह जमींदार बड़ा ही मक्खीचूस था। किसी की फसल का हिसाब नहीं देता था। इसके यहां जो भी कोई आया, कई-कई साल रोटी-सट्टे पर ही कमाकर पिंड छुड़ा पाया। अब इसके कोई भी खेती करने को तैयार नहीं था। इसलिए ज्यादा पेशगी केवल वही दे सकता था। पूरी बातचीत के बाद मालिक ने मजदूर का फायदा उठाते हुए उनके सामने शर्त रखी तथा बेगार और पेशगी का ब्याज रामफल को स्वीकार करना पड़ा। जब जाकर 17 हजार रुपए व उससे आगे बढ़कर पांचवें हिस्से पर खेती दी। रामफल का माथा तो उसी समय ठनक गया था, परन्तु अब तो उसे लड़की की

शादी से अलग कुछ भी नहीं दिखाई दे रहा था। उसके नाम की तो धरती पानी की भरी पड़ी थी।

रामफल ने लड़की की शादी पूरे धूमधाम से की। रिश्तेदार प्यारों से उठाकर पूरे 35 हजार शादी पर खर्च कर दिए। उसने पूरा जोर लगाकर जो दहेज दिया, अगले परिवार के लिए उसकी कोई उपयोगिता नहीं थी। केवल एक दो दिन अड़ोस-पड़ोस में यह चर्चा जरूर चली कि बड़ा अच्छा ब्याह कर्‌या सै। अगलों के घर बिजली का कोई प्रबंध नहीं था। कुछ दिन बाद वो बटेऊ टेलीविजन तो दारू वाले को उधार में दे आया और कूलर कई दिन तक तूड़ी में पड़ा रहा। उनको कहां कूलर के नीचे बैठने की फुर्सत थी। कुछ दिन बाद पूरे परिवार को समान बांधकर किसी जमींदार के यहां खेती करने जाना पड़ा। उधर रामफल एक कंजूस जमींदार के यहां फंस गया था। जमींदार राम सिंह जहां पूंजी का तीन रुपए सैंकड़ा ब्याज लगाता, वहीं हिसाब में हेराफेरी करता था। अनेक कलम फालतू चढ़ा देता था। फसल का पूरा हिसाब तो उसने आज तक किसी को दिया ही नहीं था। क्योंकि रामफल तो बुरी तरह फंसा हुआ था। इसलिए उसके साथ तो और भी बुरी बनी। उसको मालिक के पशुओं को भी चारा डालना पड़ता था। उसकी घरवाली का ज्यादातर समय पशुओं के गोबर कूड़े में ही बीत जाता था। यहां पर 'सीरी का बालक जितना घाम मैं बलै उतना ए आच्छा' वाली जमींदारों की कहावत पूरे तौर पर लागू होती थी। पूरे चौमासे में चेजी पर काम करना पड़ता था। खेत में मालिक उसके नाम की दिहाड़ी लगाता था। इस तरह ज्यों-ज्यों समय निकलता गया, मालिक का शिकंजा उस पर कसता चला गया। बच्चों तक की भी पिटाई होने लगी। पूरे परिवार को कहीं बाहर जाने व रिश्तेदारों पर भे उसने मिलने की पूर्णत: रोक लगा दी गई। इस परिवार की हालत जानवरों से भी बदतर एक बंधुआ मजदूर की तरह बना दी गई।

रामफल तीन साल पहले एक भट्ठे पर मजदूरी करता था, वहां पर तो एक मजबूत यूनियन थी, जिसने लंबे संघर्ष के बाद मालिकों की गुंडागर्दी व दमन पर पूर्णत: रोक लगा दी थी। लेकिन अब तो इस मालिक के शिकंजे से निकलने के सभी रास्ते बंद हो गए थे। एक रात इस कैद से छुटकारा पाने के लिए रामफल पूरे परिवार को खेत पर ही छोड़ कर निकल गया और बीस मील पैदल चलकर यूनियन के दफ्तर में पहुंच गया और सारी हालत यूनियन के प्रधान को बताई। यूनियन ने इसे लेकर कार्रवाई की और प्रशासन व पुलिस के सहयोग से जमींदार की ढाणी में पहुंचे। पहले तो मालिक ने गीदड़ धमकी दी, ताकि यह मजदूर उसके पंजों के नीचे से निकलने न पाए। क्योंकि पूरे इलाके में मजदूर आंदोलन के कारण पुलिस पर भी यूनियन का भारी असर था, इसलिए जमींदार के प्रति पुलिस को सख्त रुख अपनाना पड़ा। जमींदार राम सिंह ने उनको मुक्त करने के लिए एक लाख रुपए की शर्त रखी। काफी देर बहस के बाद पूरे मामले पर विचार करने व पूरा हिसाब करने के लिए गांव में तीन दिन बाद एक पंचायत रख दी गई।

उस दिन पंचायत शुरू होने से पहले गांव की चौपाल में जो नजारा मौजूद था, उससे पूरी की पूरी समाज व्यवस्था की पोल खुल रही थी। चौपाल में बिल्कुल सामने 15-20 कुर्सियां व चारपाइयां लगी हुई थीं। गांव के कुछ खाते-पीते लोग ही कुर्सियों पर बैठे थे। कुछ कुर्सियां खाली पड़ी थी। चारपाइयों पर पंगातों की तरह मैले कपड़े पहने जमींदार की बिरादरी के ही कुछ खेत मजदूर बैठे थे। वे अपने-आप को बराबर जरूर दिखाने की कोशिश कर रहे थे, परन्तु उन खाते-पीते लोगों की नजर में इनका कोई मायना नहीं था। कुर्सियां, चारपाइयां खाली होने पर भी हरिजन खेत मजदूर आकर नीचे ही जमीन पर बैठ रहे थे। पंचायत शुरू होने से पहले सभी जमींदार इस प्रकार एक स्वर में बोल रहे थे। मानो सलाह मिलाकर आए हों। मजदूरों में आ रही चेतना को निशाना बनाकर पुराने दिनों की दुर्दशा से तुलना करते हुए जली-बुझी सुना रहे थे। कुछ ही क्षणों में ऐसा माहौल बना दिया गया, मानो सारा कसूर मजदूर का ही हो। मजदूरों के एक हिस्से ने भी अपने मन में जंचा ली कि हम ही कसूरवार हैं।

ऐसी हालत में रामफल व उसके परिवार को पूरी तरह जंच गई थी कि इस पंचायत में उनकी कहने वाला कोई नहीं है। निराश होकर रामफल की घरवाली पंचायत में हाथ जोड़कर खड़ी हो गई और धर्मचंद की ओर मुंह करके कहा, 'देवर धर्मचन्द, मनैं इसा लागो सै, उरै गरीब की सुणनियां कोए कोन्या। हम ठहरे सारे के सारे अनपढ़, पढ़ण लिखण की तो कोए जाण नहीं, सो इब तो जो इना नै लिख राख्या सै, ओ ए सही मान्या जागा। अर असली बात तो या सै अक् इन तीन साला में नाज का तो नेम नहीं, बाकी कोए भी खर्चा कर्‌या हो तो पड़ौस में रहएिये उठ कै बतौ सकैं सैं। हामने इनके उतरे होए कपड़यां मैं टेम पास कर्‌या सै। उरै तो कदे रिश्तेदार-प्यारा नै भी चोपड़ी रोटी नहीं खाकै देखी और ना कदे खाली बैठ के देख्या। देश भर की पैदा होई सै, पर फेर भी मेरे समझ मैं या नहीं आंदी अक् यू कर्जा एक लाठी आगै क्यूं चाल्लै सै? दूसरी बात या सै अक् हम किसे का खाकै नहीं भाजणा चांहदे, एक-एक पीस्सा द्यांगे। ठीक हिसाब होंदा हो तो देख ल्यो, ना तो जो भी इना नै बणा राख्या सै भरांगे,' कहने-कहने उसकी आवाज रुआंसी हो गई।

वह हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाते हुए कहने लगी-'ज्यूकर भी हो, म्हारा इस नरक तै पैंडा छुटवा द्यो। आज तो म्हारै पै कुछ लेण-देण नै सै नहीं, मेरे बालकां का घर भरया सै, अर बड़ा छौरा 11 साल का सै। दो साल पाच्छे जब छोरे गाभरू हो ज्यांगे तो इन सबके नाम की भट्ठे पर ते पेशगी ले कै सारा कर्जा उतार द्यांगे।

पंचायत विधिवत् चलाने की बजाए खाते-पीते व प्रभावशाली लोग ही अपनी-अपनी चला रहे थे। जब गांव के सभी मौजिज आदमी इक्ट्ठा हो गए तो रामधन नंबरदार ने अपनी बातचीत शुरू करते हुए कहा-'यो गाम-राम बेठ्या सै, उरै दूध का दूध पाणी का पाणी होना चाहिए।'

सबसे पहले जमींदार राम सिंह ने अपने मुंह से फूल बिखेरने शुरू कर दिए। 'भाइयो मेरा इस रामफल तै कोए झगड़ा नहीं, इसकी काम करण की नीयत नहीं, अर यू मेरे पीस्से मार कै भाजणा चाहवै सै। उरै कोए हराम का माल थोड़ा ए सै। धौरै तै रकम काढ के दे राक्खी सै। मैं तो इन सब भाइयां कै बीच इसतैं न्यू पूछणा चाहूं सूं अक बिना मतलब इस गाम नै कट्ठा करकै मेरी बेइज्जती क्यूं कराई गई? और कोए बात नहीं, ये तो घणे सिर पै चढ़ा दिए। आज सारे कट्ठे होरें सां, इनका तो जरूर कोए न कोए राह बांधना पड़ैगा।'

इस बात पर यूनियन का प्रधान गुस्से में लाल-पीला हो गया और उसे बीच में ही रोककर कहने लगा, 'मेरी बात सुण भाई, फालतू तो बोलण की जरूरत नहीं, जिसे सबद ईब तूं कहण लागर्‌या सै तेरी सजा कराण नै तो यें ए भोत सै, अर दूसरी या सै अक् पंचायत में ही लेवांगे, हम उधार खाता कोन्या राख्या करते।' इस बात का समर्थन करते हुए सभी खाते-पीते लोगों ने कहा-'रकम तो उरै ए देणी पड़ैगी।'

धर्मचन्द व यूनियन का प्रधान भी कुर्सियों पर ही बैठे थे। प्रधान हरिजन परिवार में जरूर पैदा हुआ था, लेकिन यूनियन की गतिविधियों के कारण जो उसकी पहचान थी, उससे सभी लोग उसको सम्मान देने के लिए मजबूर थे।

इन दोनों ने आपस में बातचीत की और फिर प्रधान ने बोलना शुरू किया, 'ग्रामवासियो, सम्मानित सज्जनों व मेहनत करके खाने वाले मेरे मजदूर भाइयो और बहनों! जैसी हालत रामसिंह ने इस रामफल की कर राखी सै, हम चांहदे तो सीधा हाईकोर्ट की रेड मरवा सकां थे, या फिर यूनियन के दम पै जिला प्रशासन नै इसके खिलाफ कार्रवाई करण पै मजबूर कर सकां थे, जिसतै यो मजदूर परिवार भी मुक्त हो ज्यांदा, अर यो चौधरी भी जुण सा आड़ै भरी पंचायत में जाणे अणजाणे ये श्लोक सुणाग्या, आज उरै की बजाए जेल में होन्दा। पर भाइयो, हम एक जिम्मेदार ट्रेड यूनियन के कार्यकर्त्ता सां, इसलिए हम अपना पहला फर्ज यू ए समझ कै इस मालिक तै बातचीत करण खातर इस धौरै आए थे कि आसानी से समस्या सुलझज्या, लेकिन इसनै सीधे मुंह बात तक नहीं करी, इस कारण तै या पंचायत बुलाणी पड़ी। इब बात या सै, हमने हिसाब की या पूरी लिस्ट पढ़ ली। इसमें इसने ठीक जोड़ कर राख्या सै अक् हेराफेरी कर राख्याी सै या तो यू जाणे या इसका दे धर्म, पर इस लिखाई के मुताबिक यो हिसाब केवल खेती में सीर का सै। भरी पंचायत में मैं राम सिंह तै एक बात पूछणा चाहूं सूं अक् इसके डांगरां नै कौण नीरा करदा, गोबर-कूड़ा कोण करा करदा, अर इसके घर में कौण पाणी भरा करदा?'

इस पर धर्मचन्द को छोड़ कर कुर्सियों पर बैठे सभी लोग उछल पड़े और कहने लगे 'या भी कोए बात होई या तो सारे ए करैं सै, इसकी के चर्चा सै?'

इस पर प्रधान ने दोबारा बोलना शुरू किया और कहा, 'भाइयो, काम वही होगा, जिसमें सीर था। मजदूरां के बालकां नै कोए चौथे हिस्से का दूध थोड़ा ए दिया करदा। करे होए काम का एक-एक पैसा देणा होगा। इस पर मालिक लोग सहम गए। थोड़ी देर खुसर-फुसर के बाद नंबरदार खड़ा हुआ और कहने लगा,-'भाई प्रधान जी, पंचायती बण, इन बातों का के धन हो सै? बात नै बिचलावै ना बल्के सिरै चढ़ाण की कोशिश कर।'

कुछ देर माहौल में सुर-बुर सुर-बुर सी रही। उसके बाद धर्मचन्द और प्रधान ने मालिकों और मजदूरों की अलग-अलग राय ली। धर्मचन्द पैदा तो मध्यम वर्ग में हुआ था, परन्तु प्रगतिशील लोगों के साथ लंबे समय से जुड़े रहने के कारण वह हर इन्सान को बराबर समझता था। उसने बोलना शुरू किया, 'भाइयो! प्रधानजी नै जो बात कही सै, या तो सोलह आने सही, पर उरै मजदूर व मालिकां के आपस के तालमेल तै चाल्लें ए पार पड़ैगी। सारयां तै बातचीत करयां पाच्छै मैं तो एक निचोड़ पै पहुंचा सूं या तो इन मजदूरां के सारे के करे काम की दिहाड़ी द्‌यो या फेर इनके पूरी रकम का ब्याज नहीं लगणां चाहिए। इस बात से पूरा माहौल बदला हुआ नजर आया। हर बिरादरी के मजदूरों के चेहरों पर नई रोशनी सी दिखाई दे रही थी।

चारों तरफ बदले माहौल को मालिकों ने इशारों ही इशारों में भांप लिया। नंबरदार सभी जमींदारों व खाते-पीते लोगों को एक तरफ बुलाकर विचार करने लगे। जमींदार लोग जिन अपनी जाति के मजदूरों को अपने साथ लेकर आए थे अब वे भी उनकी तरफ जाने की बजाए चौपाल के एक कोने में जाकर खुसर-फुसर करने लगे। सभी मजदूरों में एक ही चर्चा थी, बात तो न्याय की सै, ना तै भाई पूरी जिंदगी आड़ै रोटी-सांटे पै ए कमाणा पड़ैगा।'

जमींदारों व खाते-पीते लोगों ने बदले माहौल में बड़ा ही सोच-समझ कर फैसला किया और नंबरदार ने सबके बीच में आकर सुनाते हुए कहा, 'भाइयो! अपणा फैसला सुणाणा तैं पहल्यां मैं दो बात कहूंगा, 'जै ये फंस ज्यां सैं तो आकै नै पैर पकड़ ले अर पांच रुपए सैंकड़ा ब्याज भी देण ने तैयार होज्यां सै। भरोटी-पूली, गोबर-कूड़ा, पाणी-पात ये तो सारे ए करैं सैं, अर भाई, ये तो आपणी-आपणी लिहाज की बात सै। इनके कोण तो पीस्से ले था, अर ना ए इसी चर्चा करके हामनै नया बखेड़ा खड़ा करणा चाहिए। तो भाइयों इब फैसला तो के सै बस आपणा मन समझाण आली बात सै। हामनै तो म्हारी सागी-सागी रकम दे द्‌यो ब्याज बिना ए सार ल्यांगे।

इस फैसले पर दोनों थोक सहमत हो गए और मजदूर का हिसाब-किताब जोड़ना शुरू कर दिया। हिसाब तो घर की बही अर काको लिखणियो।

मालिक ने जो-जो लिख कर दिया वही सही था। परन्तु जब शुरू से लेकर हिसाब लगाया तो मालिक की लिखाई के अनुसार ही मजदूर रामफल की लेणदारी जमींदार की तरफ 38 हजार में ही हिसाब चुकता करने की बात पंचायत में कह चुका था। कुल मिलाकर रामफल के ही तीन हजार रुपए मालिक की तरफ निकले। इनको लेकर नंबरदार बड़बड़ाया तो बहुत, लेकिन अब चारों तरफ माहौल ही कुछ ऐसा बन गया था और यूनियन का दबाव सिर पर था, इसलिए उसने अपनी जेब से तीन हजार रुपए निकाले और पंचायत में रख दिए।

ज्यों ही पंचायत खत्म हुई रामफल का सारा सामान लादे फोरव्हीलर चौक में पहुंच चुका था।

■

कहानी

रावी पार

गुलजार

पता नहीं दर्शन सिंह क्यूं पागल नहीं हो गया? बाप घर पे मर गया और मां बचे-खुचे गुरुद्वारे में खो गई और शाहनी ने एक साथ दो बच्चे जन दिए। दो बेटे, जुड़वां। उसे समझ नहीं आता था कि वह हंसे या रोये! इस हाथ लेने उस हाथ देने का सौदा किया था किस्मत ने।

सुनते थे आजादी आ चुकी है या आ रही है, टोडरमल कब पहुंचेगी पता नहीं चलता था। हिन्दू-सिख सब छुपते-छुपते गुरुद्वारे में जमा हो रहे थे। शाहनी दिन-रात दर्द से कराहती रहती थी। आखिरी दिन थे जचकी के और पहली-पहली औलाद।

दर्शन सिंह रोज नई-नई खबरें लाता था, फसादात की। बाप ढांढस देता।

'कुछ नहीं होगा बेटा, कुछ नहीं होगा। अभी तक किसी हिन्दू-सिख के मकान पर हमला हुआ क्या?'

'गुरुद्वारे पर तो हुआ है न भापा जी। दो बार आग लग चुकी है।'

'और तुम लोग वहीं जाकर जमा होना चाहते हो।'

इस बात पर दर्शन सिंह चुप हो जाता। पर जिसे देखो वही घर छोड़ कर गुरुद्वारे में जमा हो रहा था।

'एक जगह इकट्ठा होने से बड़ा हौसला होता है भापाजी। अपनी गली में अब कोई हिन्दू या सिख नहीं रह गया। बस हमीं हैं अकेले।'

दस-पंद्रह दिन पहले की बात थी, रात के वक्त भापाजी के गिरने की आवाज हुई, आंगन में और सब उठ गए। दूर गुरुद्वारे की तरफ से 'बोले सो निहाल।' के नारे सुनाई दे रहे थे। भापाजी की उसी से आंख खुल गई थी और वह छत पर देखने चले गए। सीढ़ियां उतरते पांव फिसला और बस आंगन में पड़ी कुदाल सर में घुस गई थी।

किसी तरह भापाजी के संस्कार पूरे किए और जो कुछ मालियत थी, एक कमरे में भरी और बाकी तीनों ने गुरुद्वारे में जाकर पनाह ली, गुरुद्वारे में खौफजदा लोगों की कमी नहीं थी, इसलिए हौसला रहता था, अब उसे डर नहीं लगता था। दर्शन सिंह कहता-

'हम अकेले थोड़े ही हैं, और कोई नहीं तो वाहेगुरु के पास तो हैं।'

नौजवान सेवादारों का जत्था दिनभर काम में जुटा रहता। लोगों ने अपने-अपने घरों से जितना भी आटा, दाल, घी था उठवा लिया था। लंगर दिन-रात चलता था, मगर कब तक? यह सवाल सबके दिलों में था। लोग उम्मीद करते थे कि सरकार कोई कुमुक भेजेगी।

'कौन सी सरकार' एक पूछता 'अंग्रेज तो चले गए।'

'यहां पाकिस्तान तो बन गया है, लेकिन पाकिस्तान की सरकार नहीं बन पाई है अभी।'

'सुना है मिलिट्री घूम रही है, हर तरफ और अपनी हिफाजत में शरणार्थियों के काफिले बॉर्डर तक पहुंचा देती है।'

'शरणार्थी? वह क्या होता है।'

'रेफ्यूजी'

'यह लफ्ज़ पहले तो कभी नहीं सुने थे।'

दो-तीन परिवारों का एक जत्था जिनसे दबाव बर्दाश्त नहीं हुआ निकल पड़ा।

'हम तो चलते हैं, स्टेशन पर सुना है ट्रेन चल रही है। यहां भी कब तक बैठे रहोगे?'

'हिम्मत तो करनी पड़ेगी भई! वाहेगुरु मोढ़ों (कंधो) पर बिठाकर तो नहीं ले जाएगा ना।'

एक और ने गुरुबाणी का हवाला दिया।

'नानक नाम जहाज है, जो चढ़े सो उतरे पार।

कुछ लोग निकल जाते, तो खला का एक बुलबुला-सा बन जाता माहौल में। फिर कोई और आ जाता तो बाहर की खबरों से बुलबुला फूट जाता।

'स्टेशन पर तो बड़ा कैंप लगा हुआ है जी।'

'लोग भूख से भी मर रहे हैं और खा-खा के भी! बीमारी फैलती जा रही है।'

पांच दिन पहले एक ट्रेन गुजरी थी यहां से, तिल रखने को भी जगह नहीं थी। लोग छतों पर लदे हुए थे।

सुबह संक्रांत की थी। गुरुद्वारे में दिन-रात पाठ चलता रहता था। बड़ी शुभ घड़ी में शाहनी ने अपने जुड़वां बेटों को जन्म दिया। एक तो बहुत ही कमजोर पैदा हुआ। बचने की उम्मीद भी नहीं थी, लेकिन शाहनी ने नाभि के जोर से बांधे रखा उसे।

उसी रात किसी ने कह दिया।

'स्पेशल ट्रेन आई है, रेफ्यूजियों को लेने, निकल चलो।'

एक बड़ा सा हुजूम रवाना हो गया गुरुद्वारे से। दर्शन सिंह भी। शाहनी कमजोर थी बहुत लेकिन बेटों के सहारे चलने को तैयार हो गई। मां ने हिलने से इन्कार कर दिया।

'मैं आ जाऊंगी बेटा! अगले किसी काफिले के साथ आ जाऊंगी। तू बहू और मेरे पोते को संभाल के निकल जा।'

दर्शन सिंह ने बहुत जिद्द की तो ग्रंथी ने समझाया। सेवादारों ने हिम्मत दी।

'निकल जाओ सरदारजी। एक-एक करके बस बॉर्डर पार पहुंच जाएंगे बीजी हमारे साथ आ जाएंगी।'

दर्शन सिंह निकल पड़ा सबके साथ। ढक्कन वाली एक बंत की टोकरी में डाल के बच्चों को यूं सर पे उठा लिया जैसे परिवार का

खोंचा लेकर निकला हो।

स्टेशन पर गाड़ी थी, लेकिन गाड़ी में जगह नहीं थी। छत पर लोग घास की तरह उगे हुए थे।

बेचारी नई-नई नहीफ-व-नजार मां और नोजाइदा बच्चों को देखकर लोगों ने छत पर चढ़ा लिया और जगह दे दी।

करीब दस घंटे बाद गाड़ी में जरा सी हरकत हुई। शाम बड़ी सुर्ख थी लहूलुहान, तपा हुआ, तमतमाया हुआ चेहरा। शाहनी की छातियां निचुड़ कर छिलका हो गयीं। एक बच्चे को रखती तो दूसरा उठा लेती। मैले-कुचेले कपड़ों में लिपटे दो बच्चों की पोटलियां, लगता था किसी कूड़े के ढेर से उठा लाए हैं।

कुछ घंटों बाद गाड़ी रात में दाखिल हुई तो दर्शन सिंह ने देखा एक बच्चे के हाथ-पांव तो हिलते दिख रहे थे, कभी-कभी रोने की आवाज भी होती थी, लेकिन दूसरा बिल्कुल साकित था। पोटली में हाथ डालकर देखा तो कब का ठंडा हो चुका था।

दर्शन सिंह जो फूट-फूट के रोया, तो आसपास के लोगों को भी मालूम हो गया। सबने चाहा कि शाहनी उस बच्चे को लें, लेकिन वह तो पहले ही पथरा चुकी थी। टोकरी को झप्पा मार के बैठ गई।

'नई, भाई के बगैर दूसरा दूध नहीं पीता।'

बहुत कोशिश के बावजूद शाहनी ने टोकरी नहीं छोड़ी।

ट्रेन दस बार रूकी, दस बार चली।

लोग अंधेरे में अंदाजे ही लगाते रहते।

'बस जी खैराबाद निकल गया।'

'यह तो गुजरांवाला है जी।'

बस एक घंटा और। लाहौर आया कि समझो पहुंच गए हिन्दुस्तान जोश में लोग नारे भी लगाने लगे थे।

'हर हर महादेव।'

'जो बोले सो निहाल।'

गाड़ी एक पुल पर चढ़ी, तो लहर सी दौड़ गई।

'रावी आ गया जी।'

'रावी है। लाहौर आ गया।'

इस शोर में किसी ने दर्शन सिंह के कान में फुसफुसाकर कहा।

'सरदारजी! बच्चे को यही फैंक दो रावी में उसका कल्याण हो जाएगा। उस पार ले जाके क्या करोगे?'

दर्शन सिंह ने धीरे से टोकरी दूर खिसका ली। और फिर यकलख्त ही पोटली उठाई और वाहेगुरु कहकर रावी में फैंक दी।

अंधेरे में हल्की सी आवाज सुनाई दी किसी बच्चे की। दर्शन सिंह ने घबराकर देखा साहनी की तरफ। मुर्दा बच्चा शाहनी की छाती से लिपटा हुआ था! फिर से एक शोर बगाला उठा-

'वाघा! वाघा!'

'हिन्दुस्तान जिन्दाबाद!'

राजेश दलाल की रागनी

धरती बिन कोये धरती कारण धरै गये धार पै
भूखमरी की भेंट चढे कोये धन की मारो-मार पै

भूमि बिना बेचारा होज्या ना हो ठेल-ठिकाणा-ठोस
दो गठड़ी पै हांड होज्या पांच-सात-दस-बारहा कोस
पाड्या पड़ाया न्यार फैंक दे दाती-पल्ली लेवैं खोस
क्यूकर डाटै झाल बदन की उठ जोर सुनामी जोश
पटक-पटक सिर रोणा हो सै इस बे-तुकी हार पै
वो भी चाहवै फोरड़ रिंगै ट्रेलीयां की लार पै

भूमिहीन तै मरे सो मरे धरती आळे भी हुऐ बिराण
मां-जायां के चलैं मुकदमें, हक तै बाहर बिठा दी बाहण
बाप काट दिया कस्सी तैं कितै मारैं गंडासी लहू-लूहाण
शास्त्री का नारा डोब्या जय जवान जय किसान
हथकड़ी लग्या पूत का फोटो फस्ट पेज अखबार पै
भाई चारे न छुटा लिया फेर दाब दई सरकार पै

भूखमरी का रोग सूखणा जिसकै लागै वो जाणै
आंख्यां आगै बाळक बिळकैं के हालात ल्हको जाणै
आसंग और आसार खत्म हों माणस करणा छोह जाणै
मामूली बिमारी भी अड़ै काळ की घण्टी हो जाणै
लाडो पड़ी बेहोश थी उसकी एक सो तीन बुखार पै
भाजै लूज कै ले कै आया दो सौ रूपये यार पै

पांचो आंगळी घी मैं जिनकी वे भी कहरे हाय मरगे
माया ठगणी जोर जमा गी नीत कोबळी करगे
दो नम्बर के अड्डे-सड्डे सारै ठइये धरगे
माल गोदाम बैंक सड़ै सै लूट-लूट कै भरगे
इब किस पार्टी का टिकट लेवां आज मीटिंग इस विचार पै
राजेश कह लात मारद्यो इसां के रोजगार पै

मो: 90504-81121

पोथी पढ़ पढ़ जग मुआ, पंडित भया न कोय।
ढाई आखर प्रेम का, पढै सो पंडित होय।।

कबिरा खड़ा बजार में, लिए लुकाठा हाथ।
जो घर फूकै आपना, चलै हमारे साथ।।

कबीर

मई दिवस की कहानी

हावर्ड फास्ट

यह एक कहानी है

....लेकिन आप सभी लोगों के लिए नहीं! आप में से केवल उन लोगों के लिए जो जीवन से प्यार करते हैं और जो आजाद आदमी की तरह जीना चाहते हैं। आप सभी के लिए नहीं, बल्कि उन लोगों के लिए जो नाइंसाफी और गलत चीजों से नफरत करते हैं, जिन्हें भुखमरी, कंगाली और बेघर होना अच्छा नहीं लगता। उन लोगों के लिए जो याद करते हैं। उन एक करोड़ बीस लाख बेरोजगारों को, जो सूनी आंखों से भविष्य की और टकटकी लगाए हुए थे।

आप लोगों में से उनके लिए जिन्होंने भूख से तड़पते बच्चे और दर्द से छटपटाते इन्सान की आहें सुनी हैं। उन लोगों के लिए जिन्होंने बम का धमाका और तारपीडो दागे जाने की गड़गड़ाहट सुनी है। उन लोगों के लिए जिन्होंने फासीवाद के हाथों मारे गए लोगों की लाशें देखी हैं। उन लोगों के लिए जिन्होंने युद्ध को बल प्रदान किया था और उसके एवज में उन्हें परमाणु बम से मारे जाने का खतरनाक सपना हासिल हुआ था।

यह कहानी उन्हीं लोगों के लिए है। माताओं के लिए जो अपने बच्चों को मरने के बजाए जिंदा देखना चाहेंगी। मजदूर, जो जानते हैं कि फासीवादी सबसे पहले यूनियनों को तबाह करते हैं। युद्ध से लौटे सिपाही, जो जानते हैं कि जो लोग युद्ध शुरू करते हैं, वे खुद मोर्चे पर नहीं जाते। छात्र, जो जानते हैं कि ज्ञान और आजादी को अलग नहीं किया जा सकता। बुद्धिजीवी, जिनका मरना लाजिमी है अगर फासीवाद जिंदा रहा तो। काले लोग, जो जानते हैं कि जिम-क्रो और प्रतिक्रियावादी एक ही सिक्के दो पहलू हैं। यहूदियों के लिए जिन्होंने यह हिटलर से सीखा कि वास्तव में यहूदी - विरोधी अभियान क्या होता है और बच्चों के लिए सभी बच्चों के लिए हर एक रंग, हर एक नस्ल, हर एक पंथ के बच्चों के लिए -- यह कहानी उन्हीं के लिए लिखी गई है, ताकि वे मौत के लिए नहीं, जिंदगी के लिए आगे की ओर देखें।

यह जनता की ताकत की एक कहानी है, उनके अपने दिवस की कहानी, जिसे वे तय करते हैं और जिस दिन अपनी एकता और ताकत का उत्सव मनाते हैं। यही वह खास दिन है, उनके और हमारे लिए यह असीम गौरव की बात है कि यह अमरीकी मजदूर वर्ग की ओर से पूरी दुनिया के लिए उपहारस्वरूप था।

वे आपको नहीं बताते

...स्कूल में पढ़ाये जाने वाले इतिहास से आपने इतना तो मान लिया होगा कि मई दिवस कैसे शुरू हुआ था, लेकिन हमारे अतीत में बहुत सी ऐसी बाते हैं जो शानदार और बहादुराना हैं, जिनको इतिहास ने बड़ी चतुराई से मिटा दिया। कहा जाता है कि मई दिवस विदेश से ली गई कोई चीज है, लेकिन जिन लोगों ने 1886 में शिकागो में पहले मई दिवस की नींव रखी थी, उनके लिए इसमें विदेशी जैसी कोई बात नहीं थी। उन्होंने इसे देशी धागे से बुना था। मजदूरी व्यवस्था इन्सानों के साथ जो बदसलूकी करती है, उसके खिलाफ गुस्से को विदेश से आयातित करने की जरूरत नहीं थी।

पहला मई दिवस 1886 में शिकागो में मनाया गया था। इसकी एक पृष्ठभूमि है, एक ऐसी तस्वीर, जिसे याद करना जरूरी है। 1886 से दस साल पहले, अमरीकी मजदूर वर्ग पैदा होने और बढ़ने की प्रक्रिया से गुजर रहा था और यह प्रक्रिया रक्तहीन नहीं थी। युवा राष्ट्र जो थोड़े समय में ही एक महासागर से दूसरे महासागर तक फैल गया था, शहर बसाए थे, मैदानी इलाकों में रेलवे का जाल फैला दिया था और दुर्गम जंगलों को काट कर साफ कर दिया था, वह अब प्रथम औद्योगिक देश बन गया था। और ऐसा करते हुए उन्हीं लोगों पर हमलावर हो रहा था, जिन्होंने ये सारे काम किए थे, हर उस चीज का निर्माण अपने हाथों से किया था, जिसे अमरीकी कहा जाता था और अब उनके ही शरीर से जिंदगी को निचोड़ा जा रहा था।

आदमी, औरतें और बच्चे भी अमरीकी फैक्ट्रियों में शब्दश: मरते दम तक खटते थे। हर रोज 12 घंटे काम करना आम बात थी, 14 घंटे काम करना भी काफी चलन में था और कई जगह बच्चे भी हर दिन 16 से 18 घंटे तक काम करते थे। मजदूरी बहुत कम थी, अक्सर जिंदगी चलाने का खर्च भी नहीं मिलता था और बार-बार आने वाली मंदी की कड़वी निरंतरता के चलते बड़े पैमाने पर

बेरोजगारी भी शुरू हुई। निषेधाज्ञा के मार्फत सरकार चलाना आए दिन की बात थी।

लेकिन अमरीकी मजदूर वर्ग आसानी से काबू में आने वाला नहीं था। उसने इसे स्वीकार नहीं किया, कुदरत का खेल समझ कर बर्दाश्त नहीं किया, उसने लड़ाई लड़ी – और उसने दुनियाभर के जुझारू मजदूरों को यह पाठ पढ़ाया, जिसकी अभी तक कोई दूसरी मिसाल नहीं।

1877 में मार्टिन्स वर्ग, वेस्ट वर्जिनिया में एक रेलवे हड़ताल शुरू हुई। सेना बुलाई गई और मजदूरों के साथ झड़प के बाद हड़ताल दबा दी गई – लेकिन सिर्फ स्थानीय स्तर पर, उस चिंगारी से सुलगने वाली आग जल्दी ही विकराल लपटों में बदल गई। बाल्टीमोर और ओहियो में हड़ताल, पेनसिल्वेनिया में हड़ताल और फिर वह एक रेलवे से दूसरे रेलवे में फैलती चली गई, जब तक वह छोटा सा स्थानीय उभार एक ऐसी विराट आम हड़ताल में नहीं बदल गया, जिसके बारे में उससे पहले किसी ने कभी नहीं सुना था। दूसरे उद्योगों के मजदूर भी इसमें शामिल हो गए और कई इलाकों में रेल-हड़ताल एक आम हड़ताल में बदल गई।

पहली बार सरकार और अफसर इस बात से वाकिफ हुए कि मजदूर की ताकत का क्या मतलब होता है। उन्होंने सैनिक बुला लिए और फिर स्थायी फौज, हर जगह जासूस लगा दिए गए। कुछ स्थानों पर छिटपुट झड़पें हुई। सेंट लुईस में नगरपालिका अधिकारियों ने त्याग पत्र दे दिया और शहर की जिम्मेवारी मजदूर वर्ग के प्रशासन को सौंप दी। आज कोई इसका लेखा-जोखा नहीं ले सकता कि उस हिंसक विद्रोह में कितने लोग हताहत हुए थे, लेकिन जिसने भी उस घटना का अध्ययन किया, उसे इस बात में कोई संदेह नहीं कि नुक्सान बहुत ज्यादा हुआ था।

हड़ताल आखिरकार टूट गई, लेकिन इसी दौरान अमरीकी मजदूरों ने नई जागरूकता के साथ अंगड़ाई ली। प्रसव पीड़ा खत्म हो गई और मजदूर वर्ग ने बचपन से जवानी की ओर यात्रा शुरू की।

अगला दशक जुझारू संघर्ष का काल था, सबसे पहले जीवित रहने की लड़ाई, जिससे संगठित होने की लड़ाई विकसित हुई। सरकार 1877 को आसानी से नहीं भूल पाई, कई अमरीकी शहरों में सैनिक छावनियों का निर्माण शुरू हुआ, मुख्य सड़कों को चौड़ा किया गया, ताकि मशीनगनों से उन पर नियंत्रण किया जा सके, एक बड़े पैमाने का मजदूर-विरोधी निजी पुलिस संगठन, पिंकरटन एजेंसी सामने आया और मजदूरों के खिलाफ अधिकाधिक दमनकारी उपाय किए जाने लगे। लाल खतरा, जिसका 1830 के दशक से ही अमरीका में प्रोपेगेंडा के औजार की तरह इस्तेमाल किया जा रहा था, उसका निर्माण अब एक बड़े आकार के गिरोह की तरह किया गया, जिसे आज हम देख रहे हैं।

लेकिन मजदूरों ने इन तैयारियों के प्रति काहिली नहीं बरती। द नाईट आफ लेबर, जो भूमिगत रूप से बनाया गया था, 1886 तक उसके 7,00,000 सदस्य थे। द यंग अमरीकन फैडरेशन आफलेबर, जिसका संगठन यूनियनों के स्वैच्छिक संघ के रूप में किया गया था और जिसका एक लक्ष्य समाजवाद भी था, वह तेजी से बढ़ रहा था, जिसकी मांगें वर्ग -सचेतन, जुझारू और कठोर होती थीं। एक नए नारे का जन्म हुआ, एक नई मांग, सुस्पष्ट और बेलाग लपेट –

'आठ घंटे काम,
आठ घंटे आराम,
आठ घंटे मनोरंजन।'

1886 तक अमरीकी मजदूर एक कदावर नौजवान बन चुका था, अपनी ताकत तौलने के लिए तैयार। उनके खिलाफ शस्त्रागार सुसज्जित किए गए, लेकिन वे काफी नहीं थे। पिंकरटन ही काफी नहीं थे, न ही मशीनगनें। संगठित मजदूर प्रण कर चुका था और उसका एकमात्र जुझारू नारा भी पूरे देश में गूंज रहा था-

'हर रोज आठ घंटे काम – इससे ज्यादा नहीं!'

1886 में उन दिनों, शिकागो जुझारू वामपंथी मजदूर आंदोलन का केंद्र था। शिकागो में ही एक संगठित मजदूर प्रदर्शन के विचार ने जन्म लिया, उस दिन जो किसी और का नहीं, सिर्फ उनको हो, जिस दिन वे अपने काम के औजार किनारे रख दें और कंधे से कंधा मिलाकर अपनी शक्ति का प्रदर्शन करें।

पहली मई को मजदूर वर्ग के दिन, जनता के दिन के रूप में चुना गया। काफी पहले ही प्रदर्शन की तैयारी करने के लिए एक 'आठ घंटा संघ' का गठन कर लिया गया था। यह आठ घंटा संघ एक संयुक्त मोर्चा था, जो अमरीकन फैडरेशन आफ लेबर, नाईट आफ लेबर और सोशलिस्ट मजदूर पार्टी को मिलाकर बनाया गया था। उसके साथ सैंट्रल लेबर यूनियन आफ शिकागो भी जुड़ा हुआ था, जिसमें बेहद जुझारू वामपंथी यूनियनें शामिल थीं।

शिकागो में जो शुरूआत हुई थी, वह कोई मामूली चीज नहीं थी। मई दिवस के पहले ही लामबंदी में ही 25,000 मजदूरों ने हिस्सा लिया और जब मई दिवस आया, हजारों की संख्या में शिकागो के मजदूर अपने औजार रखकर फैक्ट्रियों से बाहर सड़कों पर उमड़ पड़े और कतारबद्ध होकर सभा में शामिल हुए। इतना ही नहीं, सभा की शुरूआत हुई तो हजारों की संख्या में मध्यम वर्ग के लोग भी मजदूरों के साथ गए और भाईचारे की यही मिसाल कई दूसरे अमरीकी शहरों में भी दुहराई गई।

फिर, जैसा कि आज भी होता है, बड़े पूंजीपतियों ने जवाबी हमला किया – खून खराबा, दहशत और अदालती हत्याओं के जरिए। दो दिन बाद मजदूरों की जनसभा पर पुलिस ने हमला किया और छः मजदूर मारे गए। जब मजदूरों ने इस अकथ कारगुजारी के खिलाफ प्रतिवाद करते हुए अगले दिन हे मार्केट चौराहे पर प्रदर्शन किया, तो पुलिस ने दुबारा हमला किया। एक बम फेंका गया, जिससे कई पुलिस वाले और मजदूर मारे गए – और हालांकि यह कभी पता नहीं चल सका कि बम किसने फेंका था। चार अमरीकी मजदूर नेताओं को फांसी पर चढ़ा दिया गया। उन्हें उस जुर्म की सजा दी गई, जो उन्होंने किया ही नहीं था और जिस आरोप के लिए वे निर्दोष साबित हो

चुके थे।

इन बहादुर लोगों में से एक, अगस्ट स्पाइस जब फांसी के तख्ते पर चढ़ा तो उसने चीखते हुए कहा –

'वह समय आएगा जब हमारी चुप्पी उन आवाजों से कहीं अधिक शक्तिशाली होगी, जिनका तुम गला घोंट रहे हो।'

यह बात कितनी सच थी, इसे समय ने साबित कर दिया। शिकागो ने दुनिया को मई दिवस दिया और उस 62वें मई दिवस (1 मई 1947) को दुनियाभर की जनता अपनी पूरी ताकत के साथ लाखों की संख्या में जगह-जगह एकत्रित हो रही है। यह अगस्ट स्पाइस के पूर्वानुमान को सही साबित करता है।

शिकागो प्रदर्शन के तीन साल बाद ही दुनिया भर के मजदूर नेता पेरिस में बास्तीय के पतन की 100वीं वर्षगांठ मनाने के लिए जमा हुए। वहां एक-एक कर सभी राष्ट्रों के नेताओं ने भाषण दिया।

अंत में अमरीकियों की बारी आई। जो मजदूर हमारे यहां के मजदूर वर्ग की नुमाईंदगी कर रहा था, वह उठा। उसने सीधी सरल और बेलाग-लपेट भाषा में आठ घंटे कार्य दिवस की लड़ाई की, कहानी सुनाई, जिसकी चरम परिणति 1886 में हे मार्किट में हुई थी।

उसने हिंसा, खून खराबा और बहादुरीपूर्ण बलिदान की ऐसी तस्वीर खींची, जिसे वहां आए प्रतिनिधियों ने बाद में वर्षों तक याद रखा। उसने बताया कि किस तरह पार्सन्स ने मौत को गले लगाया, जबकि उसे यह प्रस्ताव दिया गया था कि यदि वह अपने साथियों से खुद को अलग कर ले और माफी मांग ले, तो उसे जीवनदान दिया जाएगा। उसने बताया कि किस तरह पेनसिल्वेनिया के दस निर्दोष आयरिश खदान मजदूरों को फांसी दी गई, क्योंकि उन लोगों ने संगठित होने के अपने अधिकार की लड़ाई लड़ी थी। उसने सशस्त्र पिंकरटन के साथ मजदूरों की पूरी लड़ाई का विस्तार से वर्णन किया और उसने संघर्ष की काफी सारी बातें बताई।

जब उसने अपनी बात खत्म की तो पेरिस कांग्रेस ने निम्नलिखित प्रस्ताव पारित किया-'कांग्रेस एक विराट अंतर्राष्ट्रीय प्रदर्शन आयोजित करने का फैसला लेती है, ताकि एक निर्धारित दिन को सभी देशों और सभी शहरों में मेहनतकश जनता सरकारी अधिकारियों से आठ घंटे कार्य दिवस की अपनी कानूनी मांग के लिए आवाज उठाए और साथ ही पेरिस कांग्रेस के दूसरे निर्णयों को भी क्रियान्वित करे। चूंकि एक ऐसे ही प्रदर्शन के लिए अमरीकन फैडरेशन आफ लेबर ने पहले ही एक मई 1890 का दिन निर्धारित किया है। इसलिए हम उसी तारीख को अंतर्राष्ट्रीय प्रदर्शन के लिए स्वीकार करते हैं। विभिन्न देशों के मजदूर अपने-अपने देशों की परिस्थिति के अनुरूप उस दिन अवश्य प्रदर्शन आयोजित करें।'

फिर ऐसा ही किया गया और आज मई दिवस पूरी दुनिया के लिए है। अच्छी चीजें किसी एक व्यक्ति या राष्ट्र की नहीं हुआ करती। जैसे-जैसे एक-एक कर सभी देशों के मजदूर मई दिवस को अपनी जिंदगी, अपने संघर्ष और अपनी आशाओं के रूप में आत्मसात करते गए, वे मानने लगे कि मई दिवस उनका अपना दिन है – और यह सही भी है, क्योंकि धरती पर जितने भी राष्ट्र हैं, निश्चित तौर पर अमरीका उन सभी राष्ट्रों का राष्ट्र है, सभी देशों की जनता और सभी संस्कृतियों का संगम।

मई दिवस इस वर्ष

अतीत के मई दिवस प्रकाश स्तम्भ की तरह आधी सदी के संघर्षों को रौशन करते रहे हैं। इस सदी के शुरूआती वर्षों में आयोजित मई दिवस पर ही मजदूर वर्ग ने साम्राज्यवादी विस्तारवाद की पहली बार निंदा की थी। मई दिवस के अवसर पर ही नवजात समाजवादी राज – सोवियत संघ के समर्थन में मजदूरों ने अभियान चलाया था। मई दिवस पर ही हमने अपनी ताकत के साथ असंगठित लोगों के संगठन का उत्सव मनाया था।

लेकिन अतीत में किसी भी मई दिवस पर इतने अनिष्टकारी और फिर भी इतने आशाजनक भविष्य से हमारा सामना नहीं हुआ था, जैसा इस मई दिवस का शुभारम्भ करते हुए हुआ। इससे पहले कभी जीतने के लिए इतना कुछ नहीं था, कभी हारने के लिए इतना कुछ नहीं था।

आज लोगों का बोलना आसान नहीं। लोगों के पास अखबारों का मालिकाना नहीं है, कोई मंच नहीं है और न ही सरकार में हमारे प्रतिनिधियों की बहुसंख्या ही जनता की सेवा करती है। रेडियो पर आम जनता का मालिकाना नहीं है और न ही सिनेमा उनके हैं। इन पर बड़े एकाधिकारी पूंजीपतियों का नियंत्रण कायम है, अच्छी तरह नियंत्रण कायम है, लेकिन जनता पर किसी का भी एकाधिकार नहीं है।

जनता की अपनी ताकत ही उनकी अपनी है और मई दिवस उनके लिए अपनी ताकत दिखाने का दिन है।

जुलूस में शामिल लाखों लोगों की तेज आवाज सुनाई दे रही है। समय आ गया है कि जो लोग अमरीका को फासीवाद के हवाले करना चाहते हैं। वे इस आवाज को सुन लें।

हमारे लिए यही समय है उन्हें बताने का कि वास्तविक मजदूरी पचास फीसदी छीज गई है कि हमारे बर्तन-डिब्बे खाली हैं कि यहां अमरीका में अधिकाधिक लोग भूख की चुभन महसूस कर रहे हैं।

यही समय है मजदूर विरोधी कानून के खिलाफ आवाज उठाने का, दो सौ से भी ज्यादा मजदूर विरोधी कानून संसद में रखे जाने वाले हैं – ऐसे कानून, जो मजदूरों को कुचलने के लिए उसी तरह मैदान साफ कर देंगे, जिस तरह हिटलर ने जर्मन मजदूरों को कुचला था।

यह अमरीका के संगठित मजदूरों के लिए इस सच के प्रति जागरूक होने का समय है – इस निराशाजनक अंतिम घड़ी में मजदूर एकता की जरूरत – इसके पहले कि देर हो जाए और संगठित मजदूरों का एकजुट रह पाना असंभव हो जाए।

आपने यहां हर रोज बारह से सोलह घंटे खटने वाले लोगों की कहानी पढ़ी। आतंक और निषधाज्ञा से चलने वाली सरकार की कहानी पढ़ी।

जो लोग मजदूरों को कुचलना चाहते

हैं उनका यही लक्ष्य है। वे उन्हीं पुराने दिनों को वापिस लाना चाहते हैं, जैसा कि युनाइटेड माईन वर्करों के मुकद्दमें में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले से साबित हो चुका है। मई दिवस के जुलूस में शामिल होकर जब हम उनको करारा जवाब देंगे।

यही समय है, युनान, तुर्की और चीन में अमरीकी साम्राज्य के हस्तक्षेप के आह्वान का मतलब समझने का। साम्राज्य की क्या कीमत चुकानी पड़ती है? जो लोग दुनिया पर शासन करके दुनिया की हिफाजत करने के लिए अमरीका के पक्ष में चीख रहे हैं, वे यह भी जान लें कि दूसरे साम्राज्यों का क्या हश्र हुआ। वे युद्ध की कीमत का लेखा-जोखा ले लें - कितनी जानें गई, कितनी सम्पति का नाश हुआ।

यही समय है यह समझने का कि कम्युनिस्टों के खिलाफ धर-पकड़ और उनकी हत्या का मतलब है! क्या आज तक कोई ऐसा देश रहा है, जहां फासीवाद आने से पहले कम्युनिस्ट पार्टी को गैर कानूनी घोषित न किया गया हो? क्या आज तक कोई ऐसा देश रहा है, जहां कम्युनिस्टों से निपटने के ठीक बाद मजदूर यूनियनों को न कुचला गया हो?

यही समय है कि हम चीजों की कीमत के प्रति जागरूक हों। कम्युनिस्टों के दमन की कीमत संगठित मजदूरों की तबाही है - और उसकी कीमत फासीवाद है और आज क्या कोई ऐसा भी व्यक्ति है, जो नहीं जानता कि फासीवाद की कीमत है मौत?

लगभग 100 वर्षों से संगठित मजदूर ही अमरीकी लोकतंत्र की रीढ़ रहा है। अब, दुष्ट और अमंगलकारी शक्तियों ने तय कर लिया है कि संगठित मजदूर को तबाह करना जरूरी है।

मई दिवस इस देश के सभी मुक्ति-कामी नागरिकों के लिए प्रतिक्रियावादियों को जवाब देने का समय है। लाखों लोगों के जुलूस की आवाज बहुत ऊंची होती है। मई दिवस के प्रदर्शन में हमारे साथ शामिल हों और मौत के सौदागरों को अपना करारा जवाब दें।

●

संत राम उदासी की कविताएं

वसीयत

मेरी मौत पर न रोना मेरी सोच को बचाना
मेरे लहू का केसर मिटटी में न मिलाना

मेरी भी जिंदगी क्या बस बूर सरकंडे का
आहों की आंच काफी तीली भी न जलाना

एकबारगी ही जलकर मैं न चाहूं राख़ होना
जब -जब ढलेगा सूरज कण -कण मेरा जलाना.

घेरे में कैद होना मुझको नहीं मुआफिक
यारों की तरह अर्थी सड़कों पे ही जलाना

जीवन से मौत तक हैं आते बहुत चौराहे
मुश्किल हो जिस पे चलना उसी राह पर ले जाना

पंछी भर इक नई परवाज़

भर इक नई परवाज़ पंछी! भर इक नई परवाज़
जितने छोटे पंख हैं तेरे
उतने लम्बे राह हैं तेरे
तेरी राहों में आखेटक ने किया है गर्द -गबार
पंछी! भर इक नई परवाज़

जिस टहनी पर वास तेरा है
उस टहनी का हाल बुरा है
तेरे उड़ने से पहले कहीं उड़ न जाये बहार
पंछी! भर इक नई परवाज़

झनक-झनक निकली हथकड़ियाँ
पर तूने जोड़ी नहीं कड़ियाँ
तेरे बच्चों तक फैला है बाजों का प्रहार
पंछी! भर इक नई परवाज़

तू लोहे में चोंच मढ़ाकर
डाल-डाल पर नज़र गड़ाकर
खेतों में विखरे चुग्गे का बन जा पहरेदार
पंछी! भर इक परवाज़ .

किसको वतन कहूंगा?

हर जगह लहूलुहान है धरती
हर जगह कब्रों -सी चुप पसरी
अमन कहा मैं दफ़न करूँगा
मैं अब किसको वतन कहूँगा

तोड़ डाली नानक की भुजाएं
पकड़ खींच दी शिव की जटाएं
किसको किसका दफ़न कहूँगा
मैं अब किसको वतन कहूँगा

ये जिस्म तो मेरी बेटी-सा है
ये कोई मेरी बहन के जैसी
किस -किस का मैं नग्न ढकूंगा
मैं अब किसको वतन कहूँगा

कौन करे पहचान मां-बाप
हर इक लाश दिखे एक जैसी
किस-किस के लिए कफ़न मैं लूँगा
मैं अब किसको वतन कहूँगा

लगी सिसकने चांदनी रातें
खत्म हुई दादी मां की बातें
बीते का कैसे हवन करूंगा
मैं अब किसको वतन कहूँगा

ले ज़ज्बात (संभाल) मेरे सरकार
वापिस कर मेरे गीत -प्यार
इच्छायों का कैसे दमन करूंगा
मैं अब किसको वतन कहूँगा

पंजाबी से अनुवाद : परमानंद शास्त्री, 94169-21622

●

ईंट भट्ठा उद्योग :
असंगठित क्षेत्र में खटता महिलाओं का जीवन एवं बाल श्रम

मुकेश कुमार

अगर आंकड़ों की नजर से देखें तो 1991 से लागू उदारीकरण, वैश्वीकरण व नीजिकरण की नीतियों के चलते भारत के सकल घरेलू उत्पादन में वृद्धि दर्ज हुई है। लेकिन हमारे हुक्मरान व अर्थशास्त्री इस तथ्य को नजरअंदाज करते रहे है कि वर्तमान आर्थिक प्रगति व विकास के पीछे देश की आधी आबादी महिलाओं, भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में कार्यरत असंख्य बाल श्रमिकों व देश की युवा श्रम शक्ति की महती भूमिका है! हमारे देश की श्रम शक्ति 47.2 करोड़ है जो विश्व के किसी भी देश की श्रम शक्ति की तुलना में विशालतम है। पिछले दो दशकों में रोजगार के अवसरों में वृद्धि के जितना राग अलापा जा रहा है। उसकी तुलना में इससे भी बड़ा भयावह सच यह है कि रोजगार के अवसरों व गुणवत्ता में बड़े स्तर पर ह्रास हुआ है।

आज लगभग 93 फीसद श्रम शक्ति असंगठित क्षेत्र में कार्यरत है। जिनके पास ना तो किसी भी तरह के रोजगार की सुरक्षा है, ना ही पर्याप्त सामाजिक सुरक्षा है और ना ही कोई सुरक्षित आय! संगठित क्षेत्र में भी लगभग आधी आबादी अनौपचारिक मजदूरों की ही है जिन्में अधिकांश मजदूर ठेका मजदूर ही है। जहां 1990-1991 में ठेका मजदूरों की संख्या 13.5 फीसदी थी वहीं इनकी संख्या 2010-11 में बढकर 33.9 फीसद हो गई है। सार्वजनिक व निजी क्षेत्र के तीन-चौथाई से अधिक ठेका मजदूरों के पास कोई लिखित संविदा नहीं है! ये मजदूर सिर्फ और सिर्फ ठेकेदारों व मालिकों के हाथों हर रूप में शोषित होने के लिए ही अभिशप्त है !

गरीबी के कारण बहुत से परिवार अपने बच्चों को काम पर भेजने के लिए मजबूर होते हैं। जबकि हमारे संविधान की धारा 24 बाल श्रम को अधिनियम 1986 के तहत पूर्ण रुप से प्रतिबन्धित करती है। लेकिन इसके बावजूद हर साल देश के करीब 49 लाख बच्चे बाल मजदूर बनने को मजबूर है। जिनमें से हम तमाम तरह के प्रयासों के बावजूद मात्र 1 लाख बच्चों को बचा पाते हैं। हालांकि कैलाश सत्यार्थी जैसे लोगों ने इस गंभीर मुद्दे पर कुछ डेंट डालने का प्रयास किया है पर स्थिति अभी जस की तस बनी हुई है। प्रस्तुत आलेख में साल 2014-15 में किए शोध कार्य के आधार पर कुछ जमीनी हकीकतों को बयान करने की कोशिश की है।

'हरियाणा सरकार के खाद्य एवं आपूर्ति विभाग (2012) के अनुसार राज्य में कुल 3036 ईंट भट्ठा उद्योग इकाइयां पंजीकृत है। राज्य की राजधानी चंडीगढ़ में स्थित श्रम विभाग एवं खाद्य आपूर्ति विभाग में शोधकार्य के लिए आवश्यक सूचनाएं मांगने बारे दो बार विजिट करने पर यह वास्तविकता पता चली कि राज्य के किसी भी विभाग के पास कुल श्रमिकों की संख्या से सम्बन्धित तथा प्रवासी श्रमिकों, महिला श्रमिकों एवं बाल श्रमिकों से सम्बन्धित कोई भी ठोस तथ्य व आंकड़े मौजूद नहीं है। शोध सर्वेक्षण के आधार पर प्रमाणतः यह जरूर कहा जा सकता है कि एक ईंट भट्ठा के अन्तर्गत दस तरह की अलग-अलग क्रियाओं में शामिल औसतन 175 श्रमिक कार्य करते हैं। जिनमें पथेर, जलाई, भराई, निकासी, मुंशी, चौकीदार, ड्राइवर, केरीवाला, बेलदार एवं लोडिंग-अनलोडिंग के श्रमिक शामिल है। यदि 175 श्रमिक प्रति भट्ठा इकाई की औसत संख्या मानें तो प्रदेशभर में कुल 531300 श्रमिक बनते हैं।

अनुभव बता रहा है कि इस कुल आबादी में 80 फीसदी से अधिक आबादी दलित समुदाय से है। सर्वेक्षण से पता चला है कि प्रत्येक ईंट भट्ठे पर कुल श्रमिकों का 40 फीसदी महिला श्रमिक कार्यरत है। यानी इस उद्योग में 212520 महिला श्रमिक कार्यरत हैं। शोधकार्य के दौरान राज्यभर के भट्ठा उद्योग का प्रत्यक्ष अनुभव एवं अवलोकन बता रहा है कि 4 से 14 साल की उम्र के बीच के औसतन 15-18 बच्चे प्रत्येक ईंट भट्ठा इकाई पर कार्यरत हैं जिसमें बड़ी संख्या लड़कियों की है। केवल ईंट-भट्ठा उद्योग में यदि हम बाल मजदूरों की संख्या पर नजर डालें तो अनुमानतः यह कहा सकता है कि भट्ठों पर लगभग 50 हजार (बाल मजदूर लाल झंडा भट्ठा मजदूर यूनियन, हरियाणा के अनुसार) आज 2015 में भी कार्यरत हैं। यदि एक भट्ठे पर कुल औसत जनसंख्या का आंकलन करें तो 90 परिवार और 5 सदस्य प्रति परिवार मानें तो एक भट्ठे पर 450 की संख्या बनती है। यानी राज्यभर में मात्र इस उद्योग में गांव, शहर व समाज से दूर खेतों में स्थित भट्ठों पर 13.66 लाख आबादी अपना जीवन बसर करने पर मजबूर है। अनुमानतः राज्यभर में 200 ईंट भट्ठा इकाइयां बिना पंजीकरण के संचालित होकर शासन-प्रशासन को निरन्तर अंगूठा दिखा रही है। 'यदि हम बिना पंजीकरण चलने वाले भट्ठों के मजदूरों की संख्या को भी जोड़ लें तो यह आंकड़ा

14.56 लाख तक पहुंच जाता है। इस कुल आबादी में लगभग 85 फीसद मजदूर आबादी प्रवासी है जो के देश के विभिन्न राज्यों से जैसे राजस्थान, यूपी, बिहार, मध्यप्रदेश, आसाम, झारखंड, बंगाल, उड़ीसा आदि राज्यों से सिर्फ यहां भट्ठों पर पिसने-खपने के लिए आती है। सौ फीसदी मजदूरों का कहना है कि उनको यह काम मजबूरी में करना पड़ रहा है। जिनके पास कोई वैकल्पिक रोजगार की व्यवस्था नहीं है।

सभी पंजीकृत ईंट भट्ठा इकाइयां कारखाना अधिनियम 1948 के नियमों व प्रावधानों के अन्तर्गत संचालित हो रही है। जिसका तात्पर्य यह है कि ये सभी औद्योगिक इकाइयां इस अधिनियम के अन्तर्गत लिखित में यह वायदा करती है कि वे सभी अपने उद्योग में इस अधिनियम के कायदे-कानूनों को एवं अन्य केन्द्र व राज्य सरकार द्वारा बनाए गए श्रम कानूनों को लागू करेंगे। इस उद्योग पर केन्द्र के 20 श्रम कानून व राज्य के 4 श्रम कानून सीधे तौर पर लागू है। परन्तु शोधकार्य के परिणाम व प्रत्यक्ष अवलोकन बता रहा है कि तमाम कानूनी प्रावधानों व वास्तविक ठोस जमीनी सच्चाई में दूर-दूर तक कोई तालमेल नजर नहीं आ रहा है। व्यवहार में ईंट भट्ठों पर एक ही श्रम कानून चलता है और वो है मालिक का लट्ठ कानून। जो आठों पहर ना केवल मजदूरों पर चलता है बल्कि मजदूर यूनियन के नेताओं को भी नहीं छोड़ता है। उद्योग मालिक के इस लट्ठ कानून को सत्ता, प्रशासन व मालिक तीनों की तिकड़ी का पूर्ण अघोषित समर्थन हासिल है। तभी तो 1923 में लागू हुए श्रम कानून के प्रावधान 90 साल के बाद भी इस उद्योग में आज तक लागू नहीं हुए है।

'मातृत्व लाभ अधिनियम 1961 के सभी प्रावधान सिर्फऔर सिर्फ महिला मजदूरों के लाभ व कल्याण के लिए ही हैं। अधिनियम कहता है कि यदि ईंट भट्ठों पर कार्य के दौरान किसी महिला की डिलीवरी होती है तो मालिक द्वारा उसे 3500 रुपए मैडिकल बोनस एवं कम से कम 6 सप्ताह की व अधिकतम 12 सप्ताह की मजदूरी सहित छुट्टियां देने का प्रावधान है। जबकि व्यवहारिकता यह कह रही है कि अधिकतर डिलीवरी भट्ठों पर ही बिना किसी डाक्टर व प्रशिक्षित दाई के हो रही है। जिसका परिणाम यह देखने को मिलता है कि डिलीवरी के समय या कुछ दिन बाद नवजात शिशुओं व माताओं तक की अकाल मृत्यु हो जाती है। इस उद्योग में किसी भी स्थिति में ना तो एक भी दिन की छुट्टी दी जा रही है और ना ही किसी भी रूप में कोई मेडिकल बोनस का भुगतान किया जाता है। फिर गर्भवती महिलाओं के

स्वास्थ्य की जांच, टीकाकरण व उचित पोषण जैसी चीजें तो बहुत दूर की बात है।

'ईंट भट्ठा उद्योग का सबसे बड़ा व भयावह सच यह है कि इस उद्योग में कार्यरत वर्ष 2014 तक 2.4 लाख महिला मजदूरों में से एक भी महिला का नाम एक मजदूर के तौर पर कहीं भी किसी भी रिकार्ड में दर्ज नहीं है? ईंट भट्ठों पर असल व्यवहार दर्शा रहा है कि भट्ठों पर मौजूद मुंशी की कच्ची कापी में उन्हीं मजदूरों के नाम लिखे होते हैं जिनको पेशगी दी गई है और वो भी सिर्फ पुरुषों के? सर्वेक्षण के दौरान अंबाला जिले के एक भट्ठे पर बिहार के नालन्दा की एक महिला मजदूर ने बताया कि वो पिछले 22-25 सालों से भट्ठों पर ही काम कर रही है। आठ साल पहले उचित इलाज ना मिल पाने के कारण बीमारी के चलते उसके पति की मौत हो गई। इसके बाद वह अपने चार बच्चों के साथ मिट्टी के साथ मिट्टी बन गुजर बसर कर रही है। परन्तु मालिक के यहां आज भी कच्ची कापी में एक मजदूर के तौर पर उसके पति का ही नाम लिखा जा रहा है। इनका खुद का नहीं? मूलतः इस उद्योग में महिला मजदूर हर तरह से दमित व शोषित है। वे बच्चों को भी संभाल रही है, घर का सारा काम भी करती है और अपने पति व परिवार के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर श्रम करती है। सर्वेक्षण के दौरान एक सवाल के रूप में जब पुरुष मजदूरों से यह पूछा गया कि वो भट्ठे पर खुद के मनोरंजन के लिए क्या-क्या करते है? तो अधिकतर मजदूरों का केवल एक ही सीधा सा सपाट जवाब था कि दारु पीना और हर रोज घरवाली से सैक्स करना और यहां जंगल में क्या है? महिलाओं के शोषण व जीवन व्यथा की फेहरिस्त मात्र यहीं तक आकर नहीं थम रही है? जब स्थितियां इससे भी भयावह होती है तो पूरी मानवता को शर्मसार कर देती हैं। सर्वेक्षण के दौरान पानीपत जिले के एक भट्ठे पर पता चला कि भट्ठे के पास के गांव के चार लड़के दारू के नशे में चूर रात को 11 बजे भट्ठे पर एक मजदूर की झुग्गी में घुस गए और जमीन पर अपने परिवार संग सो रही एक महिला को पकड़ खींचते हुए जोर जबरदस्ती कर उसे अपनी कार की ओर घसीटने लगे। जब हो-हल्ला सुन आस पड़ोस के मजदूर जाग गए और इनको रोकने लगे तो इनका कहना था कि हम इसे सुबह छोड़ जायेंगें, तुम चिन्ता मत करो? यह बोलने व ऐसा करने में इनको तनिक भी संकोच नहीं था। ऐसे ही रोहतक के एक भट्ठे से दोपहरी में शौच के लिए गई महिला को दो लड़के उठा ले गए और तीन दिन तक अपने खेत में उसके साथ गैंग रेप करते रहे। चौथे दिन बदहवासी की स्थिति में उस महिला को भट्ठे के पास फेंक गए। इस तरह की आए दिन सीजन दर सीजन घटने वाली घटनाओं की अपनी दास्तान है।

'श्रम कानून कहते है कि भट्ठों पर श्रमिकों के लिए प्रर्याप्त संख्या में शौचालयों की सुविधा महिला व पुरुषों के लिए अलग-

अलग होनी चाहिए' जबकि वास्तव में कहीं-कहीं एकाध जगह ही 2-4 कच्चे शौचालय खुद श्रमिकों ने ही अपनी झुग्गी के पास ही कच्ची ईंटों से बनाए हैं। जहां झुग्गी के पीछे ही कस्सी से लगभग दो या ढाई फीट गहरा व एक फीट चोड़ा गड्ढा खोदकर उस पर कोई लक्कड़ या पत्थर के टुकड़े रख दिए गए है तथा साइडों में कच्ची ईंटें इतनी ऊंचाई तक लगा दी जाती है कि बैठा हुआ आदमी ना दिखे। जहां ना तो पानी की कोई व्यवस्था होती है और ना ही इनकी सफाई की। हिसार, सिरसा व फतेहाबाद के इलाके में शौचालयों की जगह कुछ कुईयां बना रखी है। दस फीट गहरा गड्ढा खोदकर उसके ऊपर दो बाई तीन का आधा ईंच मोटा पत्थर बीच से काट कर रख दिया जाता है। बारिश आदि आने पर ये नीचे धंस जाते है और कई बार ऐसी घटनाएं भी हो चुकी है कि ऊपर बैठा मजदूर भी नीचे ही धंस जाता है। इन कुईयों को खाली भी नहीं कराया जाता है। झुग्गियों के पास होने के कारण इनमें बदबू भी बहुत आती है और बीमारियां भी फैलती है। सरकार के आंकड़े व रिपोर्ट दर्शाती है कि भट्ठों पर पक्के शौचालय बने है पर सिर्फ सरकारी कागजों का पेट भरने के लिए। श्रमिकों ने बताया कि वो सभी बाहर खेतों में ही शौच करने जाते हैं। जब ये आस-पास के खेतों में जा बैठते है तो उन खेतों के मालिक ना केवल इनको गन्दी गालियां बकते हैं, बल्कि पिटाई तक भी कर देते हैं। सबसे बड़ी समस्या महिलाओं व लड़कियों के लिए है ये सिर्फ रात के अन्धेरे में ही शौच के लिए जा पाती हैं? रात का अन्धेरा तो और भी दंश व पीड़ा देने वाला है? जहां महिलाओं के साथ अनेक बार ऐसी दुर्घटनाएं घट चुकी है कि जब महिलाएं शौच के लिए खेतों में बैठी होती है तो उनको धक्का मारकर खेतों में भाग जाते है। कितनी ही बार इनके साथ बलात्कार जैसी घिनौनी घटनाएं तक हो चुकी है। मेवात के एक भट्ठे पर दस साल की लड़की ने बताया कि पास के खेत का मालिक जब सुबह खेत में आता है तो वह उस शौच/लैटरिंग को कस्सी में उठाकर हमारी झुग्गियों मे फेंक जाता है या फिर हमारे पसार में जहां हम ईंट पाथते है वहां फेंक जाता है और पता चलने पर पिटाई भी करता है।

निरक्षरता व अज्ञानता ने इन गरीब, दलित, वंचित आबादियों के बीच अपना लगभग स्थाई सा डेरा डाल रखा है। सर्वेक्षण के परिणाम बता रहे हैं कि मजदूर महिलाओं में 95 फीसद से भी अधिक निरक्षर है। शिक्षा, साक्षरता की योजनाएं इन आबादियों तक पहुंचने से पहले ही दम तोड़ देती है परन्तु आंकड़ों में साक्षरता दर निरंतर बढ़ती ही जा रही है?

बड़े स्तर पर भट्ठा मजदूरों में बाल विवाह व बेमेल विवाह आज भी प्रचलन में है। भट्ठों पर यह देखा गया है कि 17-18 साल की उम्र होते-होते लड़की 2-3 बच्चों की मां बन चुकी होती है। दावे के साथ यह कहा जा सकता है कि 95 फीसद से अधिक भट्ठा महिला मजदूर खून की कमी की शिकार है तथा उचित पोषण के अभाव में शारीरिक रूप से कमजोर भी है। जिसके कारण आए दिन नित नई-नई बीमारियां इनको घेरे रहती है। उचित स्वास्थ्य सुविधाएं ना मिलने का पूरा हर्जाना महिलाओं को ही चुकाना पड़ता है।

सर्वेक्षण ने एक बार फिर इस बात को प्रमाणित किया है कि महिलाएं इनके साथ हो रहे भेदभाव व शोषण के कारण इनकी खुद की पहचान इनसे दूर होती जा रही है। इनकी व्यक्तिगत पहचान, इच्छाएं, सपने आदि सब कुछ मानों सदा के लिए इनसे बिछुड़ते चले जाते हैं। हमारे देश की आधी आबादी का बडा़ हिस्सा बस किसी की मां, बहन, बेटी, पत्नी, चाची, ताई, बुआ, दादी आदि ही बनकर रह जाती है। सर्वेक्षण के दौरान कई महिलाएं ऐसी मिली जब उनसे उनका नाम पूछा गया तो उनके पास कोई जवाब नहीं था? आलम यह है कि गरीबी व तमाम तरह के अभाव के थपेड़े इन्हें इनकी उम्र तक भी भुला देते है। एक 18-20 साल महिला से जब उसकी उम्र जाननी चाही तो कहने लगी-साहब आप ही देख कर लिख लो, 30-40 तो होगी?

भट्ठों पर कार्यरत महिलाओं के जीवन के संदर्भ में कुछ महत्वपूर्ण सकारात्मक पहलू भी है जिनको रेखांकित किया जाना अति आवश्यक है। मसलन भट्ठों पर कहीं भी घूंघट नहीं है। फिर वो मजदूर महिला चाहे यूपी की हो या राजस्थान व बिहार की जहां आज भी घूंघट का खूब चलन है। सर्वेक्षण के दौरान भट्ठे पर कार्यरत जब एक मजदूर (ससूर) से पूछा गया कि उसके साथ परिवार के अन्य सदस्यों के इलावा उसकी पुत्रवधु भी बिना घूंघट के काम कर रही है तो क्या उसको कोई दिक्कत तो नहीं है? जवाब में ससुर का कहना था कि यहां कोई घूंघट नहीं करता है, अगर ये घूंघट करेगी तो काम कैसे होगा? मैंने खुद ही इसको मना किया है। जब इनसे यह पूछा गया

कि आप सीजन के बाद अपने गांव वापिस जायेंगें, तो वहां भी घूंघट.....? तो इनका कहना था कि वहां तो गांव है, समाज है सब करते हैं तो यह भी करेगी। इस उद्योग में काम के संबंधों के कारण एक बड़ी सामाजिक बुराई पर इतना बड़ा डेंट पड़ना बहुत बड़ा क्रान्तिकारी कदम कहा जा सकता है। यदि इस मसले पर इन मजदूर परिवारों को थोड़ा और जागरुक किया जाए तो इस कुप्रथा को लाखों मजदूर परिवारों से दूर किया जा सकता है जिसका प्रभाव दूर तलक पड़ना लाजिमी है।

इस उद्योग का एक दूसरा महत्वपूर्ण पहलू है बाल श्रम। सर्वेक्षण के दौरान भट्ठों पर देखने को मिला कि यहां चार से पांच साल का बच्चा अपने मां-बाप का काम में हाथ बटाना शुरू कर देता है। जिस उम्र में बच्चें को खिलौने, किताब, पैंसिल, दूध व रोटी चाहिए, तब इनके मासूम कंधों पर काम का बोझ और नन्हें-नन्हें हाथों में ईंटे थमा दी जाती है। ये बहुत बड़ी पारिवारिक और सामाजिक जिम्मेदारी लेकर पैदा होते है और जल्दी ही बूढ़े हो जाते है। पांच साल की बच्ची अपने चार साल के, तीन साल के भाई-बहनों का लालन-पालन व देख-रेख एक मां की तरह करती है और उनको दिनभर गोदी में उठाए-उठाए खिलाती रहती है। यहां छोटे-छोटे बच्चे कच्ची ईंटो को पलटने का काम करते हैं ताकि वो दोनों तरफ से धूप व हवा से सूख जाएं और फिर सुखने पर बच्चे उठा-उठाकर चट्टा लगाने की जगह तक भी इनको ढोने में मदद करते है? पसार में रेत फैलाने, मिट्टी के गोले बनाने है, अपने परिवारजनों को पानी पिलाने व अपने छोटे भाई-बहनों को रखने आदि कितने ही तो काम है जिनको ये अंजाम देते हैं। स्कूल, बालबाड़ी, खिलौने, बचपन और बचपन की आजादी आदि इनकी कल्पना से परे की चीजें हो गई है। दरअसल इनको सपने में भी ईंट, गारा, मिट्टी, भट्ठा और मालिक के इलावा कुछ नहीं दिखता है।

मजदूर परिवारों में बच्चे पांच-सात साल की उम्र में ही हर वो काम करने में पारंगत हो जाते है जो उनके मां-बाप करते हैं। लेकिन मालिकों द्वारा कहा ये जाता है कि यहां बाल श्रम नहीं है और हमारे यहां कोई भी बच्चा काम नहीं करता। सर्वेक्षण के दौरान पाया कि 15-20 बाल-मजदूर हर भट्ठे पर कार्यरत है। कुल मिलाकर केवल इस उद्योग में राज्यभर में लगभग 50 हजार बाल मजदूर कार्यरत हैं। जबकि भारत सरकार की जनगणना 2011 के आंकड़े बता रहे हैं कि हरियाणा राज्य में कुल 53492 ही बाल श्रमिक है।

भट्ठों पर ना तो स्कूल व शिक्षा की कोई व्यवस्था है और ना ही बालवाड़ी की। बच्चों को बाल श्रम में धकेलने का एक प्रमुख कारण भट्ठों पर इन दोनों चीजों का अभाव भी है। जब अभिभावकों से यह पूछा गया कि आप अपने बच्चों को भट्ठे के नजदीक के गांव में क्यों नहीं दाखिल कराते? इनका जवाब यह था कि हम तो स्कूल के मास्टर के पास गए थे - पर वो हमे देखकर बोला कि ये तो बिहारी हैं इनका कोई पता ठिकाना नहीं कब भाग जाएं। और हमें धमकाकर स्कूल से भगा दिया गया। गरीब आदमी की कोई जिन्दगी ना है। दूसरा स्कूल बहुत दूर है। हम छोटे-छोटे बच्चों को अकेले कैसे भेजें। मजदूरों ने बताया कि हमें तो रातभर नींद नहीं आती कि हमारी तो जिन्दगी बर्बाद हो ही गई पर हमारे बच्चों का क्या होगा। हम तो इन्हें पढाना-लिखाना चाहते हैं और सोचते हैं कि ये तो कुछ बन जाएं। पर क्या करें गरीबों की कोई नहीं सुनता।

हालांकि 'बाल श्रम अधिनियम के अनुसार उद्योग मालिक को आर्थिक जुर्माने के साथ-साथ तीन महीने से लेकर एक साल तक के कारावास का सख्त प्रावधान है' परन्तु यह कड़वी सच्चाई है कि आज तलक एक भी भट्ठा मालिक के खिलाफ कोई कानूनी कार्यवाही नहीं हुई।

क्या कभी इस आबादी की भी श्रम कानूनों व संविधान में लिखित तमाम अधिकारों तक पहुंच बन पाएगी? क्या कभी देशभर के भट्ठा उद्योग में कार्यरत लाखों बाल मजदूरों को उनका बचपन लौटाया जा सकेगा?

मुकेश कुमार असिस्टैंट प्रोफेसर, पीजीडीएवी
(सांध्य) कालेज दिल्ली, मो. 9911886215

नफीस अहमद 'मुबारक' की कविता

एक मुन्ने की अभिलाषा

बाप लिखवादे मियरो नाम,
स्कूल में पढण कू जाउंगों।
मैं करूगों कड़ी मिहनत बाप ,
स्कूल में फर्स्ट आउंगों।।

बेकदइन बकरीन ने,
मैं चराणकू नही जाउगों।
दिवादे कापी किताब ,
स्कूल में पढण कू जाउंगों। ।

खुद पढ़-लिख के नी मैं, बाप ,
गरीबन ने घर जा के नी पढाउंगों।
खत्म होवे दहेज प्रथा ,
नूं सबन्ने समझाउंगों।।

अनपढता है करवांउ खत्म ,
घर-घर ज्ञान दीप जलांउगों।
पढ़ाओ अपणा बालकन ने ,
नूं घर-घर जाके समझाउंगों।।

करूगों गरीबन कि सेवा ,
अपणो फर्ज निभाउंगों।
करूगों दिल सू पढ़ाई ,
मैं अच्छो इन्सान बणजाउगों।।

और कुछ बी ना बाप मैं,
एक फौजी जरूर बणजाउंगों ।
करूगों वतन की रक्षा, मैं,
दुश्मन है मार भगाउंगों।।

रब ने चाही जे बाप ,
मैं सबका मन ने करजाउंगों।
करूंगो काम इमानदारी सू,
नूं अनोखो काम कर जाउंगों।।

मो. 9991519284

●

घुमंतु जीवन सिकलीगर समुदाय

अरूण कुमार कैहरबा

कभी कारीगरी थी शान, आज रोटी का नहीं इंतजाम

विकास के दावों के बावजूद आज भी बहुत से समुदाय आर्थिक-सामाजिक पिछड़ेपन के अंधकूप में जीवन-यापन कर रहे हैं। अपने पूर्वाग्रहों के कारण आस-पास के लोग इन समुदायों को समाज की मुख्यधारा में शामिल नहीं करते। सरकार द्वारा भी इनके हुनर और कारीगरी की कद्रो-कीमत बढ़ाने के लिए कोई कोशिशें की जाती दिखाई नहीं देती हैं। उनके परम्परागत धंधे तथाकथित विकास की भेंट चढ़ चुके हैं और इस विकास के साथ कदमताल करते हुए सम्मान के साथ गुजर-बसर करने में वे अपने आप को लाचार पा रहे हैं। यही हालत सिकलीगर समुदाय की है। कड़ी मेहनत करते हुए भी लोहे का काम करने वाले इस समुदाय के लोग दो जून की रोटी के लिए जगह-जगह ठोंकरें खाने को मजबूर हैं।

सिकलीगर एक घुमंतु समुदाय है। इस समुदाय के लोग कई राज्यों में हैं। हरियाणा में ही इस समुदाय के कुछ लोग ताले-चाबियां बनाने का काम करते हैं, जिन्हें मलवई सिकलीगर कहा जाता है। ये संभवतः मूल रूप से मालवा क्षेत्र से संबंध रखते हैं। करनाल जिला के गांव डेरा हलवाना, जपती छपरा सिकलीगरान, गढ़ी खजूर, बराणा, संजय नगर डेरा,यमुनानगर में दड़बा गांव, सिरसा में चतरगढ़ पट्टी सिकलीगर लोगों कंडेरों के रूप में बसे हुए हैं। इन स्थानों पर मारवाड़ मूल के सिकलीगर हैं, जोकि अपने आप को 'माल्डी' और दूसरे समुदाय के लोगों को 'डाम्बे' कहते हैं। इन गांवों में इनकी आबादी हजारों में होगी। बोली में पंजाबी और मारवाड़ी का मेल दिखाई देता है।

ऐतिहासिक रूप से सिकलीगर समुदाय अपने कौशल और साहस के लिए जाना जाता है। सिकलीगर समुदाय का संबंध सिक्खों के दसवें गुरु गोबिन्द सिंह जी के साथ बताया जाता है। बताते हैं कि गुरु गोबिन्द सिंह की सेना में सिकलीगर समुदाय के लोग अस्त्र-शस्त्र बनाने और उसे चमकाने का काम करते थे। यह कहा जाता है कि इनका संबंध मूल रूप से राजस्थान के चित्तौड़-मारवाड़ क्षेत्र से रहा है। गुरु गोबिंद सिंह जी ने इनके हथियार निर्माण व उन्हें तराशने के हुनर की पहचान की और उन्हें अपनी सेना में सेवाएं देने के लिए बुलाया। यह भी बताया जाता है सिकलीगर सिकिल नाम की धातु से हथियार बनाने में सिद्धहस्त थे। जब इन्होंने हथियार बनाए तो उनकी चमक इतनी थी कि हथियारों में शकलें दिखाई देती थी। कुछ पुराने हथियारों की शकलें सुधार दी। सिकिल धातु से बने हथियारों में शकलें दिखने के कारण ही इन्हें सिकलीगर नाम दिया गया। इसी प्रकार ये लोग सिरकियां (झोंपड़ियां) बना कर रहते हैं, इससे भी इनके नामकरण का अनुमान लगाया जाता है। हथियार बनाने के अलावा इस समुदाय के युवकों का साहस भी बेमिसाल था। गुरु गोबिंद सिंह की सेना में उन्होंने अपने युद्ध कौशल और साहस का लोहा मनवाया। भाई बचित्तर सिंह को सेना में सेनापति की जिम्मेदारी दी गई थी, जिन्हें समुदाय के लोग आदर्श के रूप में देखते हैं।

समय बीतने के साथ ही इनके हुनर की आज बेकद्री हो रही है। सबसे पहले तो हथियार निर्माण का काम पिट गया। इससे ये

लोहे का काम करने लगे। कुछ लोग ताले-चाबियां बनाने लगे और माल्डी सिकलीगरों का काम तसले, बाल्टियां और कढ़ाई बनाने और उनका टूटा तल्ला लगाने तक सिंकुड़ कर रह गया। बनाए गए तसले व बाल्टियों को समुदाय के लोग एक राज्य से दूसरे राज्य में पैदल या फिर साइकिल पर ले जाकर बेचते हैं और तल्ले लगाते हैं। इस कार्य के चलते लोगों को एक स्थान से दूसरे स्थान में आना जाना पड़ता है। फेरी के काम में लगे लोग प्रतिदिन कईं-कईं सौ कि.मी. साइकिल चलाते हैं। कईं बार वे एक राज्य की सीमा को पार करके दूसरे राज्य में पहुंच जाते हैं। लेकिन इसके बावजूद आमदनी के मामले में उनकी जेबें खाली होती हैं। अपने इस पुश्तैनी धंधे में कड़ी मेहनत के बावजूद उनकी रोजी-रोटी नहीं चल पाती है जिसके चलते समुदाय कंगाली और भुखमरी से जूझ रहा है।

कुछ समय पहले तक तो लोहे के तसले व बाल्टियों की कारीगरी से रोटी का इंतजाम हो जाता था। जब से प्लास्टिक की चीजों ने घर में पहुंच बनाई और खाओ-पीओ व फेंको की संस्कृति बढ़ती जा रही है, तब से तो स्थिति बेहद विकट हो गई है। ये लोहे के तसलों के तल्ले लगवाने के तराने छेड़ते फिरते हैं और लोगों ने घरों में लोहे के तसले रखने छोड़ दिए हैं। तो फिर रोटी कैसे निकलेगी। सिकलीगर लोगों का समय के साथ नहीं चल पाने के पीछे एक कारण इनकी कबीलाई और घुमंतु जीवन शैली भी है। इनका जीवन आदिवासियों जैसा है और जीवन पूरी तरह से जल-जंगल पर टिका हुआ है। आज भी सिकलीगर समुदाय के लोग डेरे बनाकर रहते हैं। करनाल ज़िले में इनके डेरे शहरों से दूर यमुना नदी के किनारे बने हुए हैं। जब यहां पर ये आए थे तो उस वक्त उनके डेरे जंगलों में बने थे और पूरा क्षेत्र पानी से भरा हुआ था, जहां पर तरबूज की प्लेजें लगाई जाती थी। आज भी इस समुदाय के लोग शिकार करते हैं। शिकार के लिए इन्हें हथियार और जाल बनाने आते हैं। इन हथियारों को लेकर इनमें गौरव-गाथाएं चलती हैं। जंगल से शिकार करने पर जानवरों के सींग और दांत आदि झोंपड़ियों में सजाना इनकी शान का प्रतीक होता है। जंगलों के लगातार कटते जाने और यमुना के सूखते जाने के कारण इनके जीवन में एक अजीब खालीपन दिखाई देता है। शायद इस खालीपन को भरने के लिए भी ये एक स्थान से दूसरे स्थान पर मारे-मारे फिरते हैं।

सिकलीगर मुख्यधारा से बिल्कुल अलग दिखाई देते हैं। इनकी संस्कृति आदिवासियों जैसी है। इसके बावजूद हरियाणा में इन्हें जनजाति का दर्जा नहीं दिया गया है। जबकि इनकी जीवन-शैली देखकर साफ हो जाता है कि ये किसी भी तरह से जनजाति से कम नहीं हैं। हाल ही तक यह माना जाता था कि इस समुदाय की घुमंतु प्रवृत्ति है। इन लोगों को विभिन्न स्थानों पर ले जाने वाले ड्राईवर मदन ने इस धारणा को मिथ्या साबित कर दिया। उन्होंने बताया कि जब ये काम-धंधे के लिए दूसरे स्थान पर जाते हैं तो अपनी सिकरी (झोंपड़ी)के आगे कांटेदार झाड़ियां लगाते हैं और जाने से पहले रोते हुए शोक मनाते हैं। अपनी झोंपड़ी, बस्ती व डेरे से जाते हुए किया जाने वाला विलाप साफ बताता है कि घुमंतु प्रवृत्ति नहीं मजबूरी है।

सारा साल एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमने-फिरने के बाद ये एक-दो महीने अपने डेरों में इकट्ठे होते हैं। अक्सर वीरान रहने वाली इनकी बस्तियों में तब उत्सव का माहौल होता है। ये लोग नए कपड़े सिलवाते हैं और अपने बच्चों की शादियां करते हैं। आज जब हम 21वीं सदी की बात कर रहे हैं तो सिकलीगर समुदाय के लोग आज भी बाल विवाह करते हैं। एक जगह से दूसरी जगह घूमने की विवशता के कारण जीवन में स्थायीत्व नहीं है। इससे बच्चों की पढ़ाई भी नहीं हो पाती है। शिक्षा के मामले में इस समुदाय की बेहद खराब स्थिति है। इस समुदाय से एक-आध ही व्यक्ति सरकारी सेवा में है। हरियाणा के ज़िला-करनाल के गांव डेरा सिकलीगर (हलवाना) में करीब चार हजार की आबादी पर चार-पांच लड़कियों को आंगनवाड़ी वर्कर व आशा वर्कर बनने का मौका मिला है। समुदाय की कोई भी लड़की स्नातक तक की शिक्षा हासिल नहीं कर पाई है। शिक्षा के अभाव में ही बाल विवाह होते हैं और बाल विवाहों के कारण बच्चे शिक्षा के क्षेत्र में आगे

नहीं जा पाते हैं। बाल विवाह के कारण महिलाओं और बच्चों के स्वास्थ्य पर भी विपरीत प्रभाव पड़ रहा है। शादी के बाद परिपक्व होने से पहले ही लड़कियां मां बन जाती हैं। इससे समुदाय में जन्मदर अधिक है। लेकिन मृत्यु दर भी अधिक है। डेरों और बस्तियों में स्वच्छता और स्वास्थ्य सेवाओं का अभाव होने के कारण कई बार बिमारियां समुदाय के लोगों को चपेट में ले लेती हैं।

सिकलीगर समुदाय के लोग शादियों के मामले में हरियाणा की खाप-पंचायतों की तरह कट्टर नहीं हैं। शादियों से पहले लड़का-लड़की की सहमति जरूरी है। अक्सर लड़कियां और लड़के अपने जीवन साथी का चुनाव खुद करते हैं। प्रेम का इजहार वे एक-दूसरे के ऊपर पानी फेंक कर करते हैं, इससे इनके प्रेम का आस-पास के लोगों को पता चल जाता है। अक्सर गांव के गांव में शादियां होती हैं। समुदाय में शादी के समय दहेज देने की परम्परा भी नहीं है। परम्परागत तौर पर शादी का सारा खर्च वर पक्ष के जिम्मे है। विवाह समारोह में शामिल होने के लिए शगुन के रूप में कन्या दान देने की परम्परा भी नहीं है। लड़कियां परिवार द्वारा चुने गए उनके जीवन-साथी को रिजेक्ट कर सकती हैं और करती भी हैं। इस समुदाय में ऑनर किलिंग जैसी क्रूरता दिखाई नहीं देती। यही नहीं समुदाय में खुलेपन व जीवन साथी चुनने की आजादी होने के कारण बलात्कार जैसे अपराध भी नहीं होते हैं। हरियाणा और पंजाब की बहुत सी जातियां व समुदाय बेटियों को बोझ मानने के लिए कुख्यात हैं। कन्या और देवी पूजा का ढोंग करते हुए कई लोग उनसे छुटकारा पाने के लिए धड़ल्ले से कन्या भ्रूण हत्याएं करते हैं। वहीं सिकलीगर समुदाय में बेटियों को बोझ नहीं माना जाता। बेटियों के जन्म पर भी उसी प्रकार से खुशी मनाई जाती है, जैसे बेटों के जन्म पर। यदि हरियाणा के ही विभिन्न समुदायों के लिंगानुपात का तुलनात्मक अध्ययन कर लिया जाए तो सिकलीगर समुदाय में अनुपात या तो बराबर मिलेगा या फिर बेटियां अधिक होंगी। इस मामले में सिकलीगर समुदाय हरियाणा के अगड़े और पढ़े-लिखे समुदायों के लिए रोल मॉडल हो सकता है।

शिक्षा के मामले में इनकी मां-बोली का विशेष ध्यान रखा जाना चाहिए। इनकी बोली पंजाबी के नज़दीक है। गुरु गोबिंद सिंह की सेना से संबंध रखने, इनकी वेश-भूषा, सिर पर पगड़ी, दाढ़ी आदि को देखकर भी ये सिक्ख धर्म के ज्यादा नज़दीक हैं। ये सिक्खों के त्योहारों को मनाते और गुरुद्वारे में जाते रहे हैं। बाद में इस समुदाय की अधिकतर आबादी निरंकारी मिशन के साथ जुड़ गई। इनकी बोली-भाषा और परम्पराओं का संज्ञान लिए बिना समुदाय के बच्चों की बेहतर शिक्षा का प्रबंध नहीं हो सकता है। कुछ युवाओं ने दसवीं और बारहवीं तक की शिक्षा भी ग्रहण की है। लेकिन अधिकतर बच्चे घुमंतु जीवन और विभिन्न प्रकार की समस्याओं के कारण शिक्षा पांचवीं या आठवीं से पहले ही छोड़ देते हैं। इन डेरों में खुले स्कूलों में सुविधाओं और अध्यापकों का टोटा बड़ी समस्या है। इनकी मातृभाषा पंजाबी पढ़ने-पढ़ाने की सुविधा नहीं है। यदि प्रतिभाओं की बात करें तो इस समुदाय के बच्चों में विभिन्न प्रकार की प्रतिभाएं हैं। गायन-वादन के मामले में बच्चे बड़े बेमिसाल हैं। लेकिन शिक्षा के अभाव में प्रतिभा को निखारने का अवसर नहीं मिलता है।

सिकलीगर लोगों के जीवन में स्थायीत्व लाने और उनके पुनर्वास के लिए इनके डेरों व गांवों में पढ़ाई और दवाई की बेहतर व्यवस्था की जानी चाहिए। उक्त सात गांवों की ही बात करें तो वर्षों से समुदाय के लोग इन गांवों में रह रहे हैं। लेकिन इनकी अपनी कोई जमीन नहीं है। गत वर्षों में महात्मा गांधी ग्राम बस्ती योजना के तहत पूरे प्रदेश में बीपीएल और अनुसूचित जाति के लोगों को सौ-सौ वर्ग गज के प्लाट वितरित किए गए, लेकिन इन गांवों के सिकलीगर लोगों को ये प्लाट भी नहीं दिए गए। इंदिरा आवास योजना के बावजूद बहुत से लोग सिरकियों में ही रह रहे हैं। सिरकियों में शौचालय की कोई व्यवस्था नहीं है, जिससे खुले में शौच जाने की यातना झेलने के लिए बच्चे, बूढ़े और महिलाएं मजबूर हैं। इनके डेरे गंदगी और बिमारियों का साम्राज्य हैं। डेरों में झोलाछाप डॉक्टरों का धंधा खूब चलता है। यह समुदाय झाड़-फूंक में तो यकीन नहीं करता था, लेकिन अब कुछ लोग अंधविश्वासों में भी पड़े हुए हैं।

डेरा हलवाना में पंचायत सदस्य गीता कौर, महिला अनार कौर, अनीता कौर व महेन्द्र कौर बताती हैं कि अन्य समुदायों से कुछ मामलों में लड़कियों की स्थिति अच्छी होने के बावजूद खाना बनाने की जिम्मेदारी महिलाओं की है। इसके लिए ईंधन की व्यवस्था करना भी किसी आफत से कम नहीं है। महिलाओं को चूल्हा जलाने के लिए लकड़ी इकट्ठा करने के लिए कई-कई किलोमीटर चलना पड़ता है और लकड़ी के ढेर सिर पर रखकर लाने पड़ते हैं। महिलाओं के लिए यह बहुत बड़ी समस्या है। पशु पालन नहीं होने के कारण उपले भी नहीं बन पाते। आसपास के गांव के लोग उनके गांव में उपले बेचने के लिए आते हैं और दो रुपए का एक उपला देते हैं। उन्हें आटा-दाल तो उधार मिल जाता है, लेकिन चूल्हा जलाने के लिए लकड़ी नहीं मिलती है। बार-बार चूल्हा जलाने से बचने के लिए पूरे समुदाय में सिर्फ दो ही बार खाना बनाया जाता है। उन्होंने मांग उठाई कि सरकार को उन्हें मुफ्त चूल्हे और सिलैंडर देने चाहिएं। हरप्रीत सिंह, भजन सिंह, शेर सिंह, सुरजीत सिंह, मनोज सिंह व सोनू सिंह ने कहा कि वर्षों से जिन डेरों व गांवों में वे बसे हुए हैं,वे स्थान आज भी शामलात भूमि के रूप में जाने जाते हैं। उन्हें प्लाट और घर बनाने के लिए अनुदान दिया जाए तो उनके जीवन में स्थायित्व आ पाएगा। सरकार को उनके डेरों में लोहे के औजारों और उपकरणों का कौशल विकास केंद्र और उद्योग लगाने, स्कूलों को अपग्रेड करके सुविधाएं बढ़ाने और बिमारियों से बचाने के लिए स्वास्थ्य केंद्र खोलने का काम तत्परता से करना चाहिए।

हिन्दी प्राध्यापक, राजकीय वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय, पटहेड़ा, इंद्री करनाल, 094662-20145

●

कुलदीप कुणाल की कवितायें

अधबने फूल की हिमायत में

उस स्कूल में बहुत से चित्र थे
एक बच्चा चिंतित था क्यूंकि होमवर्क पूरा नहीं था
एक बच्चे को ज़ोर की भूख लगी थी और वो छुट्टी के इंतज़ार में था
एक बच्चा मां से ख़फ़ा था
एक बच्चे का आज ही जन्मदिन था
एक बच्ची अपने बालों में उलझी थी
एक बच्ची की दादी को आज ही घर आना था
एक बच्चा अपने सहपाठी को चिढ़ा रहा था
एक बच्चा टीचर से छुप अपनी कॉपी में फूल बना रहा था
अचानक धमाके हुए.. गोलियां चलीं... खून ही खून था...
बचपन मर गया था। बेशर्मी, बेरहमी ज़िंदा थी।
वो किसी देश के, किसी ज़ात के बच्चे नहीं थे..
इस धरती के बच्चे थे वो, जो मार दिये गये
वो इस दुनिया के बच्चे थे...
जो दहशतग़र्दी, दंगों, बलात्कारों और नफ़रत से बनती इस दुनिया में-
कुछ मासूमियत और बेफ़िक्री पैदा करते।
वे युद्धों के बाज़ार में शायद ऐसा बम बनाते जिसके फटते ही
पूरी दुनिया गलबहियां डाल मुहब्बत-ओ-ख़ुशी से झूमती..
जब हमला हुआ तो बेफ़िक्र बच्चे उधेड़-बुन में थे।
नीली स्याही से कुछ लिख रहा था कोई नन्हा हाथ।
वो क्या लिख रहा था?
कौन सी भाषा ?
कौन सी कहानी....कविता?
वो बच्चा जो छुप कर अपनी कॉपी में फूल बना रहा था-
वो फूल अधबना ही रह गया...
(16 दिसम्बर2015,को पेशावर के एक स्कूल में हुए दहशतगर्द हमले के ख़िलाफ़।)

आती रहेंगीं बेटियां

जीवन निरंतर चलता रहे
ये उसूल कुदरत ने बनाया था
और हमने वो उसूल तोड़ दिया।
फिर कुछ यूं हुआ की हमने कुदरत को सुनना छोड़ दिया ।
हमने जंगल से भी बदतर माहौल बनाया ।
युद्ध किए और खून बहाया ।
रिश्तों को मुनाफाखोरी में बदल दिया
बलात्कार किए
बहनो से अपने कपड़े धुलवाए
और माँओ को त्याग की मूर्ति बना
उनकी आज़ादी को निगल गए।
गर्भ पर दूरबीन तैनात कर दी गई
ताकि बेटियां पैदा ना हो।
मगर बिन बुलाई अनिच्छित बेटियां,
आती रही, आती रहेंगीं।
समूचे जगत के कान में हौले से कहेगी
देखो मैं फिर आ गई।
बेटियां फिर भी आती रहेंगी, ये बताने
कि जगत में अब भी बहुत कोमलतम
बचा रह सकता है ।
बेटियां आती रहेगी
मृत पिताओं की स्मृतियों को जीवित रखने।
फिर से बुनने और अपने हिस्से का जीवन चुनने आती रहेंगी बेटियां।
जाल कुतरने और खुस-फुस करने आती रहेंगी बेटियां।
बूंद-बूंद जोड़ने और झूठ बोलने बेटियां आती रहेंगी ।
इज्जत के आसमान में ओज़ोन बन आती रहेंगी बेटियां।
शर्म सार ज़माने से नज़र मिलाने
गाली खाने
और बेटों को रिझाने, आती रहेंगी बेटियां।
बेटियां ये बताने आती रहेंगी की प्यार जिस चिड़िया का नाम है,
असल में वो एक चिड़िया ही है।
उसे आजादी से उड़ने दो
और कतरा-कतरा जुड़ने दो समय के कटोरे में प्यार ।

डिजिटल चावल

और चींटी चावल का दाना छोड़ कर चली गयी,
और इस तरह से चावल का वो दाना सुदामा के हाथों कृष्ण को नसीब हुआ।
बात यहीं ख़त्म हो जाती तो गनीमत थी;
चावल का वो दाना उगाने वाला किसान परसों रिक्शा चलाता मिला।
बोला- 'अब खेती में पूरा नहीं पड़ता, इसलिये फैजाबाद छोड़ आया,
अब रिक्शा चलाउंगा...'
अब चींटियों की नवीं नस्ल पछता रही है कि-

हमारी पूर्वजों नें वो चावल का दाना क्यूं छोड़ दिया।
इंडिया को राशन खिलाने वाला किसान अभी भाषण खा रहा है।
डिजिटल हो रही ज़मीन को 'टच' करके चावल का दाना उगा रहा है॥

वर्जीनिया को पढ़ते हुए

एक अदद कमरे की ज़रूरत है
एक प्याली कॉफ़ी जहां हो
एक प्याली कॉफ़ी और कुछ किताबें
कुछ देर का बेबाक लेटना
कुछ अन्दरूनी कपड़े !
कुछ अंदरुनी कपड़े ?
कुछ अंदरुनी कपड़े फेंक दिए जाएं बेधड़क
या सुखा दिए जाएं लापरवाह
जो दबे रहते हैं घर की किसी अलमारी मेंं, एक रहस्य की तरह
जो बाज़ारों में बिकते हैं नुमाइश होकर
जिन्हें खुले में सूखता देख पिताओं की धड़कनें तेज़ हो जाती हैं
और सभ्यता की सांस फूलने लगती है।

बीस बरस की लड़की

अब हो गयी तुम पूरे बीस बरस की लड़की
ये उम्र है किसी का कहा ना मानने की
अपनी कहने की, करने की
हालांकि मुश्किल है इक लड़की का इस उम्र का लुत्फ़ उठाना
इस देश में इक लड़की को गलतियां करने की इजाजत नहीं है
क्यूंकि लड़की ने गर गलती की तो बहुत सारी गलतियां पकड़ी जाएँगी
इसलिए बीस बरस की लड़की को अपना यौवन पहचानने की इजाज़त नहीं
जबकि उसका शरीर परखती हैं नुक्कड़ के दुकानदार की आँखें
ओ बीस बरस की लड़की, ये उम्र है वही;
जिसमे लडकियां प्रेम करती हैं
बालकनी से बाहर के लड़कों को ताकती हैं
और अपने शरीर की कम्पन भांपती हैं
मगर कुछ लडकियां ठीक इसी उम्र में अपने भीतर झांकती हैं
और अपने सवालों को भरपूर पनपने देती हैं
अपने शरीर की तरह, अपने शरीर के साथ-साथ
अपने इरादों को पूरा क़द देती हैं
अपनी ज़िन्दगी को मकसद (या यूं कहें कि बने-बनाए मकसद को ठोकर मारती हैं..)
अपने लिए दु:ख और बदनामी को चुनती हैं
जो अपने मासिक चक्र में देखती हैं किसी संभावना की सूरत
और जैसा की तुम जानती हो,
सम्भावना की कोई उम्र नहीं होती
उम्र होती है इक लड़की की
बीस बरस की लड़की के मकसद की उम्र नहीं होती।

आफत

आफत का क्या पता हुज़ूर जाने कब टपक पड़े...
राजधानी में एक बम धमाका हुआ और टूट पड़ी आफत,.
रसोई में नमक ख़त्म और हो गया टंटा...
क्या मुंह लेकर जाये बीवी, मियां के आगे...
आफत से तो अब कोई भी दूर नहीं जनाब...
आप भी नहीं...
आफत के पास बहुत बड़ी दूरबीन है,
ओजोन से झांकती है आफत...
अभिनेता को संवाद भूल गए मंच पर तो हो गयी आफत...
वैसे इम्प्रोवाइजेशन अच्छा जुगाड़ है....
हर कोई कर रहा है इम्प्रोवाइजेशन....
हर कोई कर रहा है अभिनय,
मगर फिर भी देखिये कितना खराब अभिनय है हमारी फिल्मों में...
और आफत हमारी रगों में दौड़ती है...
किसी सिरफिरे ने पूछ लिया सवाल और लीजिये हो गयी आफत...
मच गया बवाल...
भोपाल अच्छा शहर है वैसे बशर्ते वहाँ आफत ना हो तो...
वैसे तो हर गाँव-शहर अच्छा है बिना आफत के...
राजधानी भी कहाँ बुरी है...
पर यहां तो बाराह्मासों आफत का मौसम है...
दिल्ली दिल है साहब देश का...
और इस देश को दिल की बीमारी है,..
बस यही एक आफत है...

सभ्यता के गुमान में

सदियों पहले जब आदिमानव बिना कपड़ों के जीता था तब भी उसे एक मादा ने पैदा किया था।
अपने शरीर में धारण किया था उसका शरीर
उसे जन्मा और अपनी छाती का दूध पिलाया।
ये वो एहसान है जिसे इंसानी नस्लें कभी नहीं चुका सकतीं।
फिर एक दिन यूँ हुआ-
मादा के शरीर पर हमला हुआ
और सभ्यता के गुप्तांग में लोहे की छड़ गाड़ दी गई..
आज जब डिजीटल हो रहा है समूचा जगत।
तब चवन्नी छाप गालियों में अपनी ही मां और बहनों के गुप्तांग बन रहे हैं चुनौतियां
मानो समूचा जगत उन्हें ध्वस्त कर देना चाहता हो

पर क्या कभी कुचला जा सकता है एक औरत की छातियों के उभार को?
उस दूध को जिससे पिता-समाज का पौरुष बना?
जिसने कितनी ही सभ्यताओं को अपना दूध पिलाया, पाला-पोसा।
एक औरत का गुप्तांग जो भरतवाक्य बन गूंजता है हमारे गाली-गलौच में।
एक स्त्री का गुप्तांग जिसे हमारी गालियों के इतिहास से निकाल दिया जाये तो कुछ भी नहीं बचता।
एक बार फिर दोहराता हूं उपदेश की तरह-
एक औरत का गुप्तांग नहीं है मज़ेदारी और गाली-गलौच के लिए।
उसने जन्म दिया है समूची मानव जाति को, तुमको।

आइये देखें

आइये देखें
रोज़-रोज़ गिरावट की नित-नयी किस्में..
नाचती हुई नायिका के थिरकते हुए नितम्ब..
और नायक का निगेटिव शेड, हंसोकड़ी..
अवसर की चौपड़ सजाते लोग..
पसरते हुए रोग ..
आइये देखें।

आइये देखें
कि और कितना गिरा जा सकता है
कि बेशर्मी और ताक़त की दुकान और कितनी चलती है
कि अपना रास्ता बनाता हुआ आदमी खुद को कितना भूल जाता है
कि भीतर का लालच इंसानियत को कितना खारिज करता है
कि बुद्धिजीवी बनने के फार्मूले किस क़दर कामयाब हैं
आइये देखें।

आइये, सहमति और आत्मकेंद्रित युग को लौटा लायें
जहां केंद्र में 'मैं और सिर्फ मैं' है
जहां महज़ इस्तेमाल है
जहां तर्क खुद को आईने में ना देखने का ज़रिया है
आइये देखें।

आइये देखें
लाभ का गणित और खांसता हुआ बूढ़ा...
चहकते हुए लोग मगर शब्दों का कूड़ा ..
आइये फिर से एक 'आइटम नंबर' कल्पित करें,
जिसमे सिर्फ और सिर्फ नंगई देखें..
आइये देखें बिना कुछ किये-धरे
बस देखते रहें
देखने का आनंद उठायें ।
आइये देखें?

विदाई समारोह

एक विदाई समारोह देखा।
निबटारा देखा।
रिश्तों का पिछवाड़ा देखा।
कुछ आंसू थे, बेखुशबू के फूल बिछे थे-
पर जाते-जाते जाने वाले ने मुड़कर दोबारा देखा।
कुछ आंसू थे, कुछ पछतावे, कुछ लालच थे, कुछ खामोशी।
एक शिकायत का गट्ठर था।
इक पत्थर था बड़ा ही भारी, जो सीनों पर रखा रहा था बारी-बारी।
आशिकों का दिल फिर भी नर्म है।
पर अफवाहों का बाज़ार गर्म है-
इक चाकू था एक पीठ थी, माशूका ही ज़रा ढीठ थी।
इक भंडा था जो आशिक ने ढीठ के सर पर जमा के फोड़ा।
आशिक गांठ लगाता फिरता, माशूका ने नाता तोड़ा।
आओ उदार बनें अब थोड़े, टूट-फूट पर क्या बतियायें...
आओ उनकी बात करें जिनके अब तक चक्कर चलते।

सच के हक़ में

तुम जानते हो कि तुम दिमाग़ को मार नहीं सकते।
तुम जानते हो कि एक दिन तुम्हारी बेशर्मी भी
तुम्हारे किसी काम ना आयेगी।
तुम ज़ोर-ज़ोर चिल्ला सकते हो मगर सहज तर्कों से घबराते हो।
तुम बहस नहीं कर पाते इसलिये साज़िश पर उतर आते हो।
तुम्हारे विकृत चेहरों पर कभी-कभी प्यार आता है।
तुम्हारी नासमझी पर अफ़सोस होता है कि तुम अब भी डराने में यक़ीन रखते हो।
मगर एक बात कहूं-'सच कहना सबसे बड़ी नियामत है।'
और सच को पहचान लेना सबसे बड़ा हुनर..
तुम ज़रा सच के हक़ में आकर तो देखो,
सच कहता हूं बहुत मज़ा है।
आओ तो... मेरे प्यारे राष्ट्रभक्तों।

मो : 98914-19707

●

आंखिन देखी

ये क्या जगह है दोस्तों, ये कौन सा दयार है

–सुरेन्द्रपाल सिंह

फरवरी 2016 के कुछ दिन हरियाणा प्रदेश के लिए जलजले जैसे दिन थे। शायद इससे पहले इतना अराजक और आगज़नी का माहौल सन् 1947 में देश के बंटवारे के वक्त देखा गया था। थोड़ी उत्सुकता और कुछ सामाजिक रुझान के वश सारे प्रभावित इलाक़ों में कुछ अन्य मित्रों के साथ करीब करीब 2 बार जाना हुआ। कहीं विस्मय, कहीं रुदन को रोकने का असफल प्रयास, कहीं दम्भ भरी मूंछों का ताव, कहीं झूठ और मक्कारी, कहीं अफ़सोस भरे भाव, कहीं बेबसी और लाचारी, कहीं नफरत की सीमेंट से चिनाई की जा रही दीवारें, कहीं मोम की तरह पिघलते दिलों का लावा, कहीं जवान मौत को झेलती माँओं के खुश्क चेहरे, कहीं बदले की भावना की चिंगारी और कहीं कहीं प्रेम के फूलों में सुंदर सुंदर रंग भरते हुए तल्लीन हाथ दिखाई दिए। यूं लगता है जैसे करीब एक महीने में अनेकों वर्ष की ज़िन्दगी जी ली हो मैंने।

चाहे रोहतक हो या झज्जर, गोहाना हो या कलानौर, हाँसी हो या कलायत, जहां भी जाना हुआ दर्द और गुस्से की भी जातियां जाट, पंजाबी, सैनी, गुज्जर, बाल्मिकी आदि के रूप दिखाई दी। पहली बार लगा कि जातियां सिर्फ इंसानों में ही नहीं बल्कि मुलभूत इंसानी एहसास और संवेदनाएं भी जातियों के सींखचों में कसमसाती हुई दिखाई दी। गोहाना में अगर एक बाल्मिकी युवक को फरसे से काट कर और आँखों में जेली घुसेड़ कर मार दिया जाता है तो इसका दर्द सिर्फ बाल्मिकी समुदाय को ही है। ना तो मारने वालों को इसका कोई अफ़सोस और ना ही अन्य समुदायों को कोई विशेष पीड़ा। रोहतक में पुलिस द्वारा छात्रों की निर्मम पिटाई का रंग भी जाति के चश्मे से देखा जा रहा है जबकि पिटाई उन सबकी हुई जो भी सामने आ गया। फ़ौज की गोलियों से युवक मरे तो फ़ौज की रेजिमेंट कौन –2 सी थी? यहां भी जाति के लेबल हवा में है।

लूटपाट, आगज़नी, और यहां तक कि मार–काट का दंश जातियों के चौखटे में बंद दिखाई दिया। हिंसा करने वालों की वकालत

करने वाले इन वारदातों का जस्टिफिकेशन दे रहे थे या वक्त और परिस्थितियों के अनुसार ये कह कर अपना पल्ला झाड़ने की कवायद करते हुए दिखाई दिए कि उन्हें उन बातों का ज्ञान ही नहीं है या ऐसे काम तो नीची जाति वाले ही कर सकते हैं। जिस सीमा तक जान माल के अलावा दिलों में दरार पड़ने का नुकसान हुआ है उसका एहसास मूंछों के ताव के नीचे बेबस होते हुए दिखाई दिया।

दो बातें कबीलाई गर्व और गौरव को ठेस पहुंचाती महसूस हुई – लूटपाट और महिलाओं से बदसलूकी। जहां आगज़नी और तोड़–फोड़ में गर्वोक्ति का एहसास झलकता हुआ दिखाई दिया वहीं लूटपाट की जिम्मेदारी निम्न जातियों पर शिफ्ट करते हुए बदसलूकी की बात को बदनाम करने के एक बड़े षड्यंत्र के रूप में रखा गया।

उकसाने के तारों की तलाश और कोई तार ना मिलने पर काल्पनिक तार ढूंढने का सिलसिला लगातार दिखाई दिया। अमानवीय स्तर तक कदम उठाने की उत्सुकता को हिम्मत के रूप में पेश किया जाना और उसके लिए अफवाहों का सहारा लेना जैसे जरूरत बन गई थी। जैसे कि 'रोहतक में पुलिस ने जाट छात्रों की लाशें बिछा दी थी', झज्जर में 'छोटू राम धर्मशाला में 35 बिरादरी वालों ने लाशों के टुकड़े टुकड़े कर के डांस किया', 'फ़ौज ने नौजवानों के माथों पर गोलियां चला कर लाशों के ढेर लगा दिए हैं' और 'फलां जात वालों ने ये कर दिया व फलां ने यूं'। ऐसी अफवाहों ने आग में घी का काम किया लेकिन इन अफवाहों के झूठ पाये जाने पर भी कुछ अति कर गुजरने पर भी किसी अफसोस का एहसास ना के बराबर है।

गांवों में माइक से इकट्ठे होने का आह्वान और उनका हजारों की संख्या में ट्रालियों में भर कर हाथों में जेली और फरसों को लेकर शहरों की ओर कूच करना, पुलिस और फ़ौज का मूकदर्शक रहना, आम जनता द्वारा डर के मारे घरों में दुबक जाना, टारगेट करके आगजनी, लूटपाट और तोड़ फोड़, घरों में घुस कर सर्वनाश कर देना, कुछ निर्मम हत्याएं भी कर देना, रेल, सड़कों और आम रास्तों को कई कई दिनों तक जाम कर देना – ये मंजर ना जाने कौन सी सभ्यता का संकेत है। कम से कम ये सब देसा में देस हरियाणा की परिकल्पना से तो इंच भर भी मेल नहीं खाता।

18–19 से लेकर 28–30 की उम्र के नौजवान ना तो बुजुर्गों के कहने से रुके और ना ही किसी और के। डीघल में कोई बता रहा था कि अधकचरे पढ़े लिखे, बिन ब्याहे, बेरोजगार लड़कों की लंबी चौड़ी फौज को ये

लग रहा था कि आरक्षण मिलते ही उन सबको सरकारी नौकरी मिल जायेगी और आरक्षण की सुविधा लेने के लिए कुछ अतिवाद में जाना ही पड़ेगा। ये सुनकर जेहन में ये सवाल उठता रहा कि गिनी चुनी सरकारी नौकरियों में आरक्षण से इतने बड़े समूह में से कितनों को नौकरी मिल पाएगी? आरक्षण अगर मिल भी गया तो क्या रोजगार का संकट खत्म हो जाएगा?

इस यात्रा के दौरान घटनाओं से जुड़ी सूचनाओं को तोड़ने मरोड़ने का क्रम सहज ही दिखाई दिया। कलायत के गैर जाटों द्वारा बड़ी संख्या में इकट्ठे होने की घटना से मुकरना, जाट आंदोलनकारियों द्वारा किसी भी तोड़ फोड़ की वारदात से सम्बद्ध ना होने की बात कहना, झज्जर में 35 बिरादरी के नाम से छोटू राम धर्मशाला में आगज़नी और बुत को तोड़ने की घटना से अनभिज्ञता जाहिर करना, जाटों द्वारा छावनी मोहल्ले में आगजनी और हत्या की घटना से पल्ला झाड़ लेना, सुखपुरा चौक रोहतक पर सैनी बिरादरी की दुकानों को आग के हवाले कर देने की घटना को ये कह कर टाल देना कि ये तो उन्होंने मुआवजे के लिए खुद ही किया था, एक बड़े स्कूल और उसकी बसों को, कार एजेंसियों और सैकड़ों कारों को, रेवड़ी, मिठाई, मोबाइल, बैंक, फायर ब्रिगेड, थाने, स्टेशन, बस स्टैंड, अस्पताल, डाकखाना, तहसील, मार्किट कमेटी, और यहां तक कि युद्ध के दौरान भी बख्श दिया जाने वाला रेड क्रास भी आग की लपटों में जले हैं। थानों के अलावा फ़ौज की टुकड़ियों को भी हेलीकॉप्टर से आना पड़ा और हमलों का सामना करना पड़ा।

पानीपत के पास सिवाह गाँव की पंचायत और लोगों ने मिलकर जिसमें महिलाओं की बड़ी हिस्सेदारी रही है, पानीपत शहर में उपद्रवकारियों को नहीं घुसने दिया और इस प्रकार पूरे शहर को बचा लिया। बालसमन्द में आपसी झगड़े के बाद जाटों और चमारों ने मिलकर अपनी अपनी गलती को स्वीकार करके हालात को सामान्य बना लिया। इनके अलावा कितने ही व्यक्ति, छोटे छोटे संगठन हर प्रकार का खतरा मोल लेकर भी उपद्रव रोकने का प्रयास करते रहे। राज्य के कितने ही इलाके ऐसे थे जो पूर्णतया शान्त रहे।

लेकिन एक बड़ा सवाल है कि ये सब करने वाले या इनको संगठित करने वाले कौन है? जहाँ साफ़ साफ़ वीडियो क्लिप्स हैं, प्रत्यक्षदर्शी भी है वहां भी किसी समुदाय में अप्रत्यक्ष रूप से ही सही कोई स्वीकारोक्ति की भावना दिखाई नहीं देती।

रोहतक में शाम के वक्त खुले पार्क में मज़दूरों के बच्चों को गांधी स्कूल के नाम से पढ़ाने वाले मित्र ने बताया कि अब वहां बच्चों की संख्या आधी के आसपास रह गई है। कारण असुरक्षा और रोजगार का खत्म हो जाना है। शेवरले की एजेंसी में करीब 120 लोग काम करते थे, इसी प्रकार हुंडई में, मारुती में, स्कूल बस चलाने वाले, कलानौर में रेहड़ी वाले, जलाई गई छोटी छोटी दुकानों वाले हजारों गरीब परिवार बेरोजगारी और भुखमरी के कगार पर आ खड़े हुए है जिन्हें न ही मुआवजा मिल पा रहा है और न ही सहानुभूति।

डीघल गांव का आंदोलनकारियों के साथ झज्जर जाने वाला एक जांगड़ा परिवार का युवक आर्मी की गोली से मारा गया। जब हम वहाँ गए तो उसके घर के सामने वाले घर में मुख्यतया आंदोलन समर्थक चौधरी उस युवक के परिवार की गरीबी और जवान मौत पर सहानुभूति प्रकट कर रहे थे। सरकार से किसी प्रकार का मुआवजा न मिलने पर भी उन्हें आक्रोश था। जब हमने सवाल किया कि खाप ने भी ऐसे परिवारों के लिए पैसा इकठ्ठा किया है तो एकदम रहस्यमय चुप्पी और बचाव की तर्ज पर बताया गया कि खाप तो सहायता करेगी ही। थोड़ी देर बाद एकांत में एक व्यक्ति ने मुझे बताया कि मौत के तुरंत बाद तो गांव में पूरी हवा बनाई गई कि उसे शहीद का दर्जा दिया जायेगा और उसकी याद में एक मेमोरियल भी बनाया जाएगा। कुछ दिन बाद उन्हीं में से ये कहने लगे कि वो तो अवारा और निक्कमा लड़का था।

मो : 98728-90401

- गोहाना में बाल्मिकी युवक की मां उसके दो छोटे छोटे बच्चों को गोदी में लिए हुए चित्कार करते हुए कह रही बोली, 'ह्मनो इनका इस्सा के बिगाड़ राख्या है जो आई बार बिना मतलब कै म्हारे ऊपर चढ़ाई करण ण आज्यां हैं'। इस दृश्य से रुदन रोकना तो बड़ी बात थी साथ ही साथ समाज के विकराल पक्ष का काला साया मुंह बाए सामने दिखाई दे रहा था।
- कलानौर में एक छोटा दूकानदार बेबसी और लाचारी की मुद्रा में एक सवाल हमारे सामने रख रहा था, '67 साल पहले पाकिस्तान से उजड़ के आए थे, अब कहाँ जाएं'।
- रोहतक शीला बाय पास पर जब सद्भावना का एक पर्चा बुरी तरह जली हुई रेवड़ी की मशहूर दुकान वाले को पकड़ाया तो पर्चे के ऊपर सद्भावना शब्द पढ़ते ही उसने गुस्से में उसे जमीन पर दे मारा। मैंने पर्चे को उठाया और गुस्से का कारण पूछा तो जवाब मिला, 'बहुत आसान है सद्भावना की बात करना। जो म्हारे पर बीती है वा थारे पर बितदी फेर बेरा लाग्दा सद्भावना चहिये क किमे और'।
- बस अड्डे रोहतक पर एक छात्रा ने पर्चा पकड़ते ही उसके टुकड़े किये और फैंकते हुए बोली, 'पक्की जाटणी हूं, हमने जो करा ठीक करया'।
- रोहतक में एक एटीएम से कैश निकलवा रहा था तो दो लड़के उसमें घुसे और एक बोला, 'तसल्ली सी कौणी होइ ईबे, किमे आग उग और लाणी पड़ैगी'।
- म.द.यू. रोहतक में एक पीएचडी की छात्रा ने बताया, 'जाट रेजिमेंट ने तो कोई नहीं मारा। ये काम तो सिक्ख रेजिमेंट और गुरखा रेजिमेंट ने ही किया है।'

कुछ बदहवास और कुछ संभलते-संभालते

सुधीर रमणीक

फरवरी 2016 में हरियाणा के कई शहरों ने विशेषकर रोहतक में वो मंजर देखा, जिसकी शायद किसी ने कभी कल्पना न की हो। आरक्षण आंदोलन की हिंसा-आगजनी-लूटपाट में सिर्फ दुकानें, घर, सम्पति ही नहीं जले, बल्कि लोगों के दिल और भावनाएं भी खाक हुई हैं। शहरी इस सदमे से स्तब्ध हैं, हताश हैं लेकिन उनमें फिर से उठने की चाह है, बेचैनी है और बहुत कुछ है, जो बयान नहीं किया जा सकता, सिर्फ महसूस किया जा सकता है। लोगों के अहसासात को रमणीक व सुधीर ने कुछ 'खाके' कलमबद्ध किए हैं। इस घटना के संबंध में आपके पास यदि अनुभव व विचार हैं, तो उनका 'देस हरियाणा' में प्रकाशन के लिए स्वागत है। सं.

ये खाके काल्पनिक नहीं हैं। जमीनी हकीकत के बयान हैं।

गई रात तीन-चार दुकानें लूटी गई हैं, इस ख़बर के बीच सुबह उस ने दुकान खोली। डर तो था मगर इतना भी नहीं कि दुकान न खोलें। 11 बजे होंगे शायद। पुलिस और फौज आते दिखाई दिए। यह कहते हुए निकले वहां से कि कर्फ्यू लगा है, हम ने सब सम्भाल लिया है, सब अपने-अपने घरों को जाएं।

सुनने में आ रहा था कि लूटपाट ही नहीं, आगज़नी भी हुई है। सुनना क्या, घर की छत पर खड़े थे तो उठता धुआं तो दिख ही रहा था। दुकान सम्भालनी होगी। घर से निकलना चाहा। नहीं निकलने दिया घरवालों ने। बैठा रहा बेचैनी की हालत में। मगर कब तक रुकता। समझाने की कोशिश की घरवालों को। और हिम्मत कर के बाहर निकल ही गया। गली से होता हुआ सड़क पर पहुंचा। तीन लड़के। बाइक पर। ढाठे बंधे हुए। एक के हाथ में फरसा, दूसरे के हाथ में पिस्तौल वाला कट्टा,तीसरा बैग जैसा कुछ लिए हुए। कट्टा उस की तरफ लहराया। और वे तेज़ी से उस के आगे से होते हुए निकल गए।

●

अगली सुबह। फिर समझाया घर वालों को और निकला घर से। रास्ते में पुलिस चौकी थी। कुण्डी लगी थी उस पर। सादा कपड़ों में घूमता एक आदमी दिखा-पुलिस वाला था, जो अकसर चौकी पर दिखाई दिया करता था। तभी उस ने किसी को आवाज़ लगाई,कुछ कहा और निकल गया वहां से।

दुकान तो उस की नहीं आई थी लूट और आगज़नी की ज़द में, मगर कुछ ही दूर एक और जलती दुकान दिखी। फिर शोर की आवाज़ ! आगे जाने की हिम्मत न हुई। दूर से दुकान सुरक्षित देख लौट गया।

बचा ली थी वो - पड़ोसियों ने।

●

आगे दुकान। पीछे मकान। खौफजदा मियां-बीवी घर में थे। पिछले 24 घण्टों से। दुकान जल रही थी। उन की हिम्मत न हुई बाहर आने की। अंधेरे में भी, बने रहे घर में ही। बहुत कोशिश की पड़ोसियों ने कि वे बाहर आएँ। आवाज़ें लगाईं। कुंडी खटखटाई। मगर नहीं। नहीं आए वे बाहर। अगले रोज फौज आई, अन्दर से बन्द दरवाजा किसी तरह ज़ोर-आज़माइश कर खोला। बाहर लाए उन्हें। डरे-सहमे, रोते-देखते जल चुकी दुकान, खड़े थे वो उस के सामने, होश-ओ-हवास गुम।

तपिश उन तक पहुंची थी-चेहरा झुलसा हुआ था पति का।

●

मालूम नहीं क्या चीज़ थी वो। सुना है कि तीली नहीं लगाई जाती थी। कुछ फैंका अन्दर और एक साथ उठा जोर का भभका और हो गया काम - विज्ञान का चमत्कार! ? ('राज़ को राज़ रहने दो।')

●

'नुकसान पहुंचा लगता है आप की दुकान को भी।' ऊपर को निगाह डालते हुए बोला वह।

'बचा लिया पड़ोसियों ने।'

'कैसे?' - निगाहें वहीं ऊपर टिकी हुईं, कुछ जगह से फटे, तिरछे हुए बोर्ड को देखते हुए उस ने हैरत में पूछा।

'जो जख्मी बोर्ड देख रहे हो न आप, यह बलवाइयों की देन नहीं है। पड़ोसियों ने किया यह। और हमारी हिफाजत में उन की चाल कामयाब हो गई। बलवाई गुजर गए आगे,

सोच कर कि काफी है इतना ही जो कर गए यहां से बढ़ चुके उन के साथी।'

●

17 साल का ख़ूबसूरत जवान था वो – दादी बोली। मारा गया बेकसूर, दो तरफ की लड़ाई में। एक तरफ एक छोटी भीड़, दूसरी तरफ़ उस भीड़ से दो–ढाई गुना लोग। ऐसा बिछड़ा बाप से कि फिर मिला तो अस्पताल में – सफेद चादर उढ़ी, सिर्फ पैर दिखाई देते, जो काफी था समझने के लिए पूरी बात। गया था मदद को, दुकान खाली करवाने को – लौटा बाप के साथ मगर अपने पैरों पर नहीं।

●

सब बन्द था। और अफवाहें गरम। मगर शादी में तो जाना था। ऑटो पकड़ा। लेकिन कहां तक पहुंच होती उस की? वहीं तक, जहां तक बैठे न मिलते अच्छी–खांसी संख्या में लोग सड़क पर। पैदल चला। कुछ ही आगे एक चौराहे पर बैठे पाए पहले से चार–पांच गुना लोग। पहुंच तो गया शादी में। मगर माहौल में तो भारीपन था। पहुंचा न था कि वापसी का ख़याल आने लगा। रात का वक्त और.......

●

स्कूटी पर निकली थीं वो दोनों। काम हो चुका था मगर रात भी हो चली थी। चलती–फिरती सड़क थी। इस का तो कोई डर न था। मगर जिंदा हो उठे चौराहे का तो था।

●

बन्द हो चुका था पूरा बाजार। वो पहले दिन शाम को देखने आया। सब ठीक था। दूसरे दिन फिर आया। तब भी राहत की सांस ली। तीसरे दिन भी जब पहुंचा देखने तो शांति ही थी।

कुछ घण्टों बाद लपटें उठती दिखीं, बाल्टियां भर–भर आईं पानी की, भरे हुए मटके तक आए। कौन आया, किधर से आया, कब लगा गया तीली, किधर निकल गया – कुछ मालूम नहीं। आया था या आए थे? ये भी मालूम नहीं।

●

छोटे सामान की रेहड़ी है साहब मेरी – देख ही रहे हो। परदेसी हैं हम तो। दिन में कहीं और, शाम को यहां लगाते हैं रेहड़ी। ये दस दिन तो बस पूछिए मत कि कैसे बीते। कमरे में ही बन्द रहे। कमरे की छत पर खड़े हो कर देखा है धुआं उठता जगह जगह से। और सुना यह भी कि मारा गया एक आदमी हमारे कमरे से कुछ ही दूर। गया था डरते–डरते दो–चार बार गोदाम में खड़ी रेहड़ी सम्भालने। एकाध बार तो उल्टे पैर वापिस आ गया – सामने से शोर आता सुन कर। पांच हज़ार रुपये की कमाई निकल गई साहब इन दिनों में हाथ से।

●

रह–रह के ख़याल आता रहा कि बस! अब नहीं करना यह काम। और करना भी है तो इस शहर में तो नहीं। कई दिन यही ख्याल हावी रहा। मगर दिल का ही दूसरा हिस्सा बोलता – तेरे यहां तो सब तरह के, सब बिरादरियों के लोग आते हैं। दाद देते आए हैं तेरे काम की। तेरे शहर के लोगों ने तो किया भी नहीं यह सब। लोग मिलते। हौसला देते। मदद की बात भी करते। अब तय किया है कि फिर खड़ा होना है। आखिर रहना तो मिल–जुल कर ही है।

●

वो हैरान थी। ताज्जुब हो रहा था बच्चों में आए अचानक बदलाव को देख कर। कल तक के दोस्त आज कुछ खिंचे–खिंचे से थे। फिर एक बच्चे ने दूसरे को अजीब ही तरह से पुकारा – पुकारा भी उस के पहले नाम से नहीं। शायद घर–पड़ोस से निकल कर, घात लगाते हुए बात आ पहुंची थी। यहां तक – स्कूल में घर कर गई थी जात–पात की बात।

●

बेटे ने उसे बहुत मनाया – अकेला घर है हमारा उन सब घरों के बीच में, कौन बचाएगा हमें गर जान पे बन आई तो। मगर जिद्दी बाप ने भी एक न सुनी। आज तक पड़ोसी ही तो काम आते रहे थे उस के। बेटा घर छोड़ गया अपनी बीवी के साथ। मां क्या करे? रही – बीमार पति के साथ। डरी–सहमी, अफ़वाहों के बीच, तीन रातें कटीं आंखों में, अपने ही घर में कैद।

●

अजनबी थे वो। रुके थे उस घर पानी पीने के लिए। कुछ बातचीत हुई। मालूम हुआ कि एक बुज़ुर्ग और एक महिला – ससुर और बहू – बस यही लोग थे घर में। कर्फ्यू (?) लगा था। बाज़ार बन्द थे। बेसहारा इक–दूजे का सहारा बने – तब तक, जब तक बुजुर्ग का बेटा नहीं लौटा चार दिन बाद।

●

दोस्त का सन्देश पढ़ा तो वो चौंका। बेहद खिन्न था वो। घोर उदासी में। घिरा हुआ जैसे पिंजरे में। या किसी गहरी गुफा में कैद, छटपटाता, झुंझलाता कि करना चाहता है जो, वो कर नहीं पा रहा।

'कुछ नहीं है यह, ये तो होता रहता है उस के साथ। कुछ ही देर की बात है, सब ठीक हो जाएगा' – उस ने सोचा।

लेकिन फिर जो सन्देश आया तो चौंकने से आगे जा पहुंचा वो – अन्दर तक हिल गया। उस का शहर, उस का दोस्त, शहर और दोस्त से दूर वो खुद – लगा उसे कि तीनों एक ही हालत से गुजर रहे हैं – लटकते किसी ऊंची खड़ी चट्टान से, अब गिरे कि अब गिरे।

हो गुजरे हैं वो उस सब से। खड़े हुए हैं फिर से।

देखें कब तक।

'यार जिन्दा, सोहबत बाकी।'

'उम्मीद पे टिकी है जिन्दगी।'

ramneek.mohan@gmail.com
sudhirohtak@gmail.com

फैलाव और सिकुड़ाव

'फैलाव और सिकुड़न का सिद्धांत समझाओ', शिक्षक ने एक विद्यार्थी से पूछा।

'कोई चीज गरमी से फैलती है और ठंडी होने पर सिकुड़ती है।'

'अच्छा, तभी गर्मियों में छुट्टी लंबी होती है और जाड़े में छोटी।' एक दूसरे विद्यार्थी ने कहा।

रमणीक मोहन की कविताएं

मौलाना अबुल कलाम आज़ाद की एक किताब है 'ग़ुबार-ए-ख़ातिर' यानी दिल के ग़ुबार। यह किताब उन ख़तों का मज्मूआ है जो उन्होंने 1942 में अपनी गिरफ़्तारी के बाद अहमदनगर क़िले में नज़रबन्दी के दौरान अपने एक दोस्त को लिखे थे। ये रचनाएँ भी दिल के ग़ुबार ही हैं। और ये भी एक ख़ास तरह की नज़रबन्दी के दौरान ही लिखी गईं 'नज़रबन्दी' जो इन रचनाओं के लेखक को झेलनी पड़ी आरक्षण के लिए हरियाणा में हुए उस आन्दोलन के दौरान। कुछ रचनाएँ अपने शहर से दूर एक शहर में जन्मीं जहाँ से वापिस अपने शहर पहुँचना उन दिनों मुमकिन न था वतन से दूर की 'नज़रबन्दी' ख़त्म हुई, वापिस 'वतन' आना हुआ तो नज़रबन्दी ने नया रूप लिया। न जाने कितने ही दिन लोगों से मिलते, बात करते और हालात का जायज़ा लेते हुए गुज़रे उस सब को समझने की कोशिश में कि जिस ने वहां पहुंचा दिया था जिस बारे किसी ने ख़्वाब में भी न सोचा होगा। शहर की सड़कों पर घूमने की आज़ादी तो थी मगर दिल और दिमाग़ क़ैद थे उस पूरे माहौल से पैदा हुई कैफियत में था। इसी पूरे दौर में कुछ और रचनाओं ने जन्म लिया। 1947, 1984, 1989, 2002 में जैसे एक और साल जुड़ गया हो 2016 । कई लोगों को कहते सुना इस बीच कि यह ज़ख़्म भी उतना ही गहरा है।

दुकां-दुकां धुआं-धुआं
सड़क-सड़क हुई हैरां
हुए हैं दिन अब कितने ही
पर आज भी जाओ वहां
तो पाओगे हवा में बू
जो दे रही सबूत है
कि किस तरह जली दुकां
दुकां का ही नहीं ये हश्र
अलग नहीं है फस्ल ये
यही हुआ यहां-वहां
रवां-दवां जो चल पड़े थे
काफिले हुजूम के
जो रुकने को तैयार थे
न थकने को तैयार थे
था जिन का बस यही बयां
कि हम को चाहिए है जो
नहीं मिला तो सोच लो
क्या होगा हश्र देख लो
हैरानगी की बात है
हैं जद में वो जहान भी
जहां से निकलें खेतियां
जिन्हें कहें हैं हम जवां
कि जिन के दम पे कल बने
कि जिन से ये जहां सजे
वो इल्म के इदारे भी
हुए हैं ख़ाक अब यहां
कि काफिलों ने उन को भी
न छोड़ा और किया हवाले
आग के यहां वहां
हवा ले जो उठी लपट
उसे बुझा भी लो अभी
कि अब बुझी अगर नहीं
तो ख़ाक हो रहेगा ये
तुम्हारा मेरा बाग़बाँ
जिसे बनाया मिल के था
बयाबाँ सा दिखे है जो
करें हम इस को फिर खड़ा
बनाएँ फिर से वो जहाँ
ले आएँ फिर से वो समाँ
कि फिर जलाएँ वो शमा
कि जिस शमा की रौशनी
औ' बाग़बाँ की फ़स्ल-ए-गुल
बनाएँगे नया जहाँ।

2.

कर्फ्यू

सड़क सुनसान
बस्ती के वासी
घुस चुके थे घरों में
इस ऐलान के बाद
कि लग गया है कर्फ्यू

मगर क्या ग़ज़ब था
वो कर्फ्यू भी देखो
कि कुछ ही मिनट में
बढ़ा आया रेला
जैसे उठती चली आई आंधी
थी इक सरकशी की

निकला ग़ुबार
उस हुजूम-ए-आतशी का
उट्ठीं जो लपटें
वो ख़ामोश सड़कें
थीं अब धूँ धूँ करती
क्या रौनक़ थी वो भी !

आतशपरस्ती के वो सब सिपाही
हुए पाक-ओ-खुर्रम
जो उगली थी आग कुछ जुबानों ने पहले
उस की ही लौ में थे वो अब नहाते
पाकीजगी की नई रौ बनाते

गुज़र चुके हैं दिन कई उस दोस्त से मिले
कुछ ऐसी ज़र्ब आई है इस रिश्ते पे मिरे
बुलाना चाहूँ उस को तो वो मुँह को फेर ले
हो गुज़रा इन दिनों में शहर पर से क्या मिरे
टूटी यूँ डोर रिश्ते की अन्दर तलक है घाव
मैंने बढ़ाया हाथ भी तो वो बस चुप रहा
क्या क्या लुटा है इन दिनों कोई उन्हें बताए
जो ले गए हैं लूट कर इस शहर को मिरे

3.

दिल की नाज़ुक रगें टूटती हैं

किस मुक़ाम पे ले आया
शहर मेरा मुझे
पर शहर को क्यूँ दूँ इल्ज़ाम
जुर्म तो उन का है
घुटनों पे लाए
जो शहर को मेरे

4.

(उस शख़्स के नाम जिस ने दिया दिन-रात पहरा अपने इदारे की इमारत का और बचाया उस को)

खो रहो
और
सो रहो
ये खोना सोना ही
इस दर्द-ओ-ग़म की दवा अब तो

क्या कहते हो?
क्यूं तुम ऐसा कहते हो?
सो रहोगे तुम
और खो रहोगे तुम
तो कौन होगा
बागबां का
पहरा देने को?

याद करो
उस शख़्स की भी दास्तां
जो खड़ा रहा
दो दिन
दो रात
तन्हा
न घुसने दिया उन को
जो भरे ही चले आते थे
न रुकते थे
न थमते थे
नारे भी
लगाए चले आते थे
मगर फिर भी
वो रहा बेदार
न सो रहा
था वो
न खो रहा
था वो
खड़ा रहा था वो
पहरे पे
लगा रहा था वो

चाहो तो सो रहो तुम
और खो रहो तुम
मगर समझ लो ये
कि खोने-सोने में
नहीं मुदावा
दवा जो करनी है मरज़ की
जगे ही रहने के सिवा कोई और नहीं है चारा

5.

(मुश्किल वक्त में दिलेरी से काम लेने वाली एक औरत के नाम)

अपने हाथों से पंक्चर लगाती है वो
साथ ख़ाविन्द के हर पल है रहती खड़ी
साइकिल-स्कूटर की ट्यूबों के पंक्चर लगाती है वो

उन दिनों तो मगर वो रही थी खड़ी
पहरेदारी पे हर वक़्त दुकान अपनी की

साथ देने को ख़ाविन्द भी था मगर
वक्त ज़्यादा तो पहरे पे वो थी रही

उस की आंखों ने देखे
थे मंज़र सभी
हूजूमों का आना
हुजूमों का जाना
इस दुकां को जलाना
और उसे लूट जाना
किसी को तो पहले था लूटा गया बस
मगर बाद उस के जलायागया

हुजूम ऐसे थे वो
कर सके न कोई
आमना-सामना
लैस थे वो सभी
और थे तैयार भी

आया इक और रेला
मगर अब की बार
रुख़ उधर का किया
थी जहां वो खड़ी
ठेठ बोली में उस ने दुहाई थी दी
उस के लहजे से टल सा गया ख़तरा था
पर दुकां साथ की -
'किस की सै यो दुकान ?
इस का मालिक सै कौन?'
'या बी थारी सै
ज्यूकर सै मेरी खड़ी।'
'साच्ची साच्ची बता!'
'क्यां तैं बोलूं मैं झूट
बोल्लूं साच्ची सै यो बी दुकान आपणी।'
सहमी-सहमी सी आवाज़ में बोली वो
एक लर्ज़िश थी आवाज़ में उस की तब
और मुंह को कलेजा था आता हुआ
दिल की धड़कन बढ़ी
हाथ जोड़े हुए थी वहां वो खड़ी
चेहरा था ज़र्द सा
लेकिन पक्का इरादा
किया उस ने था

'जैसे मेरी दुकां
वैसी ही है
हमारे पड़ोसी की जान-ओ-दुकां
दुख में और सुख में हम जो रहे साथ हैं
कैसे कर देते उन के हवाले इन्हें-
बस यही इक ख़याल
आता था बार-बार अपने दिल में जनाब !
उन को लुटता हुआ कैसे हम देखते
जिन के हमराह हमसाया हम हैं रहे
क्यूं न उन के लिए हम न हाथ जोड़ते
और न रहते खड़े इस तरह रात-दिन !

हां, बचा ली थी हमसाए की भी दुकां!

6.

चुपचाप देखता है वो
न बोले वो न डोले वो
नज़रों से लागे है मगर
कुछ तो है मापे-तोले वो
ज्यों सोचता हो इस डगर
आया हुआ है पहले वो
जो अब लगे है वीरां सा
आबाद था मोहल्ला वो

ramneek.mohan@gmail.com

हरनाम सिंह की कविता

उस दिन

ना जाने शहर को
अचानक क्या हो गया
दिन का उजाला तो हुआ

ना सड़कों पर अखबार वाले लड़के
ना ही पार्कों की तरफ जाते लोग
गली के मोड़ पर छोटे बच्चे का बैग पकड़े
मां बस की इंतजार में नहीं

ना दुकानों के शट्टर खुलने की आवाजें
ना धूप बती की सोन्धी-सोन्धी खुशबू
ये किसकी नजर लग गई मेरे शहर को

हर दरवाजा बन्द है
दहशत में खिड़कियों से झांकते लोग
चौक में परिन्दों को दाना डालने कोई नहीं आया
ना किसी ने घर के आगे खड़ी गाय को रोटी दी

क्या जवाब दूं
जब बेटा पूछता है
पापा मेरी बस व स्कूल को किसने जला दिया?
रक्षा करने वाले रक्षक

सड़क पर जुतियां घिसते रहे
सियासत वोट गिनती रही
राज को लकवा हो गया

आग व धूएं से इमारतें ही नहीं
हमारा मुंह भी काला हुआ है
आओ शहर को लगी बुरी नजर को उतारें
शहर फिर पहले की तरह मुस्कराने लगे।

मो: 9896642577

एक पत्र

एक आदमी घर से कहीं चला गया था। एक दिन उसने अपने परिवार को एक पत्र लिखा, लेकिन उस पत्र को ले जाने वाला कोई भी नहीं मिला।

निराश होकर उसने स्वयं ही पत्र ले जाने का फैसला किया। अपने शहर पहुंच कर वह अपने घर गया और दरवाजा खटखटाया। किसी ने दरवाजा खोला। लेकिन वह आदमी घर के अंदर गए बिना बोला, 'मैं ठहरूंगा नहीं। मैं सिर्फ यह पत्र देने आया था।' और वह चला गया।

-ईरान

रामधारी खटकड़ की रागनी

आरक्षण का मुद्दा

आरक्षण का मुद्दा देखा किसा माहौल बणा ग्या रै
हरे-भरे हरियाणे ने किस तरियां झुळसा ग्या रै - (टेक)

राजनीति का स्वार्थ मन म्हं, नेता फायदा ठा रे थे
जात-पात का नारा ला के आपस म्हं भिड्वा रे थे
टीवी ऊपर बयान दे-दे, आग दिलां म्हं ला रे थे
इक-दूजे ने दाबण खातर क्रोध में भरते जा रे थे
कोये-कोये नेता ऐसा देख्या जो आग म्हं घी गिरवा ग्या रै....

जगहां-जगहां पै जाम लगा दिए, जनता न्यू लाचार करी
शीशम-कीकर काट कै गेरी, दिखैं थी जो हरी-भरी
भीड़ उमड़ पड़ी शहरां म्हं, गाड्डी भर-भर त्यार करी
लाठी-फरसे ले हाथां म्हं, जोरां ते हुंकार भरी
सरकारी तंत्र खड्या-खड्या, वो आपणा गात बचा ग्या रै....

धींगा-मस्ती शुरू हुई फिर करड़ी लूट मचाई रै
ठा-ठा कै वें लेगे सब कुछ, पाछै आग लगाई रै
स्कूल फूक दिये बच्चों के भी, दया कति ना आई रै
इसे कुकर्म नै देख-देख कै रोवें लोग-लुगाई रै
हस्पताल भी न छोड्डे, काया म्हं चक्कर आ ग्या रै....

धन लुट ग्या और माणस मरगे, घर-घर म्हं कोहराम होया
अफवाह फैली बुरी-बुरी जब दहशत म्हं आवाम होया
हरियाणे की जो रोणक थी उसका काम तमाम होया
उसनै भी तो नहीं बचाए, वो गूंगा-बहरा राम होया
इसे मंजर कै आगे लोगो हिट्लर भी शरमा ग्या रै....

इब बसण-रसण की सोचो सारे, हटके फिर निर्माण करो
भाईचारा बिगड़ण ना द्यो, इक दूजे का मान करो
समाज का जो ताणा-बाणा, उसनै ना कुर्बान करो
'रामधारी' तुम छन्द बणा कै शांति का आह्वान करो
'खटकड़िया' तो कलम चला कै दिल का दर्द सुणा ग्या रै....

मो: 94663-38445

मेरे लड़के को सिखाएं...

अब्राहिम लिंकन

अमरीकी राष्ट्रपति-अब्राहिम लिंकन ने यह पत्र अपने लड़के शिक्षक को लिखा था। यह पत्र एक ऐतिहासिक दस्तावेज है।

प्रिय गुरुजी,

सभी व्यक्ति न्यायप्रिय नहीं होते, और न ही सब सच बोलते हैं। यह तो मेरा लड़का कभी न कभी सीख ही लेगा। पर उसे यह अवश्य सिखाएं कि अगर दुनिया में बदमाश लोग होते हैं तो अच्छे नेक इंसान भी होते हैं। अगर स्वार्थी राजनीतिज्ञ होते हैं तो जनता के हित में काम करने वाले देशप्रेमी भी होते हैं। उसे यह भी सिखाएं कि अगर दुश्मन होते हैं, तो दोस्त भी होते हैं। मुझे पता है कि इसमें समय लगेगा। परन्तु हो सके तो उसे यह जरूर सिखाएं कि मेहनत से कमाया एक पैसा भी, हराम में मिली नोटों की गड्डी से कहीं अधिक मूल्यवान होता है।

उसे हारना सिखाएं और जीत में खुश होना भी सिखाएं। हो सके तो उसे राग-द्वेष से दूर रखें और उसे अपनी मुसीबतों को हंस कर टालना सिखाएं। वह जल्दी ही यह सबक सीखें कि बदमाशों को आसानी से काबू में किया जा सकता है।

अगर संभव हो तो उसे किताबों की मनमोहक दुनिया में अवश्य ले जाएं। साथ-साथ उसे प्रकृति की सुंदरता-नीले आसमान में उड़ते आजाद पक्षी, सुनहरी धूप में गुनगुनाती मधुमक्खियां और पहाड़ के ढलानों पर खिलखिलाते जंगली फूलों की हंसी को भी निहारने दें। स्कूल में उसे सिखाएं कि नकल करके पास होने से फेल होना बेहतर है।

चाहे सभी लोग उसे गलत कहें, परन्तु वह अपने विचारों में पक्का विश्वास रखे और उन पर अडिग रहे। वह भले लोगों के साथ नेक व्यवहार करे और बदमाशों को करारा सबक सिखाए।

जब सब लाग भेड़ों जैसे, एक रास्ते पर चल रहे हों, तो उसमें भीड़ से अलग, अपना नया मार्ग प्रशस्त करने की हिम्मत हो।

उसे सिखाएं कि वह हनेक की बात को धैर्यपूर्वक सुने। फिर उसे सत्य की कसौटी पर कसे और केवल अच्छाई को ही ग्रहण करे।

अगर हो सके तो उसे दुख में भी हंसने की सीख दें।

उसे समझाएं कि अगर रोना ही पड़े तो उसमें कोई शर्म की बात नहीं है। वह आलोचना को नजरअंदाज करे और चाटुकारों से सावधान रहे। वह अपने शरीर की ताकत के बलबूते पर भरपूर कमाई करे। परन्तु अपनी आत्मा और अपने ईमान को कभी न बेचे। उसमें शक्ति हो कि चिल्लाती भीड़ के सामने भी खड़ा होकर अपने सत्य के लिए जूझता रहे। आप उसे तसल्ली से सिखाएं, परन्तु बहुत लाड-प्यार से उसे बिगाड़े नहीं। उसे हमेशा ऐसी सीख दें कि मानव जाति पर उसकी असीम श्रद्धा बनी रहे।

मैंने अपने पत्र में बहुत कुछ लिखा है।

देखें, इसमें से क्या करना संभव है।

वैसे मेरा बेटा एक बहुत प्यारा और भला लड़का है।

लोक कथा

उंगलियों का खेल

तीन आदमियों को एक साथ इम्तहान में बैठना था। वे एक ज्योतिषी के पास गए। ज्योतिषी ने उनके सवालों का कोई जवाब नहीं दिया। जब वे तीनों बोल चुके तो उसने एक उंगली उठा दी।

जब इम्तहान का नतीजा निकला, तो उन तीनों में से सिर्फ एक पास हो पाया था। ज्योतिषी का नाम हो गया।

एक शिष्य ने ज्योतिषी से पूछा कि उसकी सफलता का रहस्य क्या है?

'मेरा रहस्य यही है कि मैं कुछ बोलता नहीं।' जवाब उस नौजवान को समझ में नहीं आया।

ज्योतिषी ने समझाया, 'तुमने देखा था कि मैंने एक उंगली उठाई थी। इसका मतलब यह तो सकता था कि सिर्फ एक पास होगा। ऐसा ही हुआ और मेरी भविष्यवाणी सही निकली। अगर दो पास होते तब भी मेरी भविष्यवाणी ठीक निकलती, क्योंकि तब इसका अर्थ होता कि केवल एक फेल होता और दो पास होंगे। अगर तीनों पास होते तो इसका अर्थ यों लगाया जा सकता था कि तीनों एक समूह के रूप में पास होंगे। इसका उल्टा भी सही होता।' -चीन

बर्टोल्ट ब्रेख्त

दर्शक का नाटक के अंत पर नहीं, प्रक्रिया पर ध्यान रहे

मीत

बर्टोल्ट ब्रेख्त (बर्टोल्ट आयगन फ्रीडरिक ब्रेख्त) नि:संदेह 20वीं सदी के सबसे महत्वपूर्ण लेखकों में से एक हैं। नाटक के क्षेत्र में उनका प्रभाव वैसा ही माना जा सकता है जैसा कि नावल के क्षेत्र में काफ्का का।

ब्रेख्त का जन्म 10 फरवरी 1898 को जर्मनी के बावेरिया प्रांत के ऑक्सबर्ग के उच्च-मध्य वर्गीय परिवार में हुआ। उनके पिता एक पेपर मिल के निदेशक थे। ब्रेख्त के पिता कैथोलिक और माता लूथर मत की अनुयायी थीं। ब्रेख्त का पालन लूथर मत के अनुसार हुआ। लूथर की बाइबल का प्रभाव उनके लेखन में नजर आता है। उनकी प्राथमिक शिक्षा ऑक्सबर्ग में ही हुई। 1914 में जब प्रथम विश्व युद्ध शुरू हुआ तो ब्रेख्त की देशभक्ति जल्द ही पैसेफिजिम में बदल गई और उन्होंने कुछ पैसेफिस्ट लेख भी लिखे। इसी वर्ष उनकी कुछ कविताएं और कहानियां स्थानीय पत्र में प्रकाशित हुईं।

1917 में ब्रेख्त ने म्यूनिख यूनिवर्सिटी में मेडिकल साईंस की पढ़ाई शुरू की। प्रथम विश्वविद्यालय के अंतिम वर्ष में ब्रेख्त को सेना के चिकित्सा कॉलेज में भर्ती कर लिया गया। सैनिक अस्पताल में अपने अनुभव से उन्होंने 1816 में लीलैंड ऑफ द डेड सोल्जर लिखी। 1819 में ब्रेख्त आक्सबर्ग मजदूर और सैनिक काऊंसिल के सदस्य बने। कुछ समय तक वे वामपंथी पत्र 'देर-फाल्कसविले' के नाट्य समीक्षक भी रहे।

वे म्यूनिख अपनी मेडिकल साईंस की पढ़ाई के लिए वापिस आ गए। मगर उनका ज्यादा समय नाटक लेखन में ही लगने लगा।

1918 में ब्रेख्त ने 'बॉल' लिखा और 1919 में 'ड्रग्स इन द नाइट' 29 सितम्बर 1922 को ड्रग्स इन नाइट का फायख्तवेगर द्वारा पहला मंचन हुआ। ब्रेख्त को अब सक्षम नाटककार के रूप में मान्यता मिल चुकी थी। नवम्बर 1922 में उन्होंने ओपरा गायक मारियाने शोल्फ से शादी कर ली।

1926 के आसपास वे मार्क्सवादी विचारों और लेखन के प्रभाव में आने लगे। उन्हें लगने लगा कि मार्क्सवाद ही समाज का वैज्ञानिक विश्लेषण है। 1926 में ब्रेख्त की कविताओं का संग्रह 'बुक ऑफ फेमिली रिवोल्यूशन' प्रकाशित हुआ। 1927 में ब्रेख्त का अपनी पत्नी से तलाक हो गया। 1929 में उन्होंने हेलन वेगल से शादी कर ली। नाजीवाद के उदय से ब्रेख्त का समाजवाद में विश्वास और बढ़ गया और उन्होंने स्पष्ट रूप से शिक्षात्मक नाटक लिखे, जिनका मंचन मजदूर संघों और स्कूली बच्चों द्वारा किया जाना था।

ब्रेख्त में भी स्वतंत्रता के बीज थे, जिस कारण किसी भी सत्ता के आगे वे बिना प्रश्न किए सिर नहीं झुका सकते थे। इसी कारण शायद मार्क्सवादी विचारकों से भी वे पूरी तरह सहमत नहीं हुए। मार्क्सवाद से ही उन्होंने लगातार प्रश्न करते रहना सीखा था और वह इसे एक मत बनाने के पक्ष में नहीं थे।

1933 में उन्हें यह स्पष्ट हो गया था कि साम्यवादी विचारधारा के लोगों के लिए जर्मनी में रहना मुश्किल था। 28 फरवरी 1933 को वे जर्मनी से डेनमार्क आए। बाकी जर्मन बुद्धिजीवियों की तरह वे भी यूरोप के विभिन्न शहरों में भटकते रहे। जर्मनी में उनकी किताबें जलाई गई और उनसे जर्मनी की नागरिकता छीन ली गई। पूर्व सोवियत संघ की यात्रा के बाद वे अमेरिका चले गए।

1937 और 1941 के बीच उन्होंने अपने सबसे उल्लेखनीय और परिपक्व नाटक लिखे। 'द लाइफ ऑफ गैलिलियो' (1938), 'मदर करेज एंड हर चिल्ड्रन' (1939), 'द गुड विमेन ऑफ सेजुआं' (1940), 'मिस्टर पुतीला और उसके सेवक माती' (1941)। इन सब नाटकों में चरित्र जहां जबरदस्त शक्तिशाली थे , वहीं अंतर्विरोध भी लिए हुए हैं। ये चरित्र सामाजिक और ऐतिहासिक संदर्भों में उलझे हुए जटिल परिस्थितियों में पड़ते हैं और दर्शक से वैज्ञानिक

सामाजिक निरीक्षण की मांग करते हैं। परम्परागत नैतिकता पर प्रश्नचिन्ह लगाते हैं।

अमेरिका में हॉलीवुड में भी उन्होंने कुछ काम करने की कोशिश की, मगर खास सफलता नहीं मिली। ब्रेख्त के अनुसार अमेरिका में उनका बेहतरीन नाटक 'द काकेशियन चाक सर्किल' (1944)' था। 30 अक्तूबर 1947 को ब्रेख्त को अमरीका विरोधी गतिविधियों की जांच के लिए गठित मैकार्थी कमेटी के समक्ष हाजिर होना पड़ा। इस अनुभव के बाद ब्रेख्त यूरोप के लिए निकल पड़े। यूरोप में सबसे पहले वे स्विटजरलैंड गए। उन्होंने आस्ट्रिया की नागरिकता के लिए प्रार्थना पत्र दिया। फिर वे पूर्वी बर्लिन चले गए। 1950 में उनकी आस्ट्रीयाई नागरिकता स्वीकृत हो गई। उन्होंने 1948 में नाटक में अपने विचारों को सुनियोजित रूप 'अ शोर्ट आरगॉन्म फॉर थियेटर' में दिया। ब्रेख्त की सबसे बड़ी उपलब्धि 'बर्लिनर एन्सेम्बल' की स्थापना थी। यहीं पर लगातार नाटक और नाटक मंचन को लेकर प्रयोग किए।

1955 में ब्रेख्त को लेनिन शांति पुरस्कार से सम्मानित किया गया। 14 अगस्त 1956 को दिल का दौरा पड़ने से ब्रेख्त का देहांत हो गया।

नाटक के लिए ब्रेख्त ने एक मार्क्सवादी सौंदर्यशास्त्र विकसित करने की कोशिश की जो अरस्तू के सौंदर्यशास्त्र और यथार्थवादी साहित्य को चुनौती देता है।

यथार्थवादी थियेटर का लेखन व मंचन इस बात की कोशिश करते हैं कि दर्शक को ये लगे कि वह नाटक नहीं, बल्कि घटनाओं को सीधा देख रहा है। जैसे किसी ने कमरे की दीवार चुपके से सरका दी हो या हमारी आंख उस कमरे के किवाड़ के किसी छेद पर हो। हर संभव कोशिश की जाती है कि दर्शक यह भूल जाए कि वह नाटक देख रहा है। वह अपने-आपको नाटक के किरदारों में खो दे और उन्हीं के साथ बह निकले। वह उन्हीं के नजरिए से देखे, उन्हीं की तरह महसूस करे। इस तरह के थियेटर की जादुई दुनिया दर्शक को एक सम्मोहन में बांध लेती है, जिसका परिणाम होता है मंच के किरदारों के साथ संवेदना।

ब्रेख्त का मानना है कि ऐसे में दर्शक की आलोचनात्मक और विश्लेषण की क्षमता सुन्न हो जाती है। अगर नाटक ने राजनैतिक और सामाजिक भूमिका निभानी है तो ब्रेख्त ये मानते हैं कि दर्शक की यह क्षमताएं जागृत रहनी चाहिएं ताकि वह घटनाओं का, चरित्रों का सामाजिक-आर्थिक विश्लेषण कर सके।

इसके साथ-साथ ब्रेख्त के थियेटर समाज को न सिर्फ समझने का, बल्कि बदलने का भी प्रयास करता है। यह तभी संभव है। जब यह माना जाए कि यह सब बदला जा सकता है, परन्तु यथार्थवादी साहित्य वास्तविकता को निर्धारित और अपरिहार्य दिखाता है, क्योंकि इन नाटकों में वास्तविकता तर्क की रेखाओं पर खुलती चलती है।

ब्रेख्त के हिसाब से ऐसे थियेटर की आवश्यकता है जो सिर्फ वास्तविकता का बखान न करे, बल्कि विश्लेषण करे, उसे एक ऐसी समस्या की तरह दर्शकों के सामने रखे, जो सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था और सरंचनाओं का परिणाम है और बदली जा सकती है। ब्रेख्त के अनुसार यह केवल 'एपिक थियेटर' या 'द्वंद्ववादी थियेटर' में ही संभव है।

ब्रेख्त ने नाटक लेखन और मंचन में महत्वपूर्ण परिवर्तन लाने का प्रयास किया। मंचन के स्तर पर दर्शक को ये भूलने नहीं दिया जाए कि वो थियेटर में है और नाटक देख रहा है। मंच पर लगी लाइट्स साफ दिखाई देती, छुपाई नहीं जाती थी। सीन के बीच बदलाव के लिए परदा नहीं गिराया जाता था। इसके अलावा मंच की पृष्ठभूमि में नाटक के दौरान आंकड़ों, नक्शों, कार्टून, फिल्म, तस्वीरों, टाइटल आदि का प्रयोग किया।

ब्रेख्त ने नाटक के कथानक में नैरेटिव का तत्व जोड़ा। अभी तक नाटक का अर्थ था, सिर्फ दिखाना, जबकि कहानी या नावल बताया या सुनाया जाता। मगर ब्रेख्त ने नाटक के नाटकीय सम्मोहन को भंग करने के लिए सूत्रधार, कोरस, गीत, संगीत आदि का प्रयोग किया। ब्रेख्त पूर्व के रंगमंच की परम्पराओं से

ब्रेख्त की कविताएं

युद्ध जो आ रहा है

युद्ध जो आ रहा है
पहला युद्ध नहीं है
इससे पहले भी युद्ध हुए थे।
पिछला युद्ध जब खत्म हुआ
तब कुछ विजेता बने और कुछ विजित
विजितों के बीच आम आदमी भूखों मरा
विजेताओं के बीच भी मरा वह भूखा ही

(1936-38)

नेता जब शांति की बात करते हैं

नेता जब शांति की बात करते हैं
आम आदमी जानता है
कि युद्ध सन्निकट है
नेता जब युद्ध को कोसते हैं
मोर्चे पर जाने का आदेश
हो चुका होता है।

(1936-38)

हालीवुड

रोजाना रोटी कमाने की खातिर
मैं बाजार जाता हूं, जहां झूठ खरीदे जाते हैं
उम्मीद के साथ
मैं विक्रेताओं के बीच अपनी जगह बना लेता हूं।

(1941-47)

एक चीनी शेर की नक्काशी को देखकर

तुम्हारे पंजे देखकर
डरते हैं बुरे आदमी
तुम्हारा सौष्ठव देखकर
खुश होते हैं अच्छे आदमी
यही मैं चाहूंगा सुनना
अपनी कविता के बारे में।

(1941-47)

भी काफी प्रभावित हुए। ब्रेख्त के नाटक के कथानक की सिलाई साफ नजर आती, जैसे अलग-अलग प्रकरण को एक साथ गांठ लगा के बांध दिया हो। ब्रेख्त ने नाटक से सस्पेंस का तत्व भी खत्म करने की कोशिश की। उसका लक्ष्य था कि दर्शक का ध्यान अंत पर नहीं, बल्कि चल रही प्रक्रिया पर रहे। इसके लिए नाटकों में सीन से पहले ही उस सीन का सारांश लिख दिया या बता दिया जाता। सीन का अंत जानने के बाद दर्शक का ध्यान इस बात पर जाता है कि आखिर घटनाओं को वहां तक पहुंचने में क्या-क्या तत्व शामिल थे। इसके अलावा ब्रेख्त ने मोन्टाज और कोलाज की तकनीक का भी इस्तेमाल किया।

ब्रेख्त ने अभिनय के क्षेत्र में नए-नए प्रयोग किए। उन्होंने अभिनेता-अभिनेत्री को अपने-आप को चरित्र से एक दूरी बनाए रखने को कहा। वह किसी चरित्र को जिएं नहीं, बल्कि उसको बताएं। इस तरह के अभिनय के लिए भी ब्रेख्त ने कई तरह की तकनीकों का इस्तेमाल किया, जैसे महिला का चरित्र पुरुष और पुरुष का चरित्र महिला द्वारा करके देखना।

ब्रेख्त के थियेटर का प्रमुख उद्देश्य था। अलगाव या दूरी पैदा करना। ब्रेख्त के अनुसार हम सब अपने आसपास की रोजाना की वास्तविकता के इतने आदी हो जाते हैं कि हम उसे देखकर भी नहीं देखते। वह चाहते थे कि इस वास्तविकता को नया रंग देकर हमारा ध्यान उसकी तरफ आकर्षित किया जाए, ताकि दर्शक उसको ध्यान से देखें, समझें और फिर उसे बदलने का प्रयास करें।

ब्रेख्त के थियेटर की परिकल्पना धीरे-धीरे 'एपिक थियेटर' से 'द्वंद्वात्मक थियेटर' की तरफ जा रही थी। वे ऐसा थियेटर विकसित करना चाहते थे, जिसमें व्यक्ति, परिवार और समाज के द्वंद्व और विडम्बनाओं को सब अंतर्विरोधों के साथ प्रस्तुत किया जा सके। वह चाहते थे कि दर्शकों में यह थियेटर 'जटिल दृष्टिकोण' जागृत करे। ब्रेख्त के थियेटर की अवधारणा और विचारों का बीसवीं सदी के नाटक लेखन पर बहुत प्रभाव पड़ा। ब्रेख्त ने नाटक, थियेटर और साहित्य को देखते और समझने का एक नजरिया दिया।

महाशय 'क' जब किसी व्यक्ति को प्यार करते

महाशय 'क' से जब पूछा गया, 'जब आप किसी आदमी को प्यार करते हैं, तब क्या करते हैं?

महाशय 'क' ने जवाब दिया : 'मैं उस आदमी का एक खाका बनाता हूं और फिर इस फिक्र में रहता हूं कि वह हू-ब-हू उसी के जैसा बने।'

'कौन? वह खाका?'

'नहीं', महाशय 'क' ने जवाब दिया : 'वह आदमी '

ब्रेख्त की परम्परागत नाटक का अवलोकन एवं उस पर उनकी टिप्पणीयां आज भी प्रासंगिक हैं। मास-मीडिया, राजनैतिक प्रचार एवं बाजार का सम्मोहन आज हम सब पर हावी है। हमारी विवेचनात्मक और मौलिक सोच की क्षमताएं सुला दी गई हैं। ऐसे में ब्रेख्त द्वारा सुझाए तरीके, तकनीकें उनके दिए गए A-effect और जटिल दृष्टिकोण हमारे लिए इस सम्मोहन को तोड़ने में कारगर साबित हो सकते हैं। जो हमें सामान्य, परिचित, जाहिर, निर्विवाद, सादी सी वास्तविकता लग रही है। इसके पीछे आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक धागों का क्या उलझा हुआ ताना-बाना है, वो समझने की कोशिश करें।

ब्रेख्त की कविताएं देखने में बिल्कुल सादा, न्यूनतम, अनलंकृत शैली और भाषा में बात करती हैं। उनकी कविताओं में लोक गीतों की सादगी व मिट्टी की गंध है। वहीं आम व्यक्ति की भाषा वाली बाधा पर तीक्ष्ण प्रहार करने की क्षमता है। उनकी कविताएं, व्यंजनाओं, प्रतीकों में नहीं उलझती। वे जैसे सीधी बात कर रही हैं, मगर बात हमें अंदर तक भेद देती है। उनके नाटकों में भी बहुत सारे गीत आते हैं, जो लोक गीतों जैसे ही लगते हैं। उनकी बहुत सी अभिव्यक्तियां, मुहावरों जैसी लगती हैं। आम भाषा में विडम्बनाओं को अभिव्यक्त करने की कमाल की क्षमता ब्रेख्त में थी।

ब्रेख्त एक नाटककार, कवि, चिंतकों के तौर पर आज भी न सिर्फ साहित्य जगत के लिए, बल्कि बौद्धिक जगत के लिए सार्थक एवं प्रासंगिक है।

सम्पर्क : 97284-99600

ब्रेख्त की कविताएं

ऊपर बैठने वालों का कहना है

ऊपर बैठने वालों का कहना है :
यह महानता का रास्ता है
जो नीचे धंसे हैं, उनका कहना है
यह रास्ता कब्र का है।

(1936-38)

जो बोलते हो उसे सुनो जी

अध्यापक, अक्सर मत कहो कि तुम सही हो
छात्रों को उसे महसूस कर लेने दो खुद-ब-खुद
सच को थोपो मत :
यह ठीक नहीं है सच के हक में
बोलते हो जो उसे सुनो भी।।

नया जमाना

अचानक नहीं शुरू होता है नया जमाना।
मेरे दादा पहले ही एक नये जमाने में रह रहे थे
मेरा पोता शायद पुराने जमाने में ही रह रहा होगा।
नया गोश्त पुराने कांटों से ही खाया जाता रहा है
वे नहीं थीं कारें पहली
न टैंक
न हमारी छतों के ऊपर उड़ते हवाई जहाज
न ही बमवर्षक
नए ट्रांसमीटरों के जरिए चली आई पुरानी बेवकूफियां
बुद्धिमानी चली आई मुंह जुबानी।

(1941-47)

कामयाबी

महाशय 'क' ने रास्ते से गुजरती हुई एक अभिनेत्री को देखकर कहा-'काफी खूबसूरत है यह।' उनके साथी ने कहा-'इसे हाल ही में कामयाबी मिली है, क्योंकि वह खूबसूरत है।' 'क' महाशय खीझे और बोले-'वह खूबसूरत है, क्योंकि उसे कामयाबी हासिल हो चुकी है।'

काशी का जुलहा

ब्राह्मण को तुकारने वाला वह काशी का
जुलहा जो अपने घर नित्य सूत तनता था
लोगों की नंगई ढांकता था। आशी का
उन्मूलन करता था जिसका विष बनता था
जाति वर्ण अहंकार। कब्रें खनता था
मुल्लों मौलवियों की झूठी शान के लिए
रूढ़ि और भेड़ियाधसान को वह हनता था
शब्द बाण से। जीता था बस ज्ञान के लिए
गिरे हुओं को खड़ा कर मान के लिए
राम नाम का सुआ शून्य के महल में रहा
पंथ पंथ को देखा सम्यक् ध्यान के लिए
गुरु की महिमा गाई, वचन विचार कर कहा।
साई की दी चादर ज्यों की त्यों धर दीनी
इड़ा पिंगला सुखमन के तारों की बीनी।

त्रिलोचन

सांचि कहौं तो मारन धावै

डा. सुभाष चंद्र

कबीर दास मध्यकालीन भारत के प्रसिद्ध संत हैं, जिन्होंने अपनी रचनाओं में हिन्दू-मुस्लिम एकता का प्रयास किया तथा ब्राह्मणवादी धार्मिक आडम्बरों की आलोचना की। इनकी प्रसिद्ध रचनाएं 'बीजक' में संकलित 'साखी', 'सबद', और 'रमैनी' हैं।

कबीरदास के जन्म के बारे में समाज में कई तरह की बातें प्रचलित हैं। माना जाता है कि कबीरदास एक विधवा ब्राह्मणी के घर पैदा हुए, जिसने लोकलाज के डर से उसे तालाब के किनारे छोड़ दिया वहां से नीरू और नीमा नामक जुलाहा दम्पति ने उसका पालन-पोषण किया। इस लोक प्रचलित मान्यता से लगता है कि कबीर का जीवन सांस्कृतिक एकता का महत्त्वपूर्ण पड़ाव है। इसके अनुसार उनका जन्म एक ब्राह्मणी के यहां हुआ और उनका लालन पालन मुसलमान परिवार में हुआ, इस तरह कबीर दोनों की परम्पराएं लिए हुए थे।

कबीर की कविता और उनका जीवन साम्प्रदायिक सद्भाव की मिसाल है। कबीर अपने विचारों में क्रांतिकारी रहे, उन्होंने अपना यह स्वभाव मरते समय भी नहीं छोड़ा।कबीर दास का अपना कहना है कि वे बनारस में पैदा हुए और मगहर में उनकी मृत्यु हुई।

''सकल जन्म शिवपुरी गंवाया,
मरती बेर मगहर उठ धाया।''

इसमें महत्त्व की बात यह है जिस तरह कबीरदास मनुष्यों के बीच कोई भेद स्वीकार नहीं करते थे उसी प्रकार वे शहरों और जगहों की ऊंच नीच को भी स्वीकार नहीं करते थे। हिन्दुओं में मान्यता है कि बनारस में मरने वाले को मुक्ति मिलती है और मगहर में मरने वाले को फिर से गधे का जन्म मिलता है। इस अंधविश्वास को तोड़ने के लिए ही कबीर ने बनारस शहर छोड़ दिया और हेय समझे जाने वाले शहर मगहर में आकर बस गए।

क्या काशी क्या ऊसर मगहर,
राम हृदय बस मोरा।
जो काशी तन तजै कबीरा,
रामै कौन निहोरा।।

अर्थात काशी हो या उजाड़ मगहर, मेरे लिए दोनों बराबर हैं, क्योंकि मेरे हृदय में राम बसे हुए हैं। अगर कबीर की आत्मा काशी में तन को तजकर मुक्ति प्राप्त कर ले तो इसमें राम का कौन सा अहसान है? इसलिए कबीर जो जन्म भर काशी में रहे और बादशाहों की व पण्डों व मुल्लाओं की संकीर्णता और नफरत काशी से बाहर नहीं निकाल सकी मरने से पहले अपनी इच्छा से मगहर वासी हो गए।

कबीर की मृत्यु के बारे में जो किंवदन्ती है, वह कबीर के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि है। कहा जाता है कि कबीर की मृत्यु पर हिन्दुओं और मुसलमानों में विवाद हो गया। हिन्दू कहते थे कि उनके शरीर को जलायेंगे तो मुसलमान कहते थे कि उनको दफनाया जाएगा। कहा जाता है कि इस का निबटारा इस तरह हुआ कि कबीर का शरीर फूलों के ढेर में बदल गया जिसे हिन्दू और मुसलमान दोनों ने बराबर बराबर बांट लिया। इस तरह दोनों के रिवाज भी पूरे हो गए ओर उनका झगड़ा भी मिट गया और मरने के बाद भी कबीर ने हिन्दू-मुस्लिम एकता की परम्परा बनाई। अब मगहर में इमली के पेड़ के नीचे कबीर की समाधि है, बनारस में मठ है जो कबीर चौरा के नाम से मशहूर है।

कबीर समाज के निम्न वर्ग से ताल्लुक रखते थे, उनकी कविता का न सिर्फ कथ्य निम्न वर्ग के पक्ष में था, बल्कि उसका रूप भी नवीन था। परम्परागत तौर पर मान्य काव्यशास्त्र के सिद्धांतों को उनकी कविता चुनौती देती थी, इसलिए उनकी कविता के कवित्व का अध्ययन नहीं हुआ और उनकी कविता को 'भक्ति साधना' का 'बाई प्रोडक्ट' मान लिया गया।

कबीर ने हिन्दू-मुस्लिम दोनों धर्मों को मिलाने के लिए प्रयास किए। दोनों के भेद मिटाने के लिए उन्होंने दोनों धर्मों की बुराइयों को दूर करने की कोशिश की। दोनों धर्मों के पाखण्डों का विरोध किया ओर दोनों धर्मों में व्याप्त आन्तरिक एकता को सामने रखा। कबीर के इस प्रयास के मध्यकालीन भारतीय समाज पर गहरे असर पड़े। उन्होंने अपने को किसी धर्म में बांधने से इन्कार कर दिया। अपनी पहचान धर्म के आधार पर नहीं बल्कि विशुद्ध मानवीय बनाई।

हिन्दू कहो तो मैं नहीं,
मुसलमान भी नाही।
पांच तत्व का पूतला,
गैबी खेले माहीं।।

कबीरदास धर्म के बाहरी आडम्बरों और दिखावों से दूर हटकर धर्म के मर्म को पहचानते थे। वे बाहरी कर्मकाण्डों को छोड़कर धर्म की शिक्षाओं के पालन करने पर अधिक जोर देते थे। उनका कहना था कि सारी दुनिया पागल हो गई है। यदि सच्ची बात कहो तो मारने को दौड़ते हैं लेकिन झूठ पर सबका विश्वास है। हिन्दू राम का नाम लेता है और

मुसलमान रहमान का और दोनों आपस में इस बात पर लड़ते मरते हैं, लेकिन सच्चाई से कोई भी परिचित नहीं है।

साधो, देखो जग बौराना।
सांची कहौ तो मारन धावै झूठे जग पतियाना ।
हिन्दू कहै मोही राम पिआरा तुरक कहैं रहमाना ।
आपस में दोऊ लड़ि लड़ि मूये, मरम न कोऊ जाना।

कबीर का मानना है कि परमात्मा एक है, वह कण कण में व्याप्त है। सभी उसी ईश्वर के अंश हैं। जो इनमें भेद करते हैं वे झूठे हैं, वे सच्चाई को नहीं जानते। ईश्वर को दो मानना लोगों में भ्रम को फैलाना है। ईश्वर, अल्लाह एक हैं। हिन्दू और मुसलमान के ईश्वर एक ही है। एक ही ईश्वर के अनेक नाम हैं। उसी को अल्लाह कहा जाता है, उसी को राम, वही केशव है वही करीम, वही हजरत है और वही हरि है। वह एक ही तत्व है,जिसके अलग अलग नाम रख लिए हैं और भ्रम पैदा कर दिया है। एक सोने से सब जेवर बनाए गए हैं, उनमें दो भाव कैसे हो सकते हैं। पूजा नमाज सब कहने सुनने की बातें हैं। वही महादेव हैं और वही मुहम्मद हैं। जो ब्रह्म है उसी को आदम कहना चाहिए। कोई हिन्दू कहलाता है कोई मुसलमान, लेकिन सब एक जमीन पर रहते हैं। एक वेद पढ़ता है और दूसरा खुतबा। एक मौलाना कहलाता है और दूसरा पण्डित। सब एक मिट्टी के बर्तन हैं, सिर्फ नाम अलग अलग हैं।

भाई रे दुई जगदीश कहॉ ते आया, कहु कौने भरमाया।
अल्लाह, राम, करीम, केशव, हरि हजरत नाम धराया।
गहना एक कनक तें गढना, इनि मंह भाव न दूजा।
कहत सुनत को दुइं करि थापै, इक निमाज इक पूजा।।
वही महादेव वही महंमद, ब्रह्मा-आदम कहिये।
को हिन्दु को तुरुक कहावै, एक जिमी पर रहिये।।
बेद कितेब पढे वे कुतुबा, वे मौलाना वे पांडे।
बेगरि बेगरि नाम धराये, एक मटिया के भांडे।।

कबीर दास का मानना था कि परमात्मा को किसी मंदिर, मस्जिद में या किसी स्थान विशेष तक सीमित नहीं किया जा सकता। उसको प्राप्त करने के लिए किसी प्रकार के आडम्बर की जरूरत नहीं है। यदि कोई उसे प्राप्त करने का इच्छुक है तो वह जल्दी ही मिल जाता है। वह किसी कर्मकाण्ड से नहीं मिलता। वह सच्चे मन और शुद्ध आचरण से मिलता है।

मोकों कहां ढूढे बन्दे, मैं तो तेरे पास में।
ना मैं देवल ना मैं मस्जिद, ना काबे कैलास में।
ना तो कौन क्रिया-कर्म में, नहीं योग बैराग में।
खोजी होय तो तुरतै मिलिहौं, पल भर की तालास में।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, सब स्वांसों की स्वांस में।।

कबीर दास ने लोगों को बांटने वाले रिवाजों पर तीखे कटाक्ष किए हैं। भारतीय समाज में जाति-प्रथा ऐसी सामाजिक बुराई है जिसके कारण समाज में ऊंच नीच का भेदभाव है। कबीर सामाजिक श्रेष्ठता को नहीं मानते थे। उनका मानना था कि सभी मनुष्य बराबर हैं।

जे तू बामन बामनी जाया,
तो आन बाट काहे न आया।
ते तू तुरक तुरकनी जाया,
तो भीतिरि खतना क्यूं न कराया।

•

जात न पूछो साधु की, पूछ लीजिए ज्ञान।

•

जात-पात पूछे नाहि कोई,
हरि का भजे सो हरि का होई

•

एक बूंद एकै मल मूत्र,
एक चाम एक गूदा।
एक जोति थै सब उतपना,
कौन बाम्हन कौन सूदा।।

•

काहे को कीजै पांडे छोड़त विचारा।
छोतहि ते उपजा संसारा।।
हम कत लोहू तुम कत दूध।
तुम कत बामन हम कत सूद।।
छोति-छोति करत तुमहि जाए
तो गरभ वास काहे को आए।।

कबीर ने जाति-पांत, बाहरी आडम्बरों का विरोध किया और आन्तरिक शुद्धता व आचरण की पवित्रता को महत्त्व दिया। उन्होंने कहा कि हिन्दू व मुसलमान की पहचान किसी कर्मकाण्ड में नहीं है, जिसका ईमान दुरुस्त है वही सच्चा हिन्दू और मुसलमान है।

सो हिन्दू सो मुसलमान,
जिसका दुरस रहे ईमान।

कबीर दास ने सामाजिक भेदभाव और साम्प्रदायिक एकता को बनाने के लिए प्रयास किए। वे हिन्दू और मुसलमान दोनों में लोकप्रिय थे। हिन्दू पण्डे और मुस्लिम कठमुल्लाओं के कर्मकाण्डी धर्म की उन्होंने आलोचना की। हिन्दू और मुस्लिम दोनों में उनके शिष्य बने, कबीर के विचारों में दोनों धर्मों के तत्वों का मिश्रण है। वे साम्प्रदायिक सद्भाव की अनुपम कड़ी हैं।

माला फेरत जुग गया, गया न मन का फेर।
कर का मनका डारि के, मन का मनका फेर।।

दुविधा जाके मन बसे, दयावन्त जीव नाही।
कबीर त्यागो ताहि को, भूलि देखो जिन्ह नाहीं।।

आलेख

मैं कासी का जुलहा बूझहु मोर गिआना

डा.सेवा सिंह

ब्राह्मणवाद की विचारधारा ने श्रम-जन्य कर्मों का तिरस्कार करते हुए वर्णधर्मी व्यवस्था के अंतर्गत उत्पादनशील श्रेणियों का शोषण बनाए रखा है। कबीर की वाणियों में इस ब्राह्मणिक विचारधारा का निषेध किया गया है। दूसरे, कबीर ने वर्णधर्मी व्यवस्था के अंधविश्वास पूर्ण सिद्धांतों की तर्कहीनता को अनावृत किया है। तीसरे, उन्होंने श्रम की ब्राह्मणिक अवमानना के विपरीत श्रम-जन्य कर्मों को सत्याचरण की कसौटी मानते हुए श्रम के गौरव को पुनर्स्थापित किया है।

संत कबीर जिस जुलाहा जाति में पालित हुए थे, वह एकाध पुश्त पहले की योगी जैसी किसी आश्रम भ्रष्ट जाति से मुसलमान हुई थी या अभी होने की राह में थी।[1]

ये अपने को न हिन्दू मानते थे, न मुसलमान, वेदों के प्रति अनास्थाशील थे, ब्राह्मण को महत्व नहीं देते थे, ब्राह्माणिक कर्मकाण्डों का निषेध करते थे, वर्ण व्यवस्था के कट्टर विरोधी थे, ब्राह्माणिक देवी देवताओं को पूज्य नहीं मानते थे।

कबीर ने दमन के खिलाफ, दीर्घकालीन प्रतिरोधकमूलक विचारों को, नए सिरे से गठित करते हुए, अपनी सम्प्रेषणीय प्रतिभा के सामर्थ्य पर एक आंदोलन के रूप में श्रमिकों, किसानों, सेवा कर्मियों, अस्पृश्यों को एकजुट होने का सैद्धांतिक आधार प्रदान किया है।

कबीर वेद के मार्ग के विपरीत खड़े हैं। वे सीधे-सीधे कहना चाहते हैं कि वेदों को छोड़ दो-'तजिबा वेदा' क्योंकि वेद पुराण और स्मृति ग्रंथों ने कभी किसी का उद्धार नहीं किया। कबीर कहते हैं, वेद, पुराण के श्रवण से क्या होता है - किआ बेद पुराना सुनीअै। कबीर का मानना है कि चार वेद, स्मृति ग्रंथ, पुराण ये सब परमात्मा के विषय में कुछ जानते नहीं। यहां तक कि उन्होंने वेद को और मुसलमानों के धार्मिक ग्रंथ कतेब को भी व्यर्थ माना है, क्योंकि इनसे चिंताओं को मिटाया नहीं जा सकता :

वेद कतेब इफतरा भाई दिल का फिकरु न जाई।[2]

कबीर कहते हैं, ब्रह्मा वेदों का विचार तो करता है, पर अलख को नहीं देख पाता।[3] कबीर ने सचेत होकर यह जान लिया था कि वेद, पुराण विष के समान हैं :

जन जागे ना ऐमहि नांण, विषय से लागे वेद पुरांण।[4]
सुम्रित बेद सबै सुनैं, नहीं आवैं कृत काज।[5]

संतों का निर्गुण राम वेद के निषेध के तहत, ब्राह्माणिक ग्रंथों से न्यारा था :

लोक बेद थैं अछै नियारा, छाड़ि रह्यो सब ही संसारा
जसकर गांउ न ठांउ न खेंरा, कैसे गुन बरनूं मैं तेरा।[6]

इसलिए वे वेदों के पठन-पाठन में लीन ब्राह्मण को भटका हुआ मानते थे।

पंडित भूले पढ़ि गुन्य बेदा, आप न पांवैं नानां भेदा।[7]

पंडित वेद का व्याख्यान तो खूब करते हैं, पर अभ्यान्तरिक तत्व को नहीं जान पाते-

पढ़ि पढ़ि पंडित बेद बषाणैं, भीतरि हूती बसत न जांणैं।[8]

ब्राह्मण जगत का गुरु भले ही हो, भक्तों का गुरु नहीं है, वह तो वेदों के भ्रम में फंस कर मरा जा रहा है :

कबीर बामनु गुरु है जगत का, भगतन का गुरु नाहि।
अरझि उरझि के पचि मुआ चारउ बेदहु माहि।[9]

कबीर पंडित को चार वेदों में डूबा हुआ मानते हैं।[10]

संतों का मानना है कि लगी हुई आग में संयोग से मूर्ख शायद बच जाए, पर पंडित के बचने की कोई संभावना नहीं।[11]

कबीर का कथन है कि ब्राह्मण का वेद-पुराण पाठ गधे पर चंदन लगे होने की तरह हास्यास्पद है।[12]

कुमति के बस में वह दुर्भाग्यशाली है, वेद पाठ तो करता है, नाम जप उसके पास नहीं है, वह परिवार सहित डूब मरेगा। साफ तौर पर कबीर का नाम जप, ब्राह्माणिक वेद मार्ग से न्यारा तो था ही, उससे एकदम दूसरी दिशा में था।

कबीर ने चेताया कि तू ब्राह्मण है और मैं काशी का जुलाहा हूं, तेरी मेरी बराबरी कैसे हो सकती है? मुझे राम नाम का भरोसा है और तू तो वेदों के भरोसे डूब मरेगा :

तू ब्रह्मनु मैं कासी का जुलहा मोहि तोहि बराबरी कैसे कै बनहि।
हमरे राम नाम कहि उबरे बेद भरोसे पांडे डूबि मरहि।।[13]

एक अन्य स्थल पर कबीर ने ताल ठोंक कर ब्राह्मण के ज्ञान को ललकारते हुए कहा था, ब्राह्मण! तू तो भूपतियों का याचक है, उनसे दान जुटाया करता है, मैं केवल हरि पर भरोसा किए हूं। तुझे जनेऊ का अभिमान भले ही हो, तू मेरी बराबरी क्या करेगा, मेरे घर तो नित्यप्रति

सूत का ताना तना रहता है।[14]

शुद्रों के विरुद्ध अनेक प्रकार के आरोपित अभिशापों के लिए ब्राह्मणवाद के पास कोई तक नहीं था। इसलिए वर्णधर्मी दमनमूलक व्यवस्था के सुचारू कार्यान्वयन के लिए दैवी मान्यता प्राप्त ब्राह्मणिक ग्रंथों के माध्यम से अंधविश्वासों और मिथकों का एक भरा पूरा तंत्र प्रचारित-प्रसारित किया जाने लगा था। देखने की बात है कि शोषणपरक सत्ताओं को सदैव अंधविश्वासों की जरूरत रही है।

वेदादि ग्रंथों के श्रवण और सामान्य रूप में शिक्षित होने के अधिकार से वंचित कर दिए गए दलित वर्गों के कबीरादि संतों की वाणियों में जिस विवेकशील और तर्कसंगत तरीके से ब्राह्मणिक अंधविश्वासों का पर्दाफाश किया गया है, वह देखने की बात है।

संत समझा पा रहे थे कि व्रतों का विधान केवल स्त्रियों के रतिभाव को नियंत्रण में लेते हुए स्त्रियों की मनोचेतना को कुंठित बनाए रखने की एक युक्ति मात्र थी। स्त्रियों के निमित्त पुराणों में व्रतों की लंबी सूचियां दी गई हैं। व्रतों के पुण्यों, प्रलोभनों और प्रायश्चितों के वर्णनों की कोई सीमा नहीं है। इस बात का अनुमान आज सबसे अधिक प्रचलित 'करवा चौथ' के व्रत और इस व्रत की कथा से लगाया जा सकता है। करवा चौथ के व्रत का प्रावधान पति की दीर्घायु के लिए है। जाहिर है कि इस व्रत द्वारा स्त्री के समर्पण, बेबसी, वैधव्य के आसन्न भय को पुन:पुन: दृढ़ किए रखने का सिलसिला हर वर्ष अनिवार्य रूप से दोहराया जाता है।

कबीर ने बड़े कठोर शब्दों में बताया था कि जो स्त्री अन्न का त्याग करती है, वह न तो सोहागन है और न ही एक सामान्य स्त्री :

छोडहि अंनु करहि पाखंड न सोहागन न ओहि रंड।[15]

अन्नादि पदार्थों को संतों ने धन्य माना है। कबीर के लिए अन्न और नाम का जप एक जैसी बात है :

जपीअै नामु जपीअै अंनु
अंनै बिना न होई सुकालु
तजिअै अंन न मिले गुपालु।।
धनु अनादि ठाकुर मनु मानिआ।।[16]

कबीर ने एक स्थल पर अपने ईश्वर से शिकायत की है कि भूखे, भक्ति नहीं की जा सकती है। वे सहज भाव से दो सेर आटा मांगते हैं। एक पाव घी और साथ में नमक :

दुइ सेर मांगउ चूना। पाउ घीउ संगि लूना।।[17]

एक श्रमिक की सबसे बड़ी चाह यही होती है कि उसे पेट भर भोजन मिल सके। जिसे क्षुधा का अहसास हो, उसे ही अन्न का महत्व मालूम होता है। संतों के लिए श्रम ही सबसे महत्वपूर्ण रहा है। परजीविता उनके लिए हराम है। संत उन्हें धन्य मानते हैं, जिन्हें अन्न के महत्व का अहसास है।

संत कहते हैं, जो अन्न के महत्व को नहीं समझते, वे तीन लोक में अपना सम्मान ही खो बैठते हैं :

अंनै बाहरि जो नर होवहि।।
तीनि भवन महि अपनी पति खोवहि।।[18]

संतों के यहां अन्न का महत्व हमें भारत का आद्यभौतिकवादी परम्परा की याद दिलाता है। उपनिषदों में पूर्व वर्गीय आद्यभौतिकवादी समाज के अवशेष खोजे जा सकते हैं। यास्क ने हमें संकेत दिया है कि ब्रह्म का एक अर्थ अन्न भी था। इसके लिए उन्होंने तैत्तिरीय उपनिषद् का उदाहरण दिया है [19]:

'इस पृथ्वी के जितने भी प्राणी हैं, वे वस्तुत: अन्न से उपजे हैं। अन्न पर ही वे निर्भर हैं और अंत में अन्न में ही विलीन हो जाते हैं। वस्तुत: सभी प्राणियों में प्रथम उत्पन्न अन्न है। इसलिए इसे सर्वनिदान औषधि कहा जाता है। वस्तुत: जो ब्रह्म की अन्न के रूप में उपासना करते हैं, उन्हें सभी प्रकार का अन्न प्राप्त होता है।'

कबीर ने श्राद्ध कर्मकांड की धूर्त्तता के बारे में बताया, जीवित मां बाप का तो सम्मान किया नहीं जाता, मरने के बाद यह कैसा पाखंड है। पितरों को भी क्या मिलता है। कौवों, कुत्तों को भोजन परोसा जाता है, वे ही इसे खाते हैं, अंधविश्वास है कि जैसे तर्पण के रूप में अर्पित यह खाद्य पदार्थ मृतक पूर्वजों को प्राप्त हो जाता हो:

जीवित पितर न मानै कोऊ मूए सिराध कराही।
पितर भी बपुरे कहु किउ पावहि कऊआ कूकर खाही।।[20]

जीवितों को प्रताड़ित करते हुए मृतकों की पूजा का यह आडंबर, भारत की ब्राह्मणिक विचारधारा का ऐसा विरोधाभास है, जिसे जनसामान्य की मनोचेतना में आत्मसात कर दिया गया है। शताब्दियों से इसमें जकड़े हुए लोग इसका पालन करते आ रहे हैं।

शौच-अशौच, मूर्ति पूजा, श्राद्ध, व्रत, सूतक, उपनयन आदि अनेक ब्राह्मणिक कर्मकाण्डों का न तो किसी प्रकार की आध्यामिकता से सम्बन्ध है, न ही ये आद्य कर्मकाण्डीय चर्चाओं के रूप में प्रकृति को तुष्ट करने के जनजातिय समूहगत अनुकरणमूलक टोने-टोटके आदि के अवशेष हैं, बल्कि साफ तौर पर ये पितृसत्ता, वर्णव्यवस्था, कर्मवाद आदि वर्गीय शोषण के तहत आरोपित किए गए ब्राह्मणवाद के विचारधारक उपस्कर हैं।

सूतक भी एक ऐसा ही आरोपण है जो स्त्रियों को एक खास अवधि के लिए अस्पृश्य बना देता है। इसके अनुसार मासिक स्राव और प्रसूति के दौरान स्त्री का स्पर्श निषिद्ध किया गया है।

स्त्रियों के रजोधर्म के सहज ही अशुद्ध होने की कल्पना पितृसत्तात्मक दृष्टिकोण की उपज है। सूतक का संबंध इस बात से भी है कि जाति प्रथा में स्त्रियों का दमन और शोषण निहित रहता है। एक तरह से स्त्रियों और सामाजिक समूहों पर अशुद्धता का आरोपण वर्ग-शोषण का चरम रूप है। शौच-अशौच की विचारधारा आबादी के एक बहुत बड़े हिस्से की निम्न स्थिति और शोषण को वैधता प्रदान करती रही है।

कबीर ने अस्पृश्यता की लज्जाजनक सैद्धांतिकी के छद्मजाल को संतों ने अपने सहज और स्वाभाविक तर्कों द्वारा उड़ा दिया था। कबीर का कहना था कि यदि सूतक रूपी ब्राह्मणिक अशौचता को मानें

तो फिर पिता भी जूठा सिद्ध हो जाएगा। माता भी और उसकी संतान भी सूतकमयी अशौच से ग्रस्त हो जाएगी। कबीर ने कहा कि इससे तो कहीं कोई शौच नहीं। ब्राह्माणिक दृष्टि से जिह्वा तो जूठी होती ही है, बोलना भी जूठा है, नयन भी जूठे हैं। इंद्रियों की जूठन से छुटकारा पाया ही नहीं जा सकता। आग जूठी है, पानी जूठा है। भोजन पकाने की प्रक्रिया जूठी है। जूठे व्यक्ति ही पकाते हैं। कलछुल भी जूठी हुई और परोसने वाले भी जूठे हुए। कबीर कहते हैं, बताओ पंडित! फिर कौन पवित्र है? इस प्रकार संत विश्वास दिला रहे हैं कि सब कर्मकाण्ड मात्र जकड़बंदी हैं।[21]

जाति व्यवस्था ब्राह्माणिक समाज शास्त्र का केंद्रीय मुद्दा है। ब्राह्माणिक विचारधारा का प्रत्येक प्रयत्न जाति-व्यवस्था को बनाए रखने के लिए कटिबद्ध रहा है। आर्थिक अधिशेष के मद्देनजर श्रमिकों, उत्पादनशील श्रेणियों पर नियंत्रण बनाए रखने के उद्देश्य से आरोपित अशक्ततायें और दमन समझ में आने वाली बात है। प्राक् पूंजीवादी समाजों के सामंतीय तत्वों द्वारा इस प्रकार का चलन सर्वत्र बनाए रखा जाता है पर अमानवीय शोषण के प्रतिरोध का दमन करने के उद्देश्य से श्रमिकों को बांटे रखने में, परस्पर द्वेषमूलक सोपानक्रम का प्रावधान, भारत के ब्राह्माणिक सामंतवाद की एक ऐसी 'स्ट्रेटजी' को लक्षित करता है, जिसके उद्‌भव और विकास की गुत्थी को सुलझाने के ढेरों अध्ययन अभी भी उलझे दिखाई देते हैं। जाति व्यवस्था के निमित्त इस उलझाव का एक अधिक गंभीर पक्ष, स्त्री के प्रति ब्राह्माणिक विचारधारा द्वारा तिरस्कार का एक ऐसा दृष्टिकोण और व्यवहारिक चलन है, जिसने एक मनोविकार और मनोग्रंथि के रूप में द्विज अथवा अद्विज सभी वर्गों को जकड़ रखा है।

स्त्री और शूद्र की इस दारुण अवमानना के मद्देनजर कबीर ने बड़े जोरदार ढंग से ब्राह्मणिक ग्रंथों के अतार्किक, अस्वाभाविक और अमानवीय विचारों को एक सिरे से हास्यास्पद सिद्ध करते हुए, ब्राह्मणिक 'पापयोनि' के अभिशाप से छुटकारा दिलाकर भारतीय स्त्री और श्रमिक को मानवीय अधिकार से मंडित किया है।

कबीर के एक ही पद ने ब्राह्मणिक जाति व्यवस्था के जन्मजात दैवी सिद्धांत को ध्वस्त कर दिया है।

जाहिर है, जैसा कि कबीर ने कहा, गर्भावस्था में किसी की कोई कुल जाति नहीं होती। पैदा होते ही किसी का ब्राह्मण, क्षत्रिय, शुद्र होना, कितना हास्यास्पद और अतार्किक है।

गर्भवास महि कुलु नहीं जाती, ब्रहम बिंदु ते सभ उतपाती।
कहु रे पंडित बामन कब के होए, बामन कहि कहि जनमु मत खोए।
जौ तूं ब्राहमणु ब्रहमणी जाइया, तउ आन बाट कहे नहीं आइआ।
तुम कत ब्राहमण हम कत सूद, हम कत लोहू तुम कत दूध
कहु कबीर जो ब्रहमु बीचारै, सो ब्राहमणु कहीअतु है हमारे।।[22]

यहां सीधे-सीधे वर्णों के उद्‌भव के एक प्राचीन सूत्र का स्पष्ट निषेध है। चतुर्वर्ण की उत्पत्ति के बारे में प्राचीनतम अनुमान ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में वर्णित सृष्टि संबंधी पूरा कथा में दिया गया है

जाति प्रथा की विडम्बना यह है कि ब्राह्मणिक ग्रंथों द्वारा लोक चेतना में इस बात को पैठा दिया गया है कि जाति का निर्धारण जन्मना होता है। इसी असंगत ब्राह्मणिक अनर्गल कूटनीतिक सैद्धांतिकी को लक्ष्य करते हुए कबीर ने कहा, ब्राह्मण! तू भी स्त्री के उसी प्रजननांग से पैदा हुआ है, जिससे शुद्र और अन्य प्राणी पैदा होते हैं। फिर तू जन्मते ही विशिष्ट क्यों मान लिया जाता है? क्या गर्भवास में ही तेरी जाति तय हो जाती है? हां, यदि ऐसा हो तो जन्म से ही विशिष्ट होने के लिए अन्य सामान्य जन की अपेक्षा तेरा जन्म किसी विशिष्ट प्रक्रिया द्वारा होना चाहिए था।

कबीर कटाक्ष करते हुए कह रहे हैं तेरे जन्मते ही ब्राह्मण होने का कारण कहीं यह तो नहीं कि शायद तेरी धमनियों में पवित्र दूध बह रहा हो, जबकि हम शुद्रों की धमनियों में तो रक्त ही प्रवाहित होता है।

देखने की बात है कि कबीर के इस तिलमिला देने वाले प्रत्युत्तर से बढ़कर ब्राह्मणिक जन्मना जाति प्रथा के विरुद्ध धारदार, मार्मिक और सटीक तर्क क्या हो सकता है। इसके बाद जाति प्रथा के जन्मना छद्म के विरोध में किसी अन्य तर्क की कोई जरूरत ही नहीं रह जाती। व्यंग्य की यह तर्क-सामर्थ्य कबीर की प्रतिभा का ही कमाल है।

गौरतलब है कि इस सिलसिले में कबीर ने वर्ण व्यवस्था के विचारधारक स्रोत ब्राह्मणिक ग्रंथों और ब्राह्मणिक कर्मकाण्डों को भी एक सिरे से हास्यास्पद सिद्ध कर रहे थे। कबीर के लिए 'जनेऊ' दो तागों से अधिक कुछ नहीं था, जुलाहे के तने हुए ढेरों ताने बाने से क्या उसकी कोई बराबरी है। 'जनेऊ' के साथ जुड़े ब्राह्मणिक पाप-पुण्य, नरकों के आतंक, जन्म-जन्मांतरों के ढकोसले, जिनके बल पर ब्राह्मण का त्रासक अभिशाप शुद्रों को गुलाम बनाए था, एक झटके में उड़ते दिखाई दिए हैं।

ब्राह्मणिक ग्रंथों की मिथकीय जकड़बंदी की मार्फत सामंतीय अमानवीय शोषण का दुश्चक्र शताब्दियों से अनवरत जारी है। कबीर ने इस वैचारिक दुरभिसन्धि की सही ढंग से निशानदेही करते हुए वेदादि ग्रंथों के बारे में कहा था कि ये कागज तो एक प्रकार से पशुओं को बांधने का बाड़ा है, स्याही में लिखावट इस बाड़े के द्वार हैं। पत्थर की मूर्तियों ने दुनिया डुबो दी है, इस पर पंडित डकैत की तरह है :

कबीर कागद की ओबरी मसु के करम कपाट
पाहन बोरी पिरथमी पंडित पाड़ी बाट।[23]

कबीर पंडित के समस्त वेद-ज्ञान को उस काठ की कोठी की तरह देख रहे थे, जिसके चारों ओर आग लगी हुई है। कबीर का कहना था कि मूर्ख तो शायद बच भी जाएं, पर स्वयं पंडित कोई बचाव नहीं था :

कबीर कोठी काठ की देहदिसि लागी आगि
पंडित पंडित जल मूए मूरख उबरे भागि।[24]

कबीर ने ब्राह्मणिक प्रतिक्रियावाद को लक्षित करते हुए बड़े आक्रोश-वेदों का निषेध किया है। कबीर का मानना है कि चारों वेदों में उलझ कर पंडित स्वयं तो डूबा ही था, उसने अपने चेलों को भी बहा

दिया है :

आप डुबे चहु बेद महि चेले दीए बहाई[25]

कबीर इसे कुमति मानते हैं। पंडित को संबोधित करते हुए कबीर ने बताया, हे पांडे! तू कुमति में लीन है, राम नहीं जपता। वेद और पुराण पढ़ने का क्या लाभ? यह तो गधे पर चंदन के भार जैसा है:

पंडीया कवन कुमति तुम लागे
बूडहुगे परवार सकल सिउ राम न जपहु अभागे
बेद पुराण पढ़े का किआ गुनु खर चंदन जस भारा।[26]

कबीर ने पंडित को मन का अंधा बताया है, स्वयं कुछ जानता नहीं, दूसरों को उपदेश दे रहा है :

मन के अंधे आपि न बूझहु काहि बुझावहु भाई।[27]

कबीर के अनुसार वेदों का पढ़ना, राजा के धन संचय के समान व्यर्थ है :

दरबु संचि संचि राजे मूए गडि ले कंचन भारी
बेद पड़े पड़ि पंडित मूए रूपु देखि देखि नारी।[28]

संत स्पष्ट मानते हैं इनका पढ़ना क्या! इनका क्या मनन! क्या श्रवण! इन ग्रंथों का कोई प्रयोजन नहीं :

किआ पड़ीअै किया गुनीअै,
किया बेद पुराना सुनीअै,
पड़े सुने किया होई।[29]

कबीर वेद, वेद मार्ग और ब्राह्मण की वर्णधर्मी अहम्मन्यता को चुनौती देते हुए, दरअसल ब्राह्मणिक वर्ण व्यवस्था की बुनियादों पर प्रहार कर रहे थे। इस दृष्टि से अवतारों का खण्डन उनका सबसे बड़ा क्रांतिकारी मुद्दा था।

अवतारवाद का निषेध करते हुए संतों ने पाया कि ब्राह्मणिक परब्रह्म जाति, धर्म के बंधनों से जकड़ा हुआ था। राम अथवा कृष्ण, क्षत्रिय और परशुराम, ब्राह्मण बनकर रह गए थे। कीरी से लेकर कुंजर तक जिस सांई के जीव थे, वह सांई दशरथ का बेटा, रावण का शत्रु, देवकी कोख से सामान्य शिशु की तरह जन्मने और व्याध के तीर से मरने वाला सामान्य मायालिप्त संसारी बन चुका था। कबीर को पक्का विश्वास था कि दशरथ सुत का बखान करने वाले त्रैलोक्य राम नाम के मर्म से अपरिचित हैं :

दशरथ सुत तिहुं लोक बखाना, राम नाम को मरम है आना।[30]

भला जो काल का वशवर्ती हो वह परब्रह्म कैसे हो सकता है? लेकिन ब्राह्मणिक चौबीसों अवतार तो प्रत्यक्षत: काल के वशवर्ती हैं। राम, कृष्ण, परशुराम सबको मरना पड़ा है :

दस चौदह औतार काल के बसि में होई
पलटू आगे मरि रह्यो आखिर मरना भूल
राम कृष्ण परसराम ने मरना किया कबूल।[31]

कबीर ने बताया, मेरा यह राम दशरथ के घर अवतरित नहीं हुआ, उसने लंका के राजा को नहीं सताया। देवकी की कोख में भी वह नहीं आया और न यशोदा ने उसे गोद ही खिलाया। न वह ग्वालों के साथ फिरा, न उसने अंगुली पर गोवर्धन को उठाया। न उसने वामन के रूप में बलि को छला, न वाराह रूप में उसने धरती और वेद का उद्धार ही किया। वह न गंडक का शालिग्राम है, कोल, कच्छ-मच्छ होकर जल में विचरने वाला भी वह नहीं है। बदरिकाश्रम में बैठकर उसने ध्यान नहीं लगाया, परशुराम बनकर क्षत्रियों का संहार नहीं किया। द्वारावती में उसकी (कृष्ण रूप में) मौत नहीं हुई, जगन्नाथ में उसका शरीर नहीं गाड़ा गया। कबीर की मानो, यह सब ऊपरी व्यवहार है। जो संसार में बरत रहा है, वह इन सबसे अगम्य है।[32] वह आदिकर्त्ता कर्मों से अतीत है, आवागमन से ऊपर है, वह न जन्मता है, न मरता है। सहस्रों पृथ्वी और आकाशों में उसका विस्तार है, वह देश और काल से ऊपर है। वह नाद-बिन्दु से अतीत है। वही हमारा खसम है। अगर कहो कि दशरथ का बेटा है तो भाई दशरथ को किसने जन्माया? स्वयं दशरथ का पिता कहां से आया? भला, जो कर्मों से बंधा हुआ हो वह कर्त्ता कैसे हो सकता है?[33]

अगर वह दशरथ का बेटा है, तो निश्चय ही दशरथ से पहले वह नहीं था। पर मेरा राम तो तबसे है, जब सृष्टि का कहीं पता भी नहीं था-जब न पवन था न पानी, न धरती थी न आकाश, न शरीर था न शरीर को धारण करने वाला स्थान, न गर्भ था न मूल, न कली थी न फूल, न शब्द था न स्वाद, न विद्या थी न वेद, न गुरु था न शिष्य। उस समय तो गति से अतीत वह अकेला राम ही था। कबीर कहते हैं, मैं उस नांव-गांव से रहित अविगत की गति क्या कहूं? जिसने गुण ही नहीं, उसका क्या देखें और क्या नाम दें?[34]

कबीर के मत से इस अविगत की गति लक्ष्य नहीं की जा सकती। चारों वेद, सारी स्मृतियां और पुराण तथा नौ व्याकरण कोई उस निर्गुण राम का मर्म नहीं समझ सका।[35] उस राम का कोई नाम-निशान नहीं है। भूख-प्यास का गुण भी उसमें नहीं है। घट-घट में वही समाया हुआ है। पर उसका कोई मर्म नहीं जानता। वह समस्त वेद और भेद से विवर्जित है, पाप और पुण्य से अतीत है, ज्ञान और ध्यान का अविषय है, स्थूल और सूक्ष्म से परे है, मेष और भीख से बाहर है, डिंभ और रूप से ही नहीं, वह अनुपम तत्व तीनों लोकों से अतीत है, त्रैलोक्य विलक्षण है, डिंभ और रूप से ही नहीं, वह अनुपम तीनों लोकों से अतीत है, त्रैलोक्य विलक्षण है।[36] वह राम अवरण है, अकल है, अविनाशी है। न उसके रूप हैं, न रंग है, न देह।[37] वह तो बस निरंजन है, निरंजन, केवल निरंजन। उसके रंग रूप, मुद्रा माया कुछ नहीं है। वह न समुद्र है, न पर्वत, न धरती है, न आकाश, न सूर्य है, न चंद्र, न पानी है न पवन, न नाद है, न बिन्दु, न काल है, न काया, न जप है, न तप। जोग, ध्यान और पूजा भी वह नहीं है। वह शिव भी नहीं है, शक्ति भी नहीं है और न कोई अन्य देवता है। ऋग्, यजु: साम और अथर्ववेद या व्याकरण भी वह नहीं है। जल और जल में बिम्बित छाया जैसा वह जगत जब नहीं था, तब भी वह था।[38]

संतों ने अवतारवाद के मिथकीय छद्म जाल को एक झटके

से उड़ा दिया था। ब्राह्मणिक विचारधारा के ढेरों ग्रंथों को बेमानी कर दिया था।

कबीर में वैदिक देवताओं के प्रति किसी प्रकार का कोई सम्मान व्यक्त नहीं किया गया। संतों के अनुसार वैदिक देवता बेमानी हैं। कालांतर में वैसे भी देवताओं का वर्चस्व समाप्त होता गया था पर फिर भी पुराण ग्रंथों में सम्मानित रूप से स्मरण जरूर किये जाते रहे हैं। संतों के यहां तो उनका हास्यास्पद ढंग से वर्णन है।

संतों की वाणियों में ब्रह्मण्डीय गतिशीलता ही प्रकृति का द्वन्द्वात्मक नियम-विधान है, जिसे संतों ने 'हुक्म' की पारिभाषिकी द्वारा व्यक्त किया है। देखने की बात है कि 'हुक्म' के माध्यम से जीवन जगत के रागात्मक सम्बन्ध 'अकाल पुरुष' में आत्मसात होकर एक परमानन्द में रूपांतरित होते देखे जा सकते हैं।

कबीर का कथन है-

'जिस मरणे ते जग डरे मेरे मन आनंद
मरने ही ते पाईये पूरण परमानंद'[39]

कबीर का यह पूर्ण परमानन्द पारलौकिक नहीं है, न ही यह बैकुण्ठ गमन है, न इसमें किसी स्वर्ग की परिकल्पना है बल्कि यह जीवन, मृत्यु के साथ-साथ समग्र निर्माण-विनाश के द्वन्द्वात्मक नियम-विधान को आत्मसात करने का परिणाम है।

कबीर ने अनेक स्थलों पर स्पष्ट किया है कि यह आना जाना, होना-मिटना भौतिक तत्वों का संगम और भौतिक तत्वों के ब्रह्मण्डीय लीनता के कारण है। इसमें किसी पारलौकिक अथवा किसी देवी सत्ता का दखल नहीं है।

कुदरत की अवधारणा द्वारा कबीर पंडित के जिस 'वाद' का विरोध कर रहे थे, वह था जगत के मिथ्यात्त्व को स्थापित करने वाला सिद्धांत। जाहिर है कि जागतिक अनुभवों की दृष्टि से ऐसा कोई तर्क नहीं हो सकता था, जिसके बल पर दृश्यमान प्रपंच को मिथ्या सिद्ध किया जा सकता।

ब्राह्मणिक ग्रंथों का समाजशास्त्र समाज को दो वर्गों में विभाजित किए था, एक ओर समाज के उच्च वर्ग थे, दूसरी ओर शुद्र थे। उच्च वर्णों का 'द्विज' कोटि में रखा गया। द्विज का अर्थ है दो बार जन्म लेने वाला अर्थात् दूसरी बार पैदा होने का अर्थ था 'उपनयन संस्कार'! इस संस्कार के विशेषाधिकार के कारण ये समाज के विशिष्ट व्यक्ति थे। शुद्रों को उपनयन का अधिकार नहीं था। शुद्र प्रत्येक प्रकार के मानवीय अधिकारों से वंचित कर दिए गए थे। निस्सन्देह शुद्र उस समाज के बहुसंख्यक श्रमिक थे, जिनके अतिरिक्त उत्पादन पर ही समाज के विशेषाधिकार प्राप्त शासक, पुरोहित, व्यापारी आदि वर्गो के लोग सुविधासम्पन्न जीवनयापन की सुविधा में थे। इस प्रकार की यथास्थिति को बनाये रखना परजीवी वर्ग के हितों की पूर्ति के लिए अत्यावश्यक था तथा वे इसके लिए निरंतर सजग एवं प्रयत्नशील रहे हैं। ब्राह्मणिक दार्शनिकों का एक भरा पूरा वर्ग जगत के मिथ्यात्व की घोषणा करता हुआ श्रमिकों की अमानवीय स्थिति का औचित्य प्रतिपादित करने में स्मृति ग्रंथों के सृजन और विकास में लगा रहा है। भौतिक जगत को यथार्थता रहित बताया जाने लगा। प्रकृति का वास्तविक ज्ञान, जिसे आज के युग में विज्ञान कहा जाता है, उनके लिए शून्य, कपोल-कल्पित, आकाश कुसुम या केवल नाम-रूप था।

कबीर ने 'शब्द' को केंद्रीय महत्व प्रदान किया है। 'शब्द' की द्वन्द्वात्मक गतिशीलता में कबीर ज्ञान के यथार्थक बोध का संधान करते रहे हैं। कबीर का शब्द अपने में ज्ञान भी है और ज्ञान का स्रोत भी है। इसे उन्होंने दही बिलोने के रूपक द्वारा स्पष्ट किया है। वे कहते हैं, तन मटकी है, मन उसमें मथानी है। शब्द रूपी दही को, तन की मटकी में मन रूपी मथानी द्वारा बिलोने की प्रक्रिया द्वारा ज्ञान रूपी सारतत्व प्राप्त होता है। दूसरे शब्दों में देह और मन की द्वन्द्वात्मक अनुभवमयता, शब्द में निहित ज्ञान की अन्तर्क्रिया द्वाारा पुनः शब्द के माध्यम से ही नित्य नये ज्ञान बोध को गतिशील किए रहती है:

तन करि मटुकी मन माहि बिलोई।
इसु मटुकी महि सबद संजोई।।
हरि का बिलोवना मन का बीचारा।
गुर प्रसादि पावै अंम्रित धारा।।[40]

कबीर का 'शब्द' रहस्यमूलक नहीं, बल्कि ज्ञान के संचय और सम्प्रेषण का प्रत्यक्षीकृत रूप है। कबीर ने शब्द में ज्ञान को निहित मानकर ज्ञान के विकास में ज्ञान के इतिहास के योगदान को लक्षित किया है। पीढ़ी-दर-पीढ़ी के संचित अनुभवों का भाषा के कूटों से प्रस्फुटित ज्ञान ही, अवधारणा के स्तर पर वर्तमान के द्वन्द्वात्मक बहुआयामी अनुभवों की अन्तर्क्रिया के माध्यम से नित्य नये ज्ञान के धाराप्रवाह को गति प्रदान किए रहता है। ब्राह्मणिक 'ग्रंथ' और कबीर के 'शब्द' का यह अन्तर्द्वन्द्व उत्पीड़क और उत्पीड़ित के वर्गीय अन्तर्विरोध को लक्षित करता है।

ब्राह्मणिक ग्रंथ वर्गीय उत्पीड़न के निमित्त ब्राह्मणिक अंधविश्वासों का छद्म जाल हैं, जबकि कबीर का 'शब्द' उत्पीड़ितों के प्रतिरोध को क्रांतिकारी दिशा प्रदान करता है, क्योंकि कबीर के शब्द में ज्ञान के संधान की प्रक्रिया का आधार जीवन जगत के अनुभवों का केंद्र मानवीय देह है, जिसे उन्होंने तन रूपी मटकी में शब्द के बिलोने की मार्फत ज्ञान पाने की बात कही है। यह वह 'तन' है, जिसे ब्राह्मणिक ग्रंथों में दूषित माना गया है और यह वह 'तन' है, जो उत्पादन शील वर्गों की श्रम-जन्य आजीविका की आधार भूमि है और जिसकी भव्यता के मद्देनजर संतों ने इसी तन में अपने 'अकाल पुरुष' को परिव्याप्त माना है।

कबीर के निरंजन को घट-घट में व्याप्त मान लेने पर सभी ईश्वरवादी परम्पराएं निरस्त हो जाती हैं।

कबीर ने बताया कि उनका राम एक प्रकाश पुंज की तरह घट-घट में विद्यमान है।[41] कबीर ने बताया, काया में उसे जानो, इसमें जो बोलता है, वह स्वयं है-

काया मांहे जांनैं सोई, जो बोलै सो आपै होई।

कबीर का स्वामी घट-घट में निवास करता है-

कबीरा कौ स्वामी घटि घटि रह्यौ समाई।[42]

ब्राह्मण्डीय सार्वभौम-'अकाल पुरुष' को घट-घट में व्याप्त सिद्ध करते हुए कबीर ने, शरीर से भिन्न किसी स्वायत्त आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार नही किया। ब्राह्मणिक विचारधारा में देह को मलिन अथवा दूषित घोषित करते हुए देह से अलग एक स्वायत्त 'आत्मा' को सर्वोपरि यथार्थता के रूप में स्थापित किया गया है। दरअसल आत्मा की यही सैद्धांतिकी शारीरिक श्रम में लगे लोगों के तिरस्कार और शोषण का आधार रही है। आत्मवाद के तहत जीवन जगत के अनुभवों को मिथ्या बताते हुए उत्पादन कर्म की अवमानना की गई और उत्पादनशील श्रेणियों के प्रतिरोध की सभी संभावनाओं पर अंकुश लगा दिया गया था।

हमारे पास इस आत्मवाद के स्थान पर देहवाद की एक दीर्घ परम्परा रही है। इसी देहवादी परम्परा का विकास करते हुए कबीर ने सिलसिलेवार अपनी मौखिक वाणियों में देह का महत्व स्थापित किया है।

कबीर का राम घट में, देह में रमा हुआ है :

राम लौ घट भीतर रमि रह्या।।[43]

कबीर दास ने 'पिंड में ही ब्राह्माण्ड को जानने' की बात कही है। कबीर का विश्वास है कि तन में तीन भुवन की विद्यमानता मान लेने से ही सत्य को उपलब्ध किया जा सकता है।

कबीर ने काजी को भी काया की खोज की सलाह दी है :

काजी सो जो काइया बीचारै।।[44]

कबीर की साधना का केंद्र मानवीय देह है। इसीलिए वे इसे कमाण की तरह कस कर रखने का उपदेश देते हैं। पांच तत्व बाण हैं और इन बाणों से मन रूपी मृग को वश किया जाना है। जैसे स्वर्णकार कसौटी पर सोने को परखा करता है, उसी प्रकार कबीर शरीर को 'सोधने' की बात कहते हैं।[45]

देह के बारे में पंडित के वाद-विवाद का निषेध करते हुए बार-बार कहा गया है कि देह के बिना कुछ प्राप्त नहीं होता। खास तौर पर जब संतों का दृढ़तापूर्वक विश्वास है कि उनका निरंजन मानवीय देह में ही निवास करता है। कबीर कहते हैं

हरि-हरि महि तनु है तन महि हरि है सरब निरंतरि सोइ रे।[46]

कबीर मनुष्य जन्म को दुर्लभ मानते हैं। यह बार-बार नहीं होता। इस जन्म की पुनरावृति नहीं होती। वृक्ष से फल झड़ने के बाद वही फल पुन: वृक्ष पर नहीं लगाया जा सकता:

मनिषा जनम दुर्लभ है, देह न बारंबार
तरवर थैं फल झड़ि पड़्या बहुरि न लागै डार।।[47]

इसके उलट ब्राह्मणिक विचारधारा के पास वर्गीय इस्तेमाल के लिए पुनर्जन्म का सिद्धांत है। ब्राह्मणवाद का मानना है कि देह में बद्ध आत्मा, देह से छुटकारा पाकर कतिपय नये रूपों को ग्रहण करती हुई पाप-पुण्य आदि कर्मफल के समाप्त होने पर अन्ततोगत्वा किसी ब्रह्म के अद्वैत में विलीन हो जाती है। ब्राह्मणिक जीवात्मा ऐसा दुश्चक्र है, जिसका पुराण ग्रंथों में कोई ओर छोर नहीं। उनका आशय आत्मा और देह की गुत्थी को सुलझाने में नहीं था, बल्कि वे पुनर्जन्म द्वारा पुन: पुन: यह सिद्ध करना चाहते रहे हैं कि उनके आदर्श समाज का वर्ण विधान पिछले जन्म के कर्मों पर आधृत है। यह एक ऐसा मिथ था कि जिसके आधार पर भारत का विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग शुद्रों के घोर अमानवीय उत्पीड़न को न्यायसंगत सिद्ध करता आ रहा है। यहां देह का नकार दरअसल श्रम का तिरस्कार है। जबकि कबीर तन को संभालने की चिंता करते हुए श्रम और श्रमिक का महत्व स्थापित कर रहे थे। ध्यान रहे कि एक श्रमिक की पूंजी तो मात्र देह ही हो सकती है देह से ही उसका अस्तित्व है।

कबीर आवागमन, पुनर्जन्म, परलोक आदि के यत्र तत्र निषेध के माध्यम से मूलत: देह केंद्रित श्रम मूलक जीवन दृष्टि को अधिक स्पष्ट करते रहे हैं। बार-बार उन्होंने कहा है कि जीवन का उद्भव भौतिक तत्वों के सुमेल का परिणाम है। पाप-पुण्य बैकुंठ स्वर्ग का कोई वजूद नहीं है।

ब्राह्मणिक परम्परा में दावा किया गया है कि आत्मा देह में कैद है, देह के मिटने पर ही मुक्ति प्राप्त की जा सकती है। देह के मुकाबले आत्मा का सर्वोपरि महत्व उपनिषदों का केंद्रीय विषय रहा है। इसलिये कबीर वैदिक परम्परा के मान्यता प्राप्त ऋषियों से अपेक्षा नहीं रखते कि वे देह और आत्मा के द्वन्द्वात्मक रहस्य को जानते नहीं होंगे :

सनकादिक नारद मुनि सेखा।
तिन भी तन महि मन नहीं पेखा।।[48]

कबीर आत्मा के लिए यहां मन का प्रयोग करते हुए केवल चेतना का संकेत दे रहे हैं। कबीर इस मन को खोजने के लिए प्रश्न उठाते हैं कि तन छूट जाने पर मन कहां चला जाता है? पर उन्होंने शायद इसका उत्तर अपने पूर्व संतों से जान लिया था और बता सके थे कि यह मन कहीं आता-जाता नहीं है, इसका कोई आवागमन नहीं है। दूसरे शब्दों में कबीर का अन्तर्निहित अभिप्राय यह था कि देह और चेतना अभिन्न हैं, एक ही तांत्रिक प्रक्रिया का परिणाम हैं। देह का छूटना, चेतना के छूटने से भिन्न नहीं है, इस बारे में फैलाए गए भ्रमों के मिटने पर ही सत्य का साक्षात्कार हो पाता है। कबीर इस बात को और अधिक स्पष्ट करते हुए बता रहे हैं कि चेतना देह से भिन्न कोई रूप या चिन्ह नहीं होती।

आत्मवाद, जगत को मिथ्या मानने वाले सभी सिद्धांतों का मूल है। आत्मवाद में चेतना का देह से अलग अस्तित्व सिद्ध करते हुए मानवीय देह को घृणित मान लिया गया है। देह के नकार में उन श्रमजन्य गतिविधियों का तिरस्कार है, जिनकी बदौलत आत्मवादी दार्शनिक जिन्दा है। इसी विडम्बनायुक्त दुरभिसन्धि में हमारे श्रमिकों की अवमानना का रहस्य छिपा हुआ है। देखने की बात है कि जिन ग्रंथों में आत्मवाद का महिमामंडन किया गया, उन्हीं में साथ ही श्रमिकों को

पापयोनि से अभिशप्त करते हुए उन्हें मानवीय अधिकारों से वंचित कर दिया गया था।

श्रम और श्रमिक की श्रमजन्य आजीविका को सत्याचरण की कसौटी मानते हुए संतों का कहना था, सही राह पाने का एकमात्र साधन- 'श्रमजन्य उपार्जन की मिल बांट पर आधृत जीवन पद्धति है।'

ब्राह्मणिक ग्रंथों ने धर्म और धर्म के कर्मकाण्डों के माध्यम से श्रम और श्रमिक के तिरस्कार की एक भरी पूरी सैद्धांतिकी सृजित करते हुए श्रमजन्य कंरणी वाले किसानों, सेवा कर्मियों, शिल्पियों, श्रमिकों को शुद्र 'अस्पृश्य' पापयोनि सिद्ध किए रखा था।

कबीर ने इस स्थिति को उलट दिया था। उन्होंने शुद्रों के मानवाधिकारों को ही ईश्वर आस्था की कसौटी पर प्रमाणित कर दिया था।

जिसकी कथनी, करनी और रहनी में तालमेल न हो, कबीर उसे आदमी नहीं, कुत्ता मानते हैं।

जैसी मुख तैं नीकसै तैसी चालै नांहि
मानुख नहीं तै स्वांन गति बांधे जमपुर जांहि।।[49]

कबीर स्वर्ग नहीं चाहते, मोक्ष नहीं चाहते। उनका परम प्राप्तव्य लोभ, झूठ, मनोविकारों के त्याग पर आधृत 'रहनी' है। संतों का 'नाम जप' किसी तत्वचिंतन का विषय न होकर इसी 'रहनी' का विषय है। संत इसी को सहज समाधि या उन्मनी रहनी कहते हैं। पुराणों की ब्राह्मणिक भक्ति और कबीर के नाम-जप में यही मौलिक भेद है। संत 'नाम-जप' को रहनी या लाचार से बाहर नहीं मानते। ब्राह्मणिक भक्ति में माना यह गया है कि आचार चाहे जैसा भी हो, अगर व्यक्ति गलती से ही एक बार राम का नाम ले ले तो कुछ और करने की जरूरत नहीं रह जाती। सीधे नाम लेना तो खैर कुछ बात है, वाल्मीकि उल्टा नाम जपकर ही ब्रह्म समान हो गए थे-

उलटा नाम जपत जग जाना।
वाल्मीकि भयए ब्रह्म समाना।

ब्राह्मणवाद और संतों के विश्व दृष्टिकोण का यही मूलभूत भेद है। देखने की बात है कि ब्राह्मणवाद की वर्णधर्मी भौतिक और बौद्धिक श्रम की बांट में, जाहिर है कि बुद्धिजीवी वर्ग शारीरिक श्रम के उत्तरदायित्व से मुक्त रहता है। श्रम-प्रक्रिया मूल रूप से प्रकृति और भौतिक मानव देह के बीच क्रिया प्रतिक्रिया है और इसमें बाह्य पदार्थों को अपनी आवश्यकताओं के अनुकूल बनाने का प्रयत्न रहता है। कहने का मतलब यह है कि भौतिक विश्व-प्रकृति की यथार्थता तब तक मानव चेतना पर अपनी छाप बनाये रखती है जब तक मनुष्य श्रम-साध्य कार्यों में लगा होता है। इस दृष्टि से श्रम साध्य कार्यों के केंद्रीय महत्व के कारण ही संतों के लिए मानवीय देह सर्वोपरि है और इसी सिलसिले में प्रकृति और ब्राह्मण्ड, यथार्थ वास्तविकता है। इसके विपरीत द्विजों के लिए श्रम का निषेध करते हुए, द्विजों की ब्राह्मणिक विचारधारा में मनुष्य और प्रकृति के बीच क्रिया-कलाप को भंग कर दिए जाने पर देह के स्थान पर आत्मा को सर्वोपरि मान लिया गया है और तब प्रकृति और ब्राह्मण्डी यथार्थता स्वत: मिथ्या प्रतीत होने लगती है। मनुष्य की चेतना जो विषय को प्रतिबिम्बित करती है, वह विषय ही जब लुप्त हो जाता है तो चेतना, फिर स्वत: स्वायत्त रूप से रहस्यवाद में रूपांतरित होने लगती है। यही ब्राह्मणवाद का आत्मवाद है।

ब्राह्मणिक आत्मवाद की पहली शर्त यह है कि आत्मनिर्भर या स्वतंत्र प्रकृति के अस्तित्व को नकार दिया जाए। ब्राह्मणिक आत्मवाद न केवल प्रकृति के अस्तित्व को न मानने वाला सिद्धांत है, बल्कि इसमें यह निश्चित किया गया है कि आत्मा या चेतन ही परम सत्य है और मानव मस्तिष्क ही वास्तविकता का संचालन करता है।

कबीर ने प्राणि-जगत, प्रकृति और ब्राह्माण्ड की एकसूत्र संवेदनात्मक मनोचेतना के आधार पर ब्राह्मणवाद की इस वर्गीय आत्मवादी विचारधारा को चुनौती प्रदान करते हुए निरपख और समतामूलक विश्व दृष्टिकोण स्थापित किया था। इस प्रयत्न में कबीर ने सभी भेदमूलक मतवादी परम्पराओं पर गहराई से नजर गड़ाये हुए कहा था-

पषा पषी के पेषणै सब जगत भुलाना।[50]

पखपात का विरोध करते हुए कबीर ने पंडित और मुल्ला दोनों को त्याग कर सब विवाद ही खत्म कर दिए थे-

हमारा झगरा रहा न कोऊ,
पंडित मुलां छाडे दोऊ।
पंडित मुलां जो लिखि दीआ,
छाडि चले हम कछू न लीआ।[51]

गौरतलब है कि यह निरपखता कबीर के इस विश्वास पर आधृत है कि जिस प्रकार एक ही मिट्टी से भांति-भांति के बर्तन घड़ लिए जाते हैं। उसी प्रकार एक ही कुदरत से सृष्टि और सृष्टि के समस्त प्राणि जगत की संरचना हुई है। संतों ने ब्रह्माण्ड और ब्राह्माण्डीय वस्तु-जगत की यथार्थता को प्रमाणित करते हुए बताया है कि रचयिता, सृष्टि में स्वयं विद्यमान है और पुन: सृष्टि, रचयिता में समोयी हुई है:

खालिकु खलक खलक महि खालिकु पूरि रहिओ सरब ठांई।
माटी एक अनेक भांति करि साजी साजनहारै।
ना कुछ पोच माटी के भांडे न कछु पोच कुंभारै।[52]

कबीर की वाणियों में इस वस्तुस्थिति पर जोर दिया गया है कि मानवीय-अभ्युदय में ईश्वरवादी धर्मों की कोई सार्थक भूमिका नहीं है बल्कि इस प्रकार के धर्मों के भेदमूलक गठनों ने अपने पैरोकारों के बीच विखण्डनताओं के बीजारोपण किए हैं। इन धर्मों के बदल में, संत, घट-घट में ब्राह्मण्डीय सार्वभौम 'अकालपुरुष' की विद्यमानता को समझते-समझाते हुए, मानवीय सत्याचरण की आध्यात्मिक मनोचेतना पर आधृत 'आपा पछाण'-'अपो दीपो भव' के ज्ञानालोक में मानवीय अस्मिता का संधान कर रहे थे।

दमनमूलक ब्राह्मणिक विचारधारा की चुनौती के मद्देनजर,

धर्मों, मत-मतान्तरों और जातियों के विखण्डनों को रद्द करते हुए, कबीर दरअसल एक बड़े रूपांतरण की प्रतिबद्धता के साथ पीड़ित वर्गों की एकजुटता के लिए प्रयत्नशील रहे हैं। गौरतलब है कि कबीर की वाणी में प्रतिपादित मानवीय एकता और समता, समभावमूलक और समन्वयपरक नहीं है बल्कि उन्होंने ब्राह्मणिक उत्पीड़क वर्चस्व और दलित के बीच साफ तौर पर एक द्वन्द्वात्मक अंतर्विरोध लक्षित किया है-

तू बाह्मन मैं कासी क जुलहा बूझहु मोर गिआना।
तुम तउ जाचे भूपति राजे हरि सिउ मोर धिआना।[53]
तू ब्रहमनु मैं कासी का ुलहा मोहि तोहि बराबरी कैसे कै बनहि।
हमरे राम नाम कहि उबरे बेद भरोसे पांडे डूब मरहि।।[54]

निष्कर्षत: कबीर की वाणी में ब्राह्मण और जुलाहा का यह अंतर्विरोध सत्ता और जन विमर्शों का अन्तर्विरोध है।

कबीर की वाणी अतार्किक, मिथकीय, अंधविश्वासपरक, दमनमूलक, ब्राह्मणिक विचारधारा के खिलाफ लंबे समय से संघर्ष करते आ रहे असुरों/शुद्रों/लोकायतों के निरपख, नैतिक, समतामूलक और तर्कसम्मत जनविमर्शों का पुनर्जागरण हैं।

संदर्भ:

1. भगत रविदास, सं.:जसबीर सिंह साबर, अमृतसर 1984, पृ.-283
2. बाणी भगत कबीर जी, सं.भाई जोधसिंह, पटियाला, पृ.-95
3. वही, पृ.-150, 4. कबीर ग्रंथावली, श्यामसुंदर दास, वाराणसी, सं. 2050, पृ.-155, 5.वही, पृ.-173, 6.वही, पृ.-184, 7.वही, पृ.-173 8.वही, पृ.-80, 9.बाणी भगत कबीर जी, पृ.-181, 10.वही, पृ.-164, 11.वही, पृ.-173, 12.वही, पृ.-120, 13.वही, पृ.-115, 14.वही, पृ.-179, 15.वही, पृ.-111, 16.वही, 17.वही, पृ.-92, 18.वही, पृ.-111, 19. तैत्तिरीय उपनिषद 11.2, 20.बाणी भगत कबीर जी, पृ.-27 21.वही, पृ.-25, 22.वही, पृ.-6, 23.वही, पृ.-169, 24.वही, पृ.-173, 25.वही, पृ.-164, 26.वही, पृ.-119, 27.वही, पृ.-120, 28.वही, पृ.-87, 29.वही, पृ.-91, 30. कबीरदास बीजक, 31.महात्माओं की वाणी, पृ.-129 32.कबीर ग्रंथावली, तिवारी, रमैनी 2, 33.वही, पद-158, 34.वही, रमैनी 4, 35.वही, पद-153, 36.कबीर ग्रंथावली, श्यामसुंदर दास, पद 220, 37. संतवाणी संग्रह, पृ.-15, 38.कबीर ग्रंथावली, श्यामसुंदर दास, पद 219, 39. 40. 41.कबीर ग्रंथावली, श्यामसुंदर दास, पृ.-54, 42.कबीर ग्रंथावली, श्यामसुंदर दास, 150.328, 43. वही, 64.4, 44.बाणी भगत कबीर जी, पृ.-134, 45.वही, 46.वही, 47.कबीर ग्रंथावली, श्यामसुंदर दास, पृ.-19, 48.बाणी भगत कबीर जी, पृ.-22, 49.कबीर ग्रंथावली, सं.पारसनाथ तिवारी, 249:9, 50.कबीर ग्रंथावली, श्यामसुंदर दास, 111.181, 52.वही,पृ.-149, 53.वही,पृ.-79, 54.वही,पृ.-115,

सम्पर्क : 9888648108

कबीर के पद

पंडित छाण पियो जल पाणी

साखी बैस्नों भया तो क्या भया, बूझा नहीं विवेक।
छापा तिलक बनाई करि, दुविधा लोक अनेक।।
टेक पंडित छाण पियो जल पाणी, तेरी काया कहां बिटलाणी[1]।
चरण वही माटी की गागर होती, सौ भर के मैं आई।
सौ मिट्टी के हम तुम होते, छूती कहां लिपटाणी[2]।।

न्हाय धोय के चौका दीना, बहुत करी उजलाई।
उड़ मक्खी भोजन पे बैठी, बूड़ी तब पंडिताई।।

छप्पन कोटि यादव गलि-ग्या, मुनि जन शेष अठ्ठासी।
तैतीस कोटि देवता गलि-ग्या, समदर[3] मिल गई माटी।।

हाड़[4] झरी-झरी[5], चाम[6] झरी-झरी, मांस झरी दूध आया।
नदियां नीर बहि कर आयो, रक्त बूंद पशु सरया[7]।।

जल की मछली जल में जन्मी, सावड़[8] कहां धोवाई।
कहे कमाल में पूछूं पंडित, छूती[9] कहां से आई।।

1. अपवित्र होना 2. लगना 3. समुद्र 4. हड्डियां 5. पिघलना 6. चमड़ी 7. कंकाल 8. आंवल 9. छुआछूत

जोगी मन नी रंगाया

साखी -सिद्ध भया तो क्या भया, चहु दिस[1] फूटी बास[2]।
अंदर वाके बीज है, फिर उगन की आस[3]।
टेक -जोगी मन नी रंगाया, रंगाया कपड़ा।
पाणी में न्हाई-न्हाई पूजा पथरा[4], तने मन नी रंगाया
चरण -जाई जंगल जोगी धुणी लगाई हो।
राख लगाई ने होया गदड़ा[5]।।

जाई जंगल जोगी आसन लगाया।
डाडी रखाई ने होया बकरा।।

मुंड मुंडाई जोगी, जटा बड़ाई हो।
कामी[6] जलाई ने होया हिजड़ा।।

दूध पियेगा जोगी बालक बछवा हो।
गुफा बणाई ने होया उन्दड़ा[7]।।

कहे कबीर सुणो भाई साधो हो।
जम[8] के द्वारे मचाया झगड़ा।।

1. दिशा 2. कामना 3. उम्मीद 4. पत्थर 5. गधा 6. कामवासना 7. चूहा 8. यम

अवधू दोनों दीन कसाई

साखी -कटू बचन कबीर के, सुनत आग लग जाय।
शीलवंत[1] तो मगन भया, अज्ञानी जल जाय।।

टेक –अवधू दोनों दीन कसाई।

चरण –हिन्दू बकरा मिण्डा मारे, मुसलमान मुर्गाई।
कांच खोल[2] के करे हलाला, रक्त की नदिया बहाई।।

हिन्दू घड़ा छूवन नहिं देवे, छूते ही करे लड़ाई।
वेश्या के पायन तर[3] सोवे, कहां गई हिन्दुआई।।

हिन्दुअन की हिन्दुआई देखी, तुर्कन की तुर्काई।
अल्ला राम का मरम[4] न जाना, झूठी सौगंध खाई।।

मोटी जनेऊ बम्मन पेने, ब्राह्मणी को नहिं पेनाई।
जनमं-जनमं की भई वो सुद्रा, उने परस्यो[5] तने[6] खाई।।

नदी किनारे सुअर मरग्या, मछली नोंच कर खाई।
वो मछली तुर्कन ने खाई, कहां गई तुर्काई।।

मुसलमान और पीर औलिया, सब मिल पंथ चलाई।
कहे कबीर सुणो भई साधो, घर में करै सगाई।।

1. विवेकी 2. धारदार हथियार 3. पास 4. मर्म (भेद)
5. परोसा हुआ 6. तून

भक्ति करो ब्रह्मांड में

साखी –गुरु लोभी शिष्य लालची, दोनों खैले दाव।
दोनों बपुरे बूडही[1], चढ़ी पत्थर की नाव।।

टेक –भक्ति करो ब्रह्मांड में साधु–
ऐसी भक्ति करो मन मेरे, आठ पहर आनंद में हो।

चरण –बामण तो मांगण[2] फंसग्या[3], बणिया फंसग्या धन में हो।
भोपा जाय मड़ी[4] में फंसग्या, नहीं देव मड़ी में हो।।

गिरी पुरी और भारती, पूज रहे पत्थर में हो।
जादू टोटका[5] मुठ[6] साधके, लोग लगे लूटन में हो।।

बाबा तो खावण में फंसग्या, चेला फंसा मुण्डन में हो।
जोगी जाय जंगल में घुसग्या, नहीं देव जंगल में हो।।

कहे कमाली कबीर की चेली, ढूंढ लिया सब खंड[7] में हो।
कहे कबीर सुणो भाई साधो, छोड़ दे पाखंड को हो।।

1. भूल में 2. मांगना 3. लगना 4. मंदिर (आश्रम) 5. जादू-टोना
6. जादू का एक तरीका 7. चारों ओर

न जाने तेरा साहेब कैसा है

साखी कांकर पाथर जोरि[1] कै, मस्जिद लई बनाय।
तां चढ़ी मुल्ला बांग[2] दे, बहरो भयो खुदाय।।

टेक –न जाने तेरा साहेब कैसा है।

चरण –मस्जिद भीतर मुल्ला पुकारै, क्या साहेब तेरा बहिरा है।
चिउंटी[3] के पग नेवर[4] बाजै, सो भी साहेब सुनता है।।

पंडित होय के आसन मारै, लम्बी माला जपता है।
अंतर तेरे कपट कतरनी, सो भी साहेब लखता[5] है।।

ऊंचा नीचा महल बनाया, गहिरी नेव[6] जमाता है।
चलने का मनसूबा[7] नाही, रहने को मन करता है।।

कौड़ी कौड़ी माया जोड़ी, गाड़ि जमीं पे धरता है।
जिस लहना[8] है सो लै जैहै, पानी बहि बहि मरता है।।

सतवन्ती को गजी[9] मिलै नहि, वैश्या पहिरै खासा[10] है।
जेहि घर साधु भीख न पावै, भइवा खात बतासा है।।

हीरा पाय परख नहि जानै, कौड़ी परख न करता है।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, हरि जैसे को तैसा है।।

1. जोड़कर 2. अजान 3. चींटी 4. आवाज 5. देखता 6. नींव
7. इच्छा (तैयारी) 8. लेना 9. साधारण वस्त्रा (मलमल) 10. महंगे वस्त्र

साधौ पांडे निपुन[1] कसाई

साखी एकै त्वचा हाड़ मूल मूत्र, एक रुधिर एक गूदा।
एक बूंद से सृष्टि रची है, को ब्राह्मण को सूदा।।

टेक साधौ, पांडे निपुन कसाई।

चरण बकरी मारि भेड़ी को धावै[2], दिल मे दरद[3] न आई।
करि असनान तिलक दै बैठे, विधि सो देवि पुजाई।
आतम[4] मारि पलक में बिनसे[5], रुधिर की नदी बहाई।।

अति पुनित[6] ऊंचे कुल कहिये, करम करावै नीचा।
इनसे दिच्छा[7] सब कोई मांगे, हंसि आवे मोहि भाई।।

पाप-कपट की कथा सुनावै, करम करावै नीचा।
बुड़त दो परस्पर दीखे, गहे बांहि जम खींचा।।

गाय वधै सो तुरुक कहावै, यह क्या इनसे छोटे।
कहै कबीर सुणो भाई साधो, कलि में ब्राह्मण खोटे।।

1. कुशल 2. तैयार होना 3. दया 4. आत्मा 5. नष्ट होना 6. पवित्र 7. दीक्षा (गुरु बनाना)

साखी ऐसी मति संसार की, ज्यों गाडर[1] का ठाठ[2]।
एक पड़ा जेहि गाड़[3] में, सबै जाहि तेहि बाट।।

टेक क्यों भूलोगी थारो देस दीवानी क्यों भूलोगी थारो देस हो–

चरण भूली मालन[4] पाती रे तोड़े, पाती पाती में जीव हे रहे।
पाती तोड़ देवत को चढ़ाई, वो देवत नरजीव[5] बावरी।।

डाली ब्रह्मा पाती बिसनु, फूल शंकर देव है।
फूल तोड़ देवत को चढ़ाई, वो देवत नरजीव।।

गारा की गणगौर[6] बणाई, पूजे लोग लुगाई हो।
पकड़ टांग पाणी में फैंकी, कहां कई सकलाई हो[7]।।

देश देश का भोपा[8] बुलाया, घर माय बैठ घुमाया हो।
नायल[9] फोड़ नरेटी[10] चढ़ावे, गोला[11] खुद गटकावे।।

दूधा भात की खीर बणाई, खीर देवत को चढ़ावे।
देवत ऊपर कुत्ता रे मूते, खीर गीलोरी[12] गटकावे।।

जीता बाप को जूतम जूता, मरया गंगाजी पहुंचावे।
भूखा था जब भोजन न दिया, कव्वा[13] बाप बणावे।।

भेरु भवानी आगे छोरा छोरी मांगे, सिर बकरा का सांटे[14]।
कहे कबीर सुणो रे भई साधो, पूत[15] पराया मत काटे।।

1. भेड़ 2. झुण्ड 3. गड्ढा 4. बागवान की पत्नी 5. अचेतन (निर्जीव)
6. एक प्रतिमा (जो विशेष पर्व पर बनाते हैं) 7. सच्चाई
8. जाण (ऐसा मानते हैं कि ये उस देवता के प्रतिनिधि हैं)
9. नारियल 10. नारियल का खोल 11. नारियल की गरी
12. गिलहरी 13. कौओ 14. बदले में (चढ़ाकर) 15. पुत्र

तेरा मेरा मनुवा

साखी सात दीप नौ खण्ड में, सतगुरु फेंकी डोर।
हंसा डोरी न चढ़े, तो क्या सतगुरु का जोर।।
टेक तेरा मेरा मनुवा कैसे एक होई रे।
चरण मैं कहता हो आंखिन देखी, तू कहता, कागद की लेखी,
मैं कहता सुरझावन[1] हारी, तू राख्यौ उरझाई[2] रे।।

मैं कहता हो जागत रहियो, तू रहता है सोई रे।
मैं कहता निर्मोही रहियो, तू जाता है मोही रे।।

जुगन-जुगन समुझावत हारा, केणो न मानत कोई रे।
राह भी अंधी, चाल भी अंधी, सब-धन डारा खोय रे।।

सतगुरु धारा निर्मल बैवे, वामे[3] काया धोई रे।
कहत कबीर सुणो भई साधो, तब वैसा ही होई रे।।

1. सुलझाने की 2. उलझाकर 3. उसमें

पंडित तुम हैसे उत्तम कहाये

साखी पंडित और मशालची[1], दोनों को सूझे नाहि।
औरन को करे चांदनी, आप अंधेरा मांई।।
टेक पंडित तुम कैसे उत्तम कहाये।
चरण एक जाइनि[2] से चार बरन[3] भे, हाड़ मास जीव गूदा।
सुत परि दूजे नाम धराये, वाको करम न छूटा।।

कन्या जाति जाति की बेचत[6], कौने जाति कहाये।
आप कन्या बेचन लागे, भारी दाम चढ़ाय।।

जहं लगि पाप अहै दुनिया में, सो सब कांध चढ़ाये।
कहै कबीर सुनो हो पंडित, घर चौरासी या छाय।।

1. उजाला करने वाला 2. योनि 3. वर्ण 4. सभी 5. अलग करना
6. दहेज प्रथा

म्हारो हीरो हेराणो[1] कचरा में

साखी पूरब दिशा हरी को बासा, पश्चिम अल्लह मुकामा।
दिल में खोजि दिलहि मा खोजे, इहै करीमा रामा।।
टेक म्हारो हीरो हेराणो कचरा में, पांच पचीस का झगड़न में।
चरण कोई पूरब कोई पश्चिम ढूंढे हो।
कोई पानी कोई पथरों में।।

कोई तीरथ कोई बरत करत हो।
कोई माला की जपरन में।।

सुनीजन मुनीजन पीर औल्या हो।
भूली गया सब नखरन में।।

धर्मदास के हीरा पाया हो।
बांद लिया है हंसलन[2] में।।

1. गुम हो जाना 2. हाथ

तन काया[1] का मन्दिर

साखी मन मंदिर दिल द्वारखा, काया काशी जान।
दस द्वारे का पिंजरा, याहि[2] में ज्योत पहचान।।
टेक तन काया का मंदिर साधु भाई, काया राम का मंदिर।
इना मंदिर की शोभा पियारी, शोभा अजब है सुंदर।।
चरण पांच तीन मिल बना है मंदिर, कारीगर घड़ा-घड़ंतर।
नौ दर[3] खुल्ले दसवां बंद कर, कुदरत कला कलन्दर।।

इना मंदिर में उन्मुख[4] कुवला[5] , वहां है सात समुन्दर।
जो कोई अमृत पिवे कुवे का, वाका भाग बुलन्दर।।

अनहद घण्टा बाजे मंदिर में, चढ़ देखो तुम अन्दर।
अखण्ड रोशनी होय दिन राती, जैसे रोशनी चन्दर।।

बैठे साहेब मन्दिर में, ध्यान धरो उनके अन्दर।
कहे कबीर साहब करो नेम से पूजा, जब दरसेगा[6] घट अन्दर।।

1. शरीर 2. इसी में 3. द्वार 4. उल्टा 5. कुआं (खोपड़ी)
(विचारधारा) 6. मिल जाएगा

पंडित की धेनु[1] दूध नहीं देती

साखी पाथर पूजत हरि मिले, तो मैं पूजु पहाड़।
वा से तो चाकी भली, पीस खाये संसार।।
टेक धातु की धेनु दूध नही देती रे बीरा म्हारा,
धातु की धेनु दूध नहीं देती।
चरण मंदिर में मुर्ति पदराई[2], मुख से अन्न नहीं खाती रे।
उको पुजारी वस्त्र नी पेनावे, तो नांगी को नांगी बैठी रेती रे।।
नाग पंचमी आवे जदे[3], कोले[4] नाग मांडती,
दूध दही से पूजती।
सांची को नाग सामें मिल जावे तो,
पूजा फेंकी ने भागी जाती रे।।

1. गाय 2. स्थापित करना 3. दीवार का कोना 4. कोयला

आजादी मेरा ब्रांड की लेखिका

अनुराधा बेनीवाल से संवाद

7 अप्रैल 2016 को कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र में 'देस हरियाणा' पत्रिका के तत्वाधान में 'अपने लेखक से मिलिए' कार्यक्रम हुआ, जिसमें 'आजादी मेरा ब्रांड' की लेखिका अनुराधा बेनीवाल ने भाग लिया। इस अवसर पर उन्होंने अपने अनुभव सांझा किए तथा उपस्थित लोगों के सवालों पर अपना दृष्टिकोण रखा। इस अवसर पर लगभग 180 लोग मौजूद थे, जिसमें लेखक शोधार्थी व विद्यार्थी शामिल थे। यह संवाद बहुत ही जीवंत था, जिसमें समाज, संस्कृति, लेखन व लेखकीय दायित्व से जुड़े ज्वलंत सवाल उठे। बड़ी ईमानदारी और बेबाकी से अनुराधा बेनीवाल ने उत्तर दिए। इस अवसर पर अनुराधा के माता-पिता भी मौजूद थे तथा उनके पिता श्री कृष्ण बेनीवाल ने भी अनुभव प्रस्तुत किए। इस कार्यक्रम की पूरी कार्रवाई पाठकों के लिए प्रकाशित है। सं.

मुझे अपना परिचय देने ज्यादा नहीं आते। लेकिन जब माईक हाथ में होता है तो जो मन में आता है तो बोल देती हूं।

कालेज के दिनों में सोचते थे कि कैसे एंडी लोग होते हैं जो माईक पर बोलते हैं। लेकिन अब माइक पर बोलते हैं तो उसकी जिम्मेवारी भी समझ में आती है कि लोग आपको सुन रहे हैं। इसलिए ईमानदारी से बोलें, जो आपको सच लग रहा है वो बोलें।

मैं आपके साथ अपनी यात्रा साझा करूंगी। मैं महम खेड़ी में पैदा हुई। मेरे पापा महम कालेज में लैक्चरार थे। एक बार पापा जब कालेज से घर आए तो मैं गली में खड़ी गालियां बक रही थी। तो मेरे पापा ने सोचा कि अब गांव में रहना उचित नहीं। और हम महम शिफ्ट हो गए।

मेरे परिवार में कुश्ती करने वाले लोग थे। मेरे पापा को था कि छोरी नै कुश्ती, बाक्सिंग करांवागे। उन दिनों कुश्ती का घणा था बाक्सिंग नहीं।

मैं घणी ठाडी थी नहीं कमजोर सी थी। हमनै भिवानी शिफ्ट किया तो म्हारा घर भीम कालेज के पास ही था। औरों के पापा बच्चों को स्कूल में छोड़ कै आते, लेकिन मेरे पापा मुझे स्टेडियम में छोड़ कै आते। बोलते दौड़ लगाओ यहां पे, मेरी क्लास है। दस चक्कर ला के पाणी पीणा है। मैं एक दो चक्कर ला कै सिर पै पाणी-पुणी गैर कै कहती कि ला लिए चक्कर। इससे स्कूल का पत्ता कटग्या। स्कूल नहीं जाएगी, इस स्टेडियम में से खेल चुण ले कोई।

मेरे को ज्यादा खेल समझ नहीं आया। फुटबाल खेला, बालीवाल खेला, जिमनास्टिक किया पर कुछ बात जमी सी नहीं।

एक दिन घर में पापा के दोस्त आ रहे थे, वो घर में चैस लिया आए। यो कै है भाई। सांप सीढ़ी है, लूढो है। चैस की तो सुणी नहीं। फिर उन्होंने कहा कि ये खेल है। इसमें टूर्नामेंट भी होती हैं, स्टेट लेवल की, नेशनल लेवल की और इंटर नेशनल लेवल की। और इसमें नौकरी-नुकरी भी मिल जाती है। मैने पकड़ लिया। यो बढ़िया खेल है, सौड़ में बैठे बैठे खेले जाओ। कितियां आण-जाण की जरूरत नहीं। भाजण की जरूरत नहीं। वो जम गया। मैं सात साल की थी जब चैस सीखा।

जिले में न्यूएं चैम्पियन बणगी कि कोई सात साल का खेलणियां थाए नीं। अंडर सेवन चैम्पियन बणगी।

लड़कियों में तो थी ही नहीं, मैं लड़कों में खेला करती। अंडर सेवन से लेकर हमेशा लड़कों में ही खेला। कभी सेंकड भी नहीं आई। हमेशा नं. वन थी। बहुत बढ़िया कम्पीटिशन मिला। सौ से ज्यादा टूर्नामेंट खेली।

टूर्नामेंट दूर दूर होते। बंगलौर, गोवा। इससे घर बाहर निकलने का यात्रा का मौका मिला। एक नया सिलसिला शुरू हो गया। एक न्यारी सी छूट मिलगी, जो खिलाड़ियों को मिलती है। कोई कुछ कहता कि तेरी छोरी तो सारी हाण बाहरे रवै, या न्यूं कपड़े पहरै, तो एक जबाब मिलग्या अक वो खेल्या करै। ये अच्छी बात हुई कि समाज के प्रश्न जैसे तुम्हारी लड़की के कितने नं. आए, क्या कर रही है, कहां जा रही है, ब्याह की हो रही है। इसके लिए मैं खेल और अपने मम्मी-पापा की धन्यवादी हूं।

खेल ने मुझे बाहर निकाला। वहां से फिर घूमने-फिरने का सिलसिला शुरु हो गया। मैं अकेली घूमने लगी। ये तो मेरी कहाणी रही। मैं खेली।

यात्रा तो हमेशा ही करती रही। खिलाड़ी है, सारा भारत घूम रही है, कभी मद्रास में, कभी बंगलोर, बम्बई, कभी गोवा में होते थे।

लेकिन ये यात्रा का एक मकसद होता था, वो भी एक काम सा ही था।

हमारे समाज में छोरियों का बिना काम हांडणा वैसे भी अच्छा नहीं माना जाता। छौरे तो कहदें हैं कि मैं हांड कै आऊं। छोरी हांडण की कहदें तो सोच्या जावै कि किमें बात होगी। बिना काम के छोरी नी जाया करदी।

लेकिन मुझे बिना ऐसे घूमना अच्छा लगता था। मेरे पापा जब गोहाना कालेज में पढ़ाते थे तो मैं उनका स्कूटर उठा कर गोहाना की गलियों में घूमती रहती। बेमतलब, इस काम बहुत ही आंनद आता।

मैंने अपना बैग पैक किया। पूना अहमदाबाद बस में बैठ ली। रात का सफर था। वहां से जोधपुर आ गई। मैं पहली बार ऐसी यात्रा कर रही थी जिसका कोई मकसद नहीं था। सोचा था कि 500 से 800 तक का होटल मिल जाएगा। जैसलमेर में बहुत सी लड़कियां मिलीं बैक-पैकर्स कोई जापान से, आस्ट्रिया से, जर्मनी से। उनका कोई मकसद भी नहीं था और घणी अमीर भी नहीं थी। हम तो सोचते हैं कि घूमना तो एक लक्जरी माना जाता है, सोचते हैं कि मंहगा होगा घूमना तो। अपने यहां घूमने की संस्कृति नहीं है। मैने कोई

लड़की यूरोप में नहीं देखी कोई लड़के भी इस तरह नहीं देखे।

मैं उनसे मिली तो मुझे पता चला कि घूमना मंहगा नहीं होता। मैं ब्राजील की हिप्पी से मिली। ये कोई अमीर नहीं थे, कोई रिपेस्निस्ट कोई टीचर, कोई डाक्टर, कोई कुछ भी नहीं। इससे मुझे विश्वास हो गया कि घूमना मंहगा नहीं है। इस ब्राजील की हिप्पी ने सौ रूपए में कमरा ले रखा था। मुझे पता चला कि सौ रूपए में भी कमरा मिलता है। ये तो भाषा भी नहीं जानते, तब भी सस्ते में रहते हैं।

जर्मनी की एक लड़की थी मार्लूस। छ फुट लम्बी और बहुत ही निडर। रेगिस्तान उसको बहुत पसंद था, वो ऊंट वालों के साथ रेगिस्तान में निकल जाती। मैंने उससे पूछा कि तेरे के डर नहीं लगता तो उसने बहुत ही दिलचस्प बात बताई। उसकी मां ने उसे एक सलाह देकर भेजा था, जैसे मांए सलाह देती हैं। कि बेटा तू इंडिया जाणए लागरी है। अगर रेप हो जाए ना तो ये सावधानियां हैं। प्रेग्नेंसी से बचाव के लिए ये दवाएं हैं। मैं बड़ी हैरान कि ये कैसी सलाह है म्हारी मां को जरा सी छेड़खानी का भी शक हो तो घर से ही बाहर ना निकलण दे। यदि ड्राइविंग करते हुए दुर्घटना हो जाए तो क्या हम ड्राईविंग छोड़ देते हैं। रेप एक दुर्घटना है। ये दुर्भाग्यपूर्ण है, लेकिन है तो एक्सीडेंट ही। दुर्घटना के डर से हम बाहर निकलना तो बंद नहीं करते। ऐसा करने से तो और असुरक्षित हो जायेंगी। बस अड्डे पर बीस लड़कियां हों तो अलग विश्वास है और यदि एक लड़की हो तो और डर हो जायेगा। चाहे कितने ही अन्य इंतजाम कर लें कैमरे आदि लगाकर, लेकिन सुरक्षा तो हमें खुद ही करनी है। दुनिया सुरक्षित है बाहर निकलेंगे तो घर बैठकर तो उसे बिगाड़ ही रहे हैं।

बेमतलब घूमने का चस्का लग गया था। जब मैं पूना में थी और नौकरी कर रही थी। नौकरी की रूटिन ले नीरसता आने लगी। मेरा एक ब्वाय फ्रेंड था, उससे भी परेशान हो गई कि घर बसाने की बात नहीं करता। नौकरी अच्छी थी, हम खेल के लिए खिलाड़ियों को तैयार करते थे। लेकिन मुझे मजा नहीं आ रहा था।

फिर वो 'जिंदगी मिलेगी ना दोबारा' देख ली और वहां निकलने का मन किया। मैने नौकरी से इस्तीफा दे दिया। उन्होंने स्वीकार नहीं किया, लेकिन मुझे एक महीने की छुट्टी दे दी।

जो मैं खोजने निकली थी कि मेरी खुशी क्या है। मैं जैसलमेर से कुलधरा साईकिल से जा रही थी। मेरे साथ दो लड़कियां थी।

उनकी बाईक पेंचर हो गया। मैं जाने लग रही थी। उस समय खुश थी। वहां कुछ ऐसा खास नहीं था, लेकिन मैं खुश थी। वो खुशी मेरी थी। अपनी खुशी खुद ही ढूंढनी पड़ती है। जर्मन लड़की ने वाक्य बताया था वो आपको बताती हूं। 'मेरा दिल नाच रहा है।' मैंने उस समय महसूस किया कि मुझे तो यही करना है। मुझे इसमें खुशी मिलती है। सबको अलग अलग कार्यों में खुशी मिलती है। अपनी खुशी को ढूंढना महत्वपूर्ण है

वहां से मैने हिंदी भाषा में व्यवहार करने का निश्चय किया। वहां से मैने एक बात सीखी कि सभी अपनी अपनी भाषा में बात करते थे, ब्लाग भी अपनी भाषा में लिखते, वीडियो भी अपनी भाषा में बनाते। लेकिन मैं डरी-डरी सी रहती। अंग्रेजी से हमेशा डर सा ही लगता है। गलती होने का डर हमेशा बना रहता है। मैने जब इनको देखा कि ये सभी अपनी अपनी भाषा में लिख रहे हैं तो मैं अपनी भाषा में क्यों नहीं लिख सकती। मेरी हिंदी कोई बहुत अच्छी नहीं है। लेकिन हरियाणवी में बिल्कुल डर नहीं लगता। अपनी भाषा अपनी संस्कृति ही मेरी शक्ति है। जैसलमेर, जोधपुर, अजमेर, बूंदी सब घूमा, और एक महीना खत्म हो गया।

मैं वापस गई और हमने शादी कर ली। आज भी अकेली यात्रा करती हूं। इंग्लैंड चले गए। सोचा इंग्लैंड घूमेंगे, यूरोप घूमेंगे। लेकिन वहां महंगाई बहुत थी, वहां एक साल तक मेहनत की और कुछ पैसे जमा किए, जिसे मैंने इस किताब में लिखा है। 'आजादी मेरा ब्रांड' किताब मेरा अनुभव है कि मैं कहां कहां घूमी और कैसे कैसे। इसी पर ये आधारित है।

मैं दस शहरों में गई। लंदन से शुरु किया, मैं पेरिस, ब्रस्सल्स, एम्स्टर्डम, बर्लिन, प्राग, ब्रातिस्लावा, बुडापेस्ट, इंसब्रुक, बर्न और वहां से वापस।

इस यात्रा को हिंदी में लिखना आसान भी था। दूसरा ये भी था कि मेरी बुआ भी पढ़े। वे छोरी भी पढ़ें जिनको इंग्लिश की किताबों से अभी तक वास्ता पड़ा नहीं, जिनके पास ब्लाग तक पहुंच नहीं है। मेरी बुआ, मौसी को बेरा ना पाट्या कि मैं कैसे घूमी तो मुझे कुछ मजा नहीं आना था।

रेखांकित करने योग्य है कि मैने ये यात्रा एक लाख से कम रूपयों में की। यूरोप का हव्वा है कि वो बहुत ही महंगा है। यात्रा में बहुत ही ज्यादा खर्च होता है इस मिथ को तोड़ने का भी इसके पीछे विचार रहा। मध्यवर्गीय परिवार भी घूमने की सोच सकता है।

लोग कहते हैं कि मेरे मां-बाप, मेरा पति आजादी नहीं देता। आजादी लेने देने की चीज नहीं है। यदि वो आजादी दे सकते हैं तो वापस भी ले सकते हैं। आजादी खुद अर्जित करनी पड़ती है, इसके लिए बहुत ही मेहनत करनी पड़ती है। इसका फल बहुत ही मीठा होता है। छोटी छोटी बातों में आजादी।

आजादी बड़ी अनोखी-सी चिड़िया है, यह है तो आपकी, लेकिन समय-समय पर इसको दाना डालना होता है। अगर आपने दाना उधार लिया तो चिड़िया भी उधार की हो जाती है। आत्मनिर्भरता के दाने पर पलती है यह, और इसे किसी महंगे या ख़ास दाने की ज़रूरत भी नहीं होती। बस अपना हो, अपने ख़ुद के पसीने से कमाया हुआ कैसा भी दाना। उसी में मस्त रहती है।

जैसे हम कहते हैं कि लड़कियों को आजादी नहीं देता कोई। उनको कोई आजादी दे नहीं सकता। जो देगा, वो वापस भी ले लेगा। लड़कियों को आजादी कमानी पड़ेगी। उसमें मेहनत लगती है। लड़के बहुत मेहनत करते हैं, क्योंकि ब्याह नहीं होता बिना मेहनत करे। नौकरी इसलिए लगते हैं कि ब्याह हो जाएगा।

लड़कियों को ये निर्णय लेना पड़ेगा कि बिना नौकरी के शादी नहीं करेंगें। पहले बाप की गुलामी करी, अच्छा बाप मिलना संयोग की बात है। है वो गुलामी चाहे राजा की कर लो। फिर पति पर निर्भर हो गए, फिर बेटे पर। हमेशा दूसरों की तरफ ताकना।

मैं इससे पहले बात सुनाती हूं। मान लो गांव में किसी के यहां शादी हो और टेंट लगाने की जगह चाहिए, कि मेहमान जीमण आयेंगे। जहां टेंट लगाणा हो वहां कुरड़ी हो। कुरड़ी ठाण में तो समय लग जायेगा, इसका अनुमान भी नहीं कि कितनी गहरी हो। इसलिए इसको जे सी बी मशीन लगाकर बराबर कर दो। पहले दरी बिछा देंगे, फिर बढ़िया कारपेट बिछा देंगे, किसी को पता नहीं चलेगा, बदबू रोकने के लिए कुछ छिड़क देंगे। आयोजन शुरु हो गया और लोग खाने लगे।

कोई आकर कहने लगा कि यहां तो बदबू आ रही है। सभी उसको लताड़ने लगे कि बदबू नहीं है। यदि है तो उसकी तरफ देखकर मिठाई खाओ। नकारात्मक सोच वाला घोषित कर देंगे। इस कुरड़ी का, बदबू को ढकने का नुक्सान यही है कि उस पर रखी हुई मिठाई भी सड़ने लगती हैं। जो आदमी कुरड़ी और बदबू की ओर संकेत कर रहा है वह देश द्रोही नहीं हो जाता।

मेरी बुआ है गुड्डी बुआ है। वो कभी हरियाणा से बाहर नहीं गई। वो सारा दिन आलोचना करती है। वह कहती है कि पहले तो सरकारी स्कूल ही ठीक होते थे। इन प्राईवेटां में तो पढ़ाई ना रही, निरे सिंगरण सिंगरण के होगे। ईखां की तो परची भी नहीं आ ली है। लामणी हो ली, इब मींह बरस जै गा तो कित धरांगे। या बाहर बाहर हांडै है घर तो कुछ करता भी नहीं। या भी नेता बणरया है अपणा। क्या वो हरियाणा की बदनामी कर रही है। वो तो दिक्कतों को दूर करना चाहती है।

मैं जर्मन संग्रहालय से संबंधित एक किस्सा पढूंगी, जो मुझे बहुत पसंद है और आज के दिन वो प्रासंगिक भी है।

'अलेक्सेंडर प्लाट्स पर खूब भीड़ है और हर तरफ लोग फोटो खिंचवाते दिख रहे हैं। फ्री वाई-फाई भी है। यहां थोड़ी देर आराम किया जा सकता है। कुछ ठेले वाले खाने का सामान बेच रहे हैं। हॉट-डॉग इनका नेशनल डिश लगता है। तभी अल्बर्ट के घर में भी इतने सारे पैकेट्स रखे हैं और यहां भी जगह-जगह पर यही बिक रहा है। मैं अभी तक मीट खाने के लिए नहीं ललचाती हूं। खुशबू तो

बेहद लुभावनी है, लेकिन में अपनी ब्रेड और चीज ही खाती हूं।

फिर बढ़ती हूं स्प्री की तरफ। आज किसी म्यूजियम में जाने की इच्छा नहीं होती। बाहर ही इतना कुछ देखने को है कि कहीं अंदर घुसने का मन नहीं करता। यह शहर बड़ा तो है और भीड़ वाला भी, लेकिन यहां गुम होना आसान है। गुम होने से मेरा मतलब है कि भीड़ में आप किसी को नहीं दिखेंगे और शहर भी देख लेंगे। यह आपको बिल्कुल छोटा-सा महसूस कराता है। मैं यों ही चलते-चलते एक ओपन म्यूजियम पहुंच जाती हूं। कोई टिकट नहीं है और भीड़ भी बहुत ज्यादा नहीं है। चलो, अब आ गई हूं तो यह देख लिया जाए।

यह था 'टोपोग्राफी ऑफ टेरर'-यहां खुले बीहड़-से मैदान में लाईन से फोटो और पोस्टर लगे हैं। यह म्यूजियम देखने का कम और पढ़ने का ज्यादा है। मैं तीन घंटे तब सब पढ़ती रही। पहली बार में मुझे अपने ही पढ़े पर यकीन नहीं आता। फिर दुबारा पढ़ती हूं। यह जर्मनी ने अपने बारे में लिखा है? मैं जर्मनी में ही हूं न? और यह म्यूजियम इन्हीं की जमीन पर बना है? नहीं, नहीं। ये अपनी ही बुराई कैसे कर सकते हैं। सिर्फ बुराई ही नहीं, खुद को गालियां दे रहे हैं।

जर्मनों ने कितने यहूदियों को मारा? कितने डेथ कैंप लगाए? उन्होंने बच्चे-बूढ़े, यहां तक कि पूरे गांव-के-गांव खत्म कर दिए। यहूदियों को देश से बाहर निकाल दिया और दूसरे देशों में घुस कर उन्हें मारा। यह सब बातें तो यहां दर्ज हैं ही, अपने ही देश के नाजी सैनिकों की फोटो लगाई है और उन्हें कसाइयों की उपाधि दी है। कैसे-कैसे , किस-किस ने यहूदियों की हत्याओं को अंजाम दिया-यहां सबका कच्चा चिट्ठा है। सिर्फ हिटलर को हत्यारा नहीं बताया गया है, उसके सैनिक और पूरा देश कैसे उन हत्याओं में शामिल हो गया, यह सब लिखा है यहां और कहीं लुका-छुपा के नहीं, पूरे उजाले में सबके सामने। बाकी सब म्यूजियम की एंट्री फीस है, इसकी तो वह भी नहीं है। सब आओ, सब जानो, सब सीखो।'

संवाद सत्र

● इंग्लैंड में आपने कैसा महसूस किया कि आपने आरक्षण आंदोलन के दौरान हुई आगजनी व हिंसा पर वहां से प्रतिक्रिया की।

आपने पूछा कि कैसा लगा। मां से बात हुई तो उन्होंने बताया कि रास्ते रुक गए हैं। गांव आने का रास्ता भी नहीं है। फिर पापा ने भी कहा कि घणा नुक्सान हो गया। महम का भी नुक्सान हो गया। मैं अपनी जड़ों से बहुत गहरे से जुड़ी हुई हूं। अपने शहर से कल्चर से। कल्चर का अर्थ काफी विकृत हो गया कि हम तो घूंघट करवायेंगे। कल्चर का मतलब हमारे गीत, खान-पान, सामूहिक तौर पर विचार-विमर्श करना ये हमारी कल्चर है। मेरे मन में था कि कुछ पैसा कमा कर रोहतक में स्कूल खोलना है। रोहतक का इतना विकास हो रहा था। वहां इतने अच्छे संस्थान हैं। इतना अच्छा काम कर रहे हैं। उससे थोड़े दिन पहले ही गई थी। मुझे बहुत अच्छा लगा। मेरे मन मे था कि घरेलू महिलाओं के लिए स्कूल खोलेंगे। मेरी प्रेरणा तो मेरी बुआएं हैं। उनकी बातें जितनी सच्ची, दो टूक व सटीक हैं, कहीं की भी नहीं है। उनकी बेटियों की शादियां जल्दी होगी अब उनके लिए स्कूल खोलने की इच्छा थी। उस दिन पापा ने कही कि ये तो सारा खत्म हो गया। अब तू रहण दे अब ऊधर देख। इसने मुझे हिला दिया। मैं उस समय स्कूल में बैठी थी। वो वीडियो दो हिस्सों में हैं। पहले हिस्से में क्लास रूम में बैठी हूं। मैं भावुक सी हो गई, आंसू आ गए। स्टुडेंट आ गए। फिर मैं उठकर बाहर आ गई। उस समय तो सिर्फ इतना ही मकसद था कि तुम फूंको मतना।

● आज हरियाणा इज्जत के लिए हत्याओं के लिए बदनाम है। आप इसे कैसे देखते हो। लड़कियों के लिए आप क्या कहेंगी। हरियाणा के समाज के लिए मैसेज हो सकता है।

लड़कियों को इज्जत के लिए मार दिया जाता है वो दिक्कत सिर्फ लड़कियों की नहीं है उनके परिवार वालों की नहीं, बल्कि काफी व्यापक है। जात-पात रहेगी तो कोई छोटी जात होगी, कोई बड़ी। मेरे ख्याल में ये जात-पात के कारण है। कोई समाधान मेरे पास तो है नहीं, लेकिन समस्या को पहचानना पड़ेगा। किसी को छोटी जात का कहणा छोड़ना पड़ेगा। इस पर बात शुरु हो जानी चाहिए। लोग बहुत गलत सोचते हैं कि मार के वो इज्जत वाले हो जायेंगे।

● आपने जो लिखा बहुत ही बोल्ड लिखा है। लिखते वक्त आपको लगा कि इसको न लिखा जाए। सेंसर कर दिया जाए।

मैंने तो कुछ सेंसर नहीं किया। मैंने तो अपने जीवन को सेंसर नहीं किया। कल्चर को नए तरीके से परिभाषित करना पड़ेगा। कल्चर के नाम रूढ़ियों, कुप्रथाओं, महिला पर हिंसा, गंदे गानों को परोसना सही नहीं है। कल्चर कपड़ों में नहीं है, वो अलग चीज है। कल्चर और आजादी को साथ जोड़ना होगा वही हमारी ताकत है।

● आपको क्या लगता है कि यदि आपकी जगह अगर दलित महिला होती तो उसे समाज में इतनी स्वीकार्यता मिलती।

मुश्किल है। दलित महिला के अहसास को शायद मैं नहीं समझ पाऊंगी। ये तो ऐसी ही बात हो गई कि एक आदमी एक औरत केबारे में लिखे। मैं दलित महिला का दर्द पूरी तरह नहीं समझ पाऊंगी। उसे अपनी पीड़ा अनुभव खुद ही लिखना पड़ेगा। चाहे मैं कितना उसकी समस्याओं के बारे में कह लूं, लेकिन मैं नहीं समझ पाऊंगी। मेरा रोहतक की एक गली मे चलने को आदमी नहीं समझ पाएगा। ऐसे ही मैं दलित महिला को नहीं समझ पाऊंगी। जाति तो कंलक ही है समाज पर वो तो खत्म हो जाए तो अच्छा है।

● हमारे देश में दिन प्रतिदिन पुरुषों की छवि खराब हो रही है। यहां भी बेटियों की बात हो रही है। कुछ पुरुषों की करतूतों का ठीकरा समस्त पुरुष जाति पर फोड़ दिया जाता है।

ये सवाल बहुत पूछा जाता है कि हमारी पुरुषों की छवि बहुत खराब हो रही है। और यही जाति पर बोलते हैं कि कुछ लोगों ने किया है हम बदनाम हो गए। पूरा देश भी यही बोलता है कि क्यों असहिष्णु बोल दिया।

● सीधी सी बात है जी लंदन चले गए अमेरिका गए। वहां इतनी साफ सफाई सड़कों की चाहे जीभ से चाट लो। आप हरियाणा में आए फिर वही कुरड़ी, गोसे.. कुछ दिक्कत तो होती होगी।

जो अपनी संस्कृति से जुड़ा हो उसको नहीं होती। मैने तो निरा गोबर बटोळा (इकट्ठा करना) है। लड़कियां गोबर इकट्ठा करती हैं जैसे पैर लगा देती हैं कि ये म्हारा चौथ हो गया। फिर छोटी छोटी बैठकर रेल सी बणाई और उसमें कंकर छुपा कर उसको काट देती। अनुमान लगाना होता था कि किस ढेरी में कंकर है। जिसमें निकलता सारा गोबर उसका हो जाता। जिसनै वो कर रखा हो उसको बांस (बदबू) नहीं आती। उसको भुण्डा (भद्दा) नहीं लगता। अगर ये सवाल था कि मुझे कैसा लगता है तो मुझे बुरा नहीं लगता।

● आपने अपने जाट आरक्षण आंदोलन के दौरान विडियो में पाकिस्तान में आग ना लगाई बोला इसके बारे में...

मेरे बहुत से पाकिस्तानी दोस्तों ने देखा, मेरे तो बहुत से पाकिस्तानी दोस्त हैं इंगलैंड में। और उन्होंने कहा कि बहुत सही बोला। पाकिस्तान को तथाकथित दुश्मन माना जाता है। वो जुमला सा था। मेरे कहने का यह भाव नहीं था कि तुम पाकिस्तान को जला दो। यही उभारना था कि तुमने अपना ही घर जलाया है। यदि मैं किसी दूसरे देश का नाम लेती तो शायद उसका घणा सा प्रभाव नहीं होता।

● औरत आजाद नहीं है और आदमी आजाद है। इसका कारण उसका जमीन में हिस्सा ना होना है। आदमी के पास जमीन है औऱत के पास नहीं।

लड़की को तीळ (कपड़े), टूम की जरूरत नहीं है उसको अपनी संपति में हक की जरूरत है।

● जमीन लड़की को मिलेगी या पति को। अभी तो पति सरपंच हैं। उसके नाम जमीन होगी लेकिन रहेगी तो उसके पति...

लड़की को मिलनी चाहिए। नाम होने से भी गुणात्मक परिवर्तन आ जाता है। यदि पति पत्नी के बीच में झगड़ा हो जाए तो जमीन तो उसी के नाम है ना। धीरे धीरे आगे बढ़ रहे हैं। समाज में परिवर्तन हो रहा है।

● हरियाणा में माहौल खराब है, समाज में फूट पड़ रही है। यहां आप कुछ ज्यादा प्रभावित कर सकते हैं। क्या आप हरियाणा में कुछ सामाजिक काम करने की सोचते हैं।

अभी तो मैं आर्थिक स्वतंत्रता के लिए काम कर रही हूं। लोग बहुत पूछ रहे हैं कि मुझे किस पार्टी की टिकट मिल गई। मुझे पहले अपने पैरों पर खड़ा होना है। लंदन में तो मैं अच्छी-अच्छी शिक्षण संस्थाओं में पढ़ाती हूं। यहां तो मुझे आकर जेबीटी भी ना लगाए। सामाजिक कार्य भी जरूर करूंगी, लेकिन अभी कुछ विशेष सोचा नहीं।

● मैंने आपकी किताब पढ़ी। पढ़कर मैने लड़की को दे दी। पढ़कर उसने दो सवाल करे कि या तो अनुराधा झूठ बोले है उसके साथ कोई घटना ना घटी हो, मां-बाप ने डांटा ना हो, या बटेऊ (पति) के साथ रौळा (झगड़ा) ना हुआ हो। या अनुराधा है लाखां में एक किस्मत वाली छोरी है। इसके बारे में

दूसरा जबाब। दिक्कतें तो होती हैं, यात्रा में लेकिन ऐसी नहीं कि बहुत बड़ी हों। ट्रेन छूटगी, बारिस आ गई। इस तरह की तो होती हैं। हां, कह सकते हो कि मैं किस्मत वाली हूं।

● आपके अनुसार देश-द्रोह क्या है?

मेरे ख्याल में देश-द्रोह है कुरड़ी पर दरी ढकना।

● बालीवुड एक्टर धर्मेन्द्र ने कहा मैं जाट आरक्षण के खिलाफ हूं। क्या जाट जाति को आरक्षण की मांग करनी चाहिए। आप अपना पक्ष कैसे देखते हो।

मेरे को कभी सिर्फ जाट होने के नाते कोई भर्त्सना नहीं मिली। केवल जाट होने के नाते मुझे कभी अपमानित या नीचा नहीं देखना पड़ा। मुझे तो कभी जरूरत महसूस नहीं हुई। हो सकता है किसी को इसकी जरूरत महसूस होती हो। रही बात गरीब की फिर गरीब तो हर जात में हैं। सदभावना मंच पर भी मैने कहा था कि आरक्षण के बजाए सबको ही रोजगार मिलना चाहिए।

● पिछले दस बारह साल से हरियाणा, पंजाब, पश्चिमी उत्तर प्रदेश में उग्रता की प्रवृति बढ़ी है। गीतों में हथियारों का महिमामंडन हो रहा है। ये पिछले 15 साल से चल रहा है। आरक्षण व स्त्री-पुरुष के मामले में भी उग्रता बढ़ी है। आप इसे कैसे देखते हो।

ये आपका शानदार आब्जर्वेशन है।

● आप जिक्र करते हो कि जड़ों से जुड़े हुए हो। आप बार बार सांघी गांव का जिक्र करते हो।

'क्या तुम्हें मैं अकेली चलती नहीं सुहाती? मेरे महान देश के महान नारी पूजको, जवाब दो। मेरी महान संस्कृति के रखवालों जवाब दो! क्यों इतना मुश्किल है एक लड़की का अकेले घर से निकलकर चल पाना? जो समाज एक लड़की को अकेले सड़क पर चलना बर्दाश्त नहीं कर सकता, वह समाज सड़ चुका है। वह कल्चर जो एक अकेली लड़की को सुरक्षित महसूस नहीं करा सकती, वह गोबर कल्चर है। उस पर तुम कितने ही सोने-चाँदी के वर्क चढ़ाओ, उसकी बास नहीं रोक पाओगे, बल्कि और धंसोगे।'

आजादी मेरा ब्रांड पुस्तक से

सांघी में ही रहते हैं हम। सांघी के खेतों में घर बना रखा है हमने।

● अनुराधा जी आप किसी रात को सड़क पर थी। कुछ लोग थे वो भी गायब हो गए। आपको बिल्कुल डर नहीं लगा। मैंने हरियाणा घूमा। रोहतक के पास के गांव में एक लड़की होने के नाते मुझे पहली बार बहुत डर लगा था। हरियाणा में बेकाम और बेटेम घूमने की सोचें तो गुंजाइश बन सकती है क्या।

मेरी किताब में बार बार आता है कि रोहतक में भी ये किया जा सकता है। क्या? वो चीज की तलाश है। किताब का सार ही है कि जहां ना भाषा का ज्ञान, ना कानून का ज्ञान, लोगां नै भी नहीं जाणती वहां मैं निडर घूम रही हूं। अर अपणे देश में जहां मैं भाषा जाणूं, लोगां नै जाणूं वहां नहीं घूम पा रही। वो क्या चीज है। वो चीज तो नहीं पाई मुझको।

असल में यहां के संदर्भ से हटकर बात है, लेकिन मैं कहना चाहती हूं कि विपरीत सेक्स में संवाद की जरूरत है। जो लड़का लड़की को छेड़ रहा है। उनको यही नहीं पता कि क्या कर रहे हैं। असल में उसकी प्रेरणा व सामाजीकरण में कमी है। वह फिल्मों व घटिया कहानियों से सीखता है, जिसमें बार बार दर्शाया जाता है कि लड़का बार बार लड़की को छेड़ता है और अन्त में वह पट जाती है। गर्ल फ्रेंड या ब्वाय फ्रेंड बनाने का जी तो सबका करता है, और यदि जी नहीं करता तो कुछ गड़बड़ है। लेकिन वे एक दूसरे की भावनाओं को नहीं समझते, कैसे बात करें, ये नहीं पता। विपरीत सेक्स के प्रति संवेदनशीलता विकसित करने की जरूरत है। लड़कियां व लड़के सीखें कि कैसे बात करें। संवाद हीनता दूर करने की जरूरत है। शिक्षकों को भी चाहिए कि लड़के-लड़कियों को बात करते देख भड़कें नहीं, उनसे नैतिक पुलिस का व्यवहार न करके उनको परस्पर समझने के मौके हों।

अनुराधा बेनीवाल की मां से पूछा कि 'जब आपकी बेटी विश्व में घूमती है, आपको कैसा लगता है।' इसके जबाब में उन्होंने कहा कि 'मुझे गर्व महसूस हो रहा है। अच्छा लग रहा है कि मेरी बेटी आकाश में उड़ रही है।'

अनुराधा बेनीवाल की कविताएं

नमस्ते

भतेरा ढो लिया तेरी कल्चर का बोझ,
इब चलाइए ट्रैक्टर रोज।

आधी धरती आधा घर,
पूरी पढ़ाई, बणु अफसर।

देखणी मैंने दुनिया सारी,
छोड़ दी या सरम की बीमारी।

ब्याह की भी मर्जी,
तलाक की भी।

मेरी जिंदगी मेरी जिम्मेवारी,
करूंगी मैं सारी तैयारी।

राज़ी रहण का मैंने हक सै,
जियूंगी अपणी शर्तां पै।

ना जोड़ियों नाक मेरे तै,
इज़्जत तेरी तेरे कर्मां तै।

छोरी हूं मैं इज़्जत का भरोटा नहीं,
अक बांध-बांध जेवड़ी सबने धरदी।

जीण भेजी थी राम ने,
गाम की इज़्जत ढोण नहीं।

अपणी-अपणी आप ढोओ,
मैंने इब नमस्ते कर दी।

रासा

कंठी ना चाहंदी, खेत चहिये
तीळ ना चाहंदी, रेत चहिये
घर भी मैं आपे बणा ल्यूंगी
माँ-बाबू तेरा हेज चहिये।
दूस्सर नहीं, मेरी किताब जोड़ ले
कॉलेज यूनिवर्सिटी में पढ़े का
सारा हिसाब जोड़ ले।
एक-एक किस्त मैं आप पुगा दूंगी,
तू बोझ मन्ने एकबे कहणा छोड़ दे।

मेरे पैदा होए पे आह ना भरिये,
थाली स्टील की दोनुआं में एकसी बाजेगी।
फेर देखिये तू उड़ान मेरी
दुनिया सारी आकाश में ताकेगी।
पोचा नहीं मैंने एटलस पकड़ाइये
देश-दुनिया की बात बताइये।
बोलणा मेरे तांई इसा सिखाइये,
सही बात कहण में कदे ना घबराइये।

ब्याह करुँगी अपणी मर्जी तै
बाबू मेरे गेल हांगा ना करिये।
बात बणावें सौ पड़ोसी
बाबू तू मेरे गेल खड़ा रहिये।

अपणी इज्जत, अपणे कर्म तै
लत्यां म्हं हैं सूत के तागे।
ताग्यां ने गिणन आळे
बांदर की जात तै पाछे।

हांडू-फिरूंगी अपणी मर्जी तै
रोड जितनी कूंगरां की उतनी मेरी।
मेरे तांई रोकण की बजाए
दिये उन्नें शिक्षा थोड़ी।

इब डर कै घरां नहीं बैठूंगी,
इब तो माँ, दादी, बुआ, मौसी
के नाम की भी दुनिया मैं ए देखूंगी।
भतेरा हो लिया जी ने रासा

खत्म करो यो पितृसत्ता का तमासा।

मैंने देखी एक लड़की

आज मैंने एक लड़की देखी
नदी किनारे पगडंडी पे इठलाती
कान में ईयरफोन लगाए,
संगीत पे लहराती लड़की देखी
आज मैंने एक लड़की देखी।

मेरे पीछे चलने से बेख़बर
आगे से आते नौजवानों से ना-घबराती
मचलती इठलाती
मस्त हवा में जम्प लगाती लड़की देखी
आज मैंने एक लड़की देखी।

बीच-बीच में रुक जाती
बसंत के फूल निहारती
पेड़ों की डाल को छूती
घास पे लोट जाती लड़की देखी
आज मैंने एक लड़की देखी।

एक अकेली
मुस्कुराती, गुनगुनाती, झूमती, लहराती
आज मैंने एक लड़की देखी।

मो. +44 7806821934

हमारी कल्चर
व
समाज सारा ही सेक्सुअल

– कृष्ण बेनीवाल

अगर किसी लड़की-लड़के के साथ घटना घटती है, बलात्कार होता है तो समाज जिम्मेवार है। हमने ऐसे समाज को बनाया है, ऐसे समाज को चाहा है। आप जिस समाज के अंदर पल-बढ़-बन रहे हैं। आप उसको पसंद करते हैं अन्यथा वो कैसे टिकेगा। हमने अच्छा समाज कब चाहा है। जैसा ढर्रा चल रहा है उसको ही लीपा पोती करके ढकने में लगे हो न कभी साफ करने की हिम्मत की न साफ करना चाहा। मैं इस मामले से दुखी हूं, क्रोधित हूं।

(इस अवसर पर अनुराधा बेनीवाल के पिता श्री कृष्ण बेनीवाल ने अपने विचार रखे।)

आपसे कुछ बातें करनी हैं। हमारी कल्चर है समाज है वो सारा ही सेक्सुअल है। आप कहेंगे कि वो कैसे है। आप कहोगे कि हम तो बचाते हैं असल में हम बचाते नहीं हम दबाते हैं। हम डरते हैं सेक्स से। हमने सेक्स को हव्वा बना राख्या है। हमने लड़कियों को इस ढंग से पाला-पोसा होता है।

मैंने अपनी बेटी को जो कहा आप को बता देता हूं। मैंने एक टी वी सीरीयल देखा जिसमें एक लड़की को ब्लैकमेल किया जा रहा है। मैंने अपनी बेटी को कहा कि तेरे साथ किसी तरह की कोई घटना हो जाए मैं तेरे साथ हूं। मैं तेरा सपोर्ट करूंगा। मैं इस बात से डर गया कि मेरी बेटी को ब्लैकमेल कर लेगा तो इससे गंदी कोई बात नहीं होगी।

मैं गांव में पला हुआ, गांव से जुड़ा हुआ हूं। मुझे सिकुड़ती हुई लड़कियां अच्छी नहीं लगती। अपनी बात खड़ी हो कर कहो। लेकिन इसमें लड़कियों का कसूर नहीं है। 8वीं 9वीं में ही जब उसकी छाती उभार लेने लगती है तभी उसकी दादी, ताई, काकी, पड़ौसन कहने लगती हैं कि 'ऐ लत्ता ढक ले' उसको अपराध बोध करवा दिया जाता है। ऐसा मैने देखा है।

आज तक ये बात मैंने नहीं बताई थी। जब ये मेरी बेटी दस साल की थी तो मैंने एक औरत को इसे टोकते देखा। मैं सकपका गया। यदि आपको आपकी नाक, मुंह, आंख के बारे में कुछ कह दिया जाए महसूस करवा दिया जाए तो आप सिकुड़ोगे। वह अपराध बोध महसूस करता है।

ये जब आठवीं में थी। ये घर में पढ़ी। मैं सिलेबस की किताबें लाता था और घर पर ही परीक्षा ले लेता था। 55-60 साल के आदमी ने कहा 'भाई ये तो ब्याहण की होगी'। मैंने पूछा- 'कै देख्या तनै'। भाई साहब, उसने छाती देखी और कुछ नहीं देख्या। ये शर्म की बात है हमारे समाज के लिए। आपने ये पूछा नहीं कि ये कितनी इंटेलिजेंट है, क्या खाती है, क्या खेलती है। क्या उपलब्धि है। बस एक ही बात है 'ये स्याणी होगी, या ब्याहण की होगी'।

रही आरक्षण की बातें। हर मां-बाप जिसके दो बच्चे हैं उसने कहा कि इसको तो मैं बदमास बनाऊंगा, इसको अफसर बनाऊंगा। एक एस पी रिटायर हुआ उसके चार बेटे हैं। वो कह रहा है कि एक को बदमास बनाऊंगा, एक को अफसर।

एक लड़का दूध लेकर आता है, आठवीं में पढ़ता है। उसी से फीडबैक मिलती है। मैने पूछा कि अब तो आरक्षण मिल गया। अब राजी हो। कहता हैं जी राजी हूं जी।

नुक्सान तो बहुत हो गया भाई, दुकानें जल गई, बिल्डिंग जल गई। बोला जी वो तो सरकार की जळी हैं। जब हमारे बच्चे यह कहेंगे, रेल जळगी तो सरकार की जळगी, तो भारत माता की जय क्यूकर होगी भाई। जै स्कूल के बच्चे का डेस्क तोड़ दे और रोणा आवै तो उसको भारत माता कहते हैं। तीन रंग के कपड़े को ही भारत माता नहीं कहते, शेर के आगे खड़ी सुंदर युवती उसे भारत माता नहीं कहते। भारत माता आपका बच्चा है। स्कूल कालेज में पढ़ने वाला बच्चा है।

आरक्षण के दौरान मैं जुड़ा, मेरी बेटी के फेसबुक से। मैने टिप्पणियां पढ़ीं। मैं विचलित इस बात से हुआ कि एम बी बी एस के बच्चे, आई आई टी के बच्चे गर्व से कहते हैं 'मैं जाट हूं'।

भाई इंसान के सिवाय अगर कोई कुछ है वो उतना ही इंसान कम है। मैं यदि 50 प्रतिशत जाट हूं तो 50 प्रतिशत ही इंसान बचता हूं। यदि 50 प्रतिशत हिंदू या मुसलमान हूं तो 50 प्रतिशत ही इंसान रह जाता हूं। इंसान ऐसे ही थोड़े हो जाता है। इंसान उसको कहते हैं जिसमें प्रेम हो, करुणा हो, दया हो, सहानुभूति हो। हमारी शक्ल इंसानों से मिलती है हम इंसान थोड़े ही हैं।

आपको कुछ भी मिल जाए, आरक्षण तो क्या यदि आपको सारी धरती का राज भी मिल जाए यदि आपको जी दुखी करके मिला है तो आपका कभी विकास नहीं हो सकता, कभी भला नहीं हो सकता।

●

उसूल और जिंदगी में से एक चुनना पड़ा तो मैं उसूल चुनूंगा

16 मार्च 2016 को देस हरियाणा पत्रिका की ओर से 'युवा पीढ़ी और शहीद भगत सिंह की विचारधारा' विषय पर सेमीनार आयोजित किया, जिसमें शहीद भगत सिंह के भानजे व क्रांतिकारी इतिहास के विशेषज्ञ प्रो. जगमोहन ने भगत सिंह के विचारों को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में रखते हुए वर्तमान संदर्भ में उनकी प्रासंगिकता व युवा पीढ़ी के समक्ष चुनौतियों को रखा। सेमीनार की अध्यक्षता प्रो. अमरजीत सिंह (इतिहास विभाग कु वि) ने की। इसमें लगभग 160 छात्र-छात्राएं उपस्थित थे। सेमीनार में प्रो. जगमोहन के वक्तव्य का अंश यहां पाठकों के लिए प्रस्तुत कर रहे हैं। सं.

आज का मुख्य प्रश्न है कि हम विरासत से क्या सीखें। भगतसिंह ने अपनी विरासत से क्या सीखा था। भगतसिंह कोई अप्राकृतिक व्यक्ति नहीं थे। उन्होंने कहा भी था कि मेरे चाचा ने इतना काम कर दिया है वो इतनी बुलंदी तक पहुंचे हैं कि मैं क्या करूंगा निराशा न आ जाए। लेकिन जब वक्त पड़ा तो उन्होंने कैसे संभाला। उस पर बात करने की कोशिश करेंगे।

मेरा अजीब रिश्ता है मैं उनकी छोटी बहन बीबी कौर का बेटा हूं। मेरी माता जी ने एक प्रश्न मुझसे हमेशा करना। 'भई तुम भानजे हो उनके। मुझसे लोग पूछते हैं कि क्या घर में भगतसिंह के बारे में जानने वाला है'। तो रिश्ता जानने से बनना ये उन्होंने मुझे सिखाया। मैने उन्हें जानने की कोशिश की।

पहला प्रश्न जो मेरे मन में आया कि भगतसिंह को इतनी अहमियत क्यों दी जाती है। ये प्रश्न मैंने एक बहुत बड़े क्रांतिकारी नलिनी किशोर गुहा से पूछा। आपने कभी अनुशीलन समिति का नाम सुना हो। वो एक दफा मिरजापुर में भगतसिंह के बुत का उद्घाटन करने के लिए आए थे। यदि कुरबानी की बात है तो बंगाल में एक से एक हुए हैं। जतिन बाघा इतने गुरिल्ला फाईटर रहे हैं। उनको बाघा इसलिए कहा जाता था कि शेर हैं और अंग्रेज उनको पकड़ नहीं पाया। बात बहादुरी की है तो और बहुत से नाम हैं। उनके जबाव ने मुझे एक नई दृष्टि दी। उनका जबाब हमें समझने में मदद करेगा। उन्होंने कहा जब हमने अपना प्रयास शुरु किया तो हम निराशा में थे। कुछ हो नहीं रहा था। हमने स्वदेशी-स्वराज की बात की। लगता था कि अब तो सीधा टकराना पड़ेगा। एक किस्म की नफरत थी जो हमारी मूवमेंट करवा रही थी। जब भगतसिंह आए तो उनकी प्रेरणा शक्ति लोगों के प्रति प्रेम है। लोगों के प्रति स्नेह है।

ये प्रेरणा बड़ी कमाल से उनमें मिलेगी। उनमें कहीं नफरत-गाली का नाम भी नहीं है। पूरी भारतीय संस्कृति में जिसने सिंथेसाइज किया। हमारे सूफी संत प्रेम का सिंथेसाईज करने वाले हैं। कबीर ने कहा

भगतसिंह के बनने में बहुत सी चीजें हैं। पहला सवाल जो उसने किया जब वो 18 साल का था। उनका निबंध 'मैं नास्तिक क्यों हूं' पढ़ें। उसमें नास्तिकता की बात एक है, लेकिन उनके विचारों के विकास की आत्मकथा है वह। उसमें वो लिखते हैं जब हम 18 साल के थे काकोरी केस के बाद जब सारे साथी पकड़े गए तो दो नौजवान बचे। भगतसिंह 18 साल के और चंद्रशेखर आजाद 19 साल के। लोग हमारी हंसी भी उड़ाने लगे कि बड़े इंकलाबी बने फिरते थे अंग्रेजों ने एक झटके में ही पकड़ लिया। मुझे ये लगने लगा कि कहीं मेरा अपने और अपने साथियों के विचारों से विश्वास कम न हो जाए। उस वक्त मैं सहारा ढूंढ रहा था। दो चीजें सामने नजर आई।

एक था 18 साल का करतार सिंह सराभा। (जो सबसे छोटी उम्र के शहीद हैं जो अमेरिका होकर आए। उस वक्त जो नई टेक्नोलोजी थी। 1913 में हवाई जहाज की ट्रेनिंग लेने गए। 1903 में हवाई जहाज आया था) उन्होंने सराभा को देखा होगा। वे घर आए थे सरदार किशन सिंह से भी मिले। वे दूसरी तरह देख रहे हैं। करतार सराभा नई विद्या लेता है लेकिन वापस इसलिए आता है कि भारत को जब तक आजादी नहीं मिलती तब तक ज्ञान और विदेशों में की हमारी कमाई फलेगी नहीं। मैं 18 साल का हूं और करतार सिंह 18 साल में इतना कुछ कर आया। मेरे अंदर करतार सिंह सराभा है मैं उसको जगाऊंगा। ये बात मुझे अपनी नानी जी से मिली जब हमने उनसे पूछा कि आपको भगतसिंह की पहली याद क्या है। तो उन्होंने बताया कि भगतसिंह अपनी जेब से करतार सिंह सराभा की फोटो निकालकर दिखाता और कहता कि ये मेरा भाई, फिलासफर और गाईड है। साथ ही करतार सिंह सराभा की एक कविता भी गुनगुनाते थे कि

सेवा देश दी जिंदड़ी बड़ी ओखी
गल्लां करणी सुखलणियां नै
जिन्नां देस ते पैर पाया
बड़ी मुसीबतां झल्लियां नै

करतार सिंह सराभा से अपने को जोड़ते

मां ने कहा कि तुम तो अच्छे बच्चे हो तुम्हें पुलिस ने क्यों पकड़ा। तो उसने अपनी मां से कहा कि तुम्हें तो पता है कि मुझे रात को नींद नहीं आती, क्योंकि अपने लोगों की चिंता करता हूं और वो चिंता मुझे सोने नहीं देती। सरकार को भ्रम है कि वो मुझे ले जाकर सुला सकेंगे।

सुखदेव और भगतसिंह एक जोड़ी है मैं कहता हूं कि भगतसिंह भगतसिंह नहीं होता, यदि सुखदेव उनके साथ नहीं होते। सुखदेव उनसे प्रश्न करते हैं। भगतसिंह उसका उत्तर ढूंढते हैं और सुखदेव से साझा करते हैं। उनके संवाद के दो हिस्से हैं। एक वह है जब असेम्बली में बम फेंकने के लिए जाना था तो सुखदेव ने प्रश्न किया कि भगतसिंह तुमने योजना बनाई बहुत अच्छी है कि अब वक्त है कि कुछ मूल्यों पर जिंदगी लगा दी जाए। लेकिन तुम कैसे समझते हो कि दूसरा साथी इस काम को कर पाएगा।

हमारे सामने है कि बंगाल में भी नेताओं ने नौजवानों को जो काम दिया उन्होंने किया लेकिन मूवमेंट आगे नहीं बढ़ी। उन्होंने कह दिया कि मुझे लगता है कि तुम भी प्यार में फंस रहे हो। इसलिए तुम्हें जिंदगी से प्यार हो रहा है और तुम नहीं जा रहे। उसका जबाब असेम्बली में बम फेंकने जाने से पहले सुखदेव को लिखे पत्र में दिया। उन्होंने कहा कि प्यार के बारे में हमें आर्यसमाजी धारणा ने जकड़ रखा है। वे कहते हैं कि प्यार क्या किसी की कमजोरी है या मदद करता है।

मुंशी प्रेमचंद की कहानी सौजे वतन (जो सबसे पहले जब्त हुई थी) में तीन कहानियां हैं। एक कहानी मेजिनी की है। एक लड़की मेजिनी को प्यार करती है। लेकिन वह उसे अनदेखा करता है। असफल होने पर वो इंग्लैंड चला जाता है। वहां लड़की के बालों का गुच्छा और दस पाऊंड उसमें आशा जगाते हैं। वो वापस आता है और इंकलाब करता है सत्ता बदल जाती है। लेकिन वह लड़की गलियों में घूम रही है। वो फिर हार जाता है। फिर वो लड़की उसके कंधे पर हाथ रखती है। ये प्यार है जो सिखाता है कि हम जिंदगी को प्यार करना सीखें।

कि जिसने ढाई अक्षर प्रेम के नहीं सीखे उसने जिंदगीं में कुछ नहीं पाया। प्रेम जोड़ने वाली ताकत है और नफरत तोड़ने वाली। बड़ा खूबसूरत लगा मुझे भगतसिंह की जेल नोटबुक का पहला सफा। वो विजयोल्लास है जेल में हड़ताल का। हड़ताल क्यों की थी, इसलिए कि हमें पढ़ने लिखने की आजादी मिले। लोग हमें बच्चा और कम अक्ल का समझते हैं अक्ल तो तभी आएगी। उन्होंने पहला शेर लिखा

कुर्रे खाक है गर्दिश में तपिस से मेरी
मैं वो मजनूं हूं जो जिंदा में भी आजाद रहा।

कुर्रे खाक का मतलब है मिट्टी का कण। मिट्टी के कण में भी ऊर्जा होती है। इसलिए मैं जेल में भी आजाद रहा। कितने भी हालात मुश्किल हों उसमें यदि आप आजादाना तौर पर सोच सकते हैं तो आप आजाद हैं। विचारों से आप आजाद हैं तो आप आजाद हैं।

भगतसिंह ने एक बात और कही कि जब मैं वैज्ञानिक विचारों से प्रेरित हो गया तो मैं उसके मुताबिक जिंदगी जीने लगा। जिन्होंने अपना जीवन आदर्श के लिए लगाया उनके लिए सबसे बड़ी श्रद्धाजंलि है, उनके विचारों को अपनाना। उसके लिए जगन्नाथ आजाद की पंक्तियां हैं जो इसे अच्छी तरह समझाती हैं कि

हमसे बढ़कर जिंदगी को
कौन कर सकता है प्यार
गर मरने पे आ जाएं तो मर जाते हैं।
मरकर भी दफन बनकर रह सकते नहीं
लाल फूल बनके वीरानों पर छा जाते हैं हम
जाग उठते हैं तो सूली पे भी नींद आती नहीं
वक्त पड़ जाए तो अंगारों पे सो जाते हैं।

ये प्यार की मोटीवेशन है। हम भगतसिंह को प्यार करते हैं क्योंकि उन्होंने हमें प्यार किया। हम उसे वापस कर रहे हैं। ये मुझे नलिनी किशोर ने बताया कि सबसे बड़ी फोर्स प्यार है।

उसी में मुझे एक कहानी और मिली। इटली के एक दार्शनिक हैं मैजिनी। उनकी किताब है 'ड्यूटीज आफ मैन' बहुत अधिक पढ़ी गई। भगतसिंह ने एक कहानी को उद्धरित भी किया अपने पत्र में। मैजिनी जब नौजवान था तो उसको पुलिस पकड़ने आई, तो उसकी

हैं और वो ध्यान देते हैं कि कुछ साहित्य अमेरिका में उन्होंने बनाया होगा।

दूसरा वे देखते हैं कि मेरे विचारों में स्थिरता क्यों नहीं, मैं स्थिर विचार चाहता हूं। इसके लिए मुझे पढना होगा। पढ़ना, और पढ़ना, और पढ़ना। मैं इतना पढ़ूं कि मेरे विचार तर्क पर आधारित हों। मैं इतना पढ़ूं कि जो विचार मेरे सामने आएं मैं उनका उत्तर तर्क से दे सकूं। आज हमारे पास तर्क वाला भगतसिंह है जिसने अपना रास्ता खुद चुना।

मैं सोचता हूं कि भगतसिंह अपने आप में एक यूनिवर्सिटी थी। अपना सिलेबस खुद निर्धारित किया। उसके लिए दुनिया का साहित्य ढूंढा और उसके बाद अपने को परखा कि जो मैंने सीखा है क्या वो व्यवहारिक है।

सरदार अजीतसिंह भगतसिंह के चाचा जिन्होंने एक कामयाब मूवमेंट खड़ी की। (उनके एक साथी सूफी अंबाप्रसाद हैं, जिनको हम भारत में भूल गए हैं लेकिन ईरान वाले हर साल उनके मजार पर मेला लगाते हैं। उन्होंने गदर पार्टी में फौज बनाकर बिलोचीस्तान के रास्ते से भारत आने की कोशिश की थी। वो शहीद हुए। उनका अगले साल जन्म शताब्दी वर्ष है। हमारी कोशिश है कि उनकी चेतना को भारत में वापस लाया जाए) सरदार अजीतसिंह ने जैसे देखा।

मेरे लिए भी ये प्रश्न है शायद आपके लिए भी हो, कि चार पीढियां लगातार लोकपरस्ती व देश भक्ति में लगातार लगाती हैं। मुझे इसका सूत्र मिला कि भगतसिंह के परदादा फतेहसिंह। (पंजाब सबसे आखिरी सूबा था जो अंग्रेजों के अधीन आया। 1857 से पहले कंपनी का शासन था उसके बाद सीधा ब्रिटिश शासन शुरू हुआ। ये समझना जरूरी है। 1857 का गुणात्मक प्रभाव ये हुआ कि ईस्ट इंडिया कंपनी समाप्त हो गई। 1857 में हरियाणा का योगदान बहुत शानदार है। कभी हांसी की लाल सड़क याद करें)

पंजाब की जंग में उनके दादा जी ने भाग लिया था वे पांच लड़ाइयां हैं। जिनमें तीन बड़ी हैं दो छोटी हैं वो सभी में आए। हारने के बाद अंग्रेजों ने जालंधर डिवीजन पहले ले लिया। सतलुज से ब्यास चले गए। अंग्रेज कमिश्नर ने पहला काम ये किया कि जो लड़ने वाले हैं वो जमीनों वाले हैं। उनके पास क्षमता रहती है कि दूसरे लोगों को भी लड़ाने की। इसकी एक ही सजा है कि इनकी जमीन आधी काट ली जाए। तो सरदार फतेह सिंह की आधी जमीन छीन ली गई। दिलचस्प बात ये है कि वे बुजुर्ग कितने समझदार थे कि चलो ये जमीन मेरे पास तो नहीं है यदि अंग्रेज ने किसी जागीरदार को लाकर बैठा दिया तो मेरे बच्चे फिजूल में लड़ते हुए मर जायेंगे। उनको लगेगा कि हमारी जमीन पर ये सरीक बैठा है। उन्होंने अराईयों (मुस्लिम जो नदी के किनारे बहुत छोटी खेती करते थे) को लाकर बिठा दिया कि भाई तुम यहां खेती करो, खाओ। मेरे बच्चों को तुम्हारे साथ कोई समस्या नहीं होगी। जायदाद का झगड़ा हल कर दिया।

आज जिस खुले व्यापार की बात करते हैं ये अब शुरु नहीं हुआ। 17वीं शताब्दी में एडम स्मिथ ने फ्री ट्रेड लिखा तो ब्रिटिश ने

मुनीश्वर देव की रागिनी

सुणिए मजदूर किसान मैं तेरी बात कहूंगा
तेरै दुखों की कहाणी सारी रात कहूंगा

अठारह घण्टे करके काम तू फिर भूखा सोर्‌या
कर्ज लेकै कर्ज तारै और कर्ज टोहर्‌या
यू तेरी गैल म्हं के होर्‌या, उत्पात कहूंगा

तनै लूटण खातर मण्डियां म्हं ला राखे डेरे
बोली दे कै माटी के भा दाणे बिकैं तेरै
तेरे क्योंकर साथ लगा रहे लुटेरे घात कहूंगा

देसी और बिदेशी दोनों सरमायेदार मिले
ब्लैकी गुण्डेराज करणिए चोर चकार मिले
यां चोरां तै पहरेदार मिले, कुजात कहूंगा

लुटेरा तेरी जड़ां नै काट कै खाण लागर्‌या
तेरी नीलामी होगी, वो दिन आण लागर्‌या
मुनीश्वर जो बतार्‌या, वो हालात कहूंगा

2

ये किसनै लूट मचाई मजदूर तेरी छान म्हं

पूंजीपति के कोठी बंगले ऊंचे महल अटारी क्यों
बांस टूट रहे फूंस नहीं ये टूटी छान तुम्हारी क्यों
और टूटी चारपाई, मजदूर तेरी छान म्हं

ठंडी हवा लगे छप्पर म्हं पोष माघ की सरदी है
जुती टूटी कुरता फटर्‌या ऐसी तुम्हारी वरदी है
दस बन्दे तीन रजाई, मजदूर तेरी छान म्हं

तेरे घर म्हं झूठे बर्तन थाळी तवा परात भी
और पेड़ कै नीचे आकर ठहरी तेरी बरात भी
कुड़की ले आए कसाई, मजदूर तेरी छान म्हं

पूंजीपति के दर्द पेट म्हं घर पै डाक्टर आता है
तेरा बाळक बीमार होकर तड़प तड़प मर जाता है
पर मिलती नहीं दवाई, मजदूर तेरी छान म्हं

पूंजीपति की शादी म्हं वहां आतिशबाजी छूट रही
कुत्ते भी खा रहे मिठाई दस बारां दिन लूट रही
पर रोटी नहीं बनाई, मजदूर तेरी छान म्हं

बाबू जी का मोटर साईकल जब था रोड़ पै छूट रहा
और तू पत्नी सहित धूप म्हं सड़क पै रोड़ी कूट रहा
गाळी दे रहा अन्याई, मजदूर तेरी छान म्हं

पूंजीपति के मुरदे पर रेशम का कफन उढ़ाया जा
तेरा बाळक मरे तो नंगा पाणी बीच बहाया जा
भीष्म क्या करै कविताई, मजदूर तेरी छान म्हं

खुला व्यापार शुरु किया। अमेरिका 1776 में आजाद हो गया। फ्री ट्रेड से आजाद हुआ। उसकी आजादी से भारत का रिश्ता है। यहां के ब्रिटिश व्यापारी थे वे दार्जिलिंग चाय लेकर बोस्टन जा रहे थे वहां के जो व्यापारी थे (आज भी फ्री ट्रेड का वही मतलब है कि बाहर के व्यापारी को तो पूरी छूट दें, क्योंकि उससे व्यापार बढ़ता है अब जो घाटा पड़ता है उसे कहां से पूरा किया जाए उसे घर वाले व्यापारियों से पूरा किया जाए) उस समय अमेरिका के व्यापारियों ने कहा कि ये तो हमारा पेट काटता है इसलिए कुली बनकर समुद्र में गए और सारी चाय समुद्र में फेंक दी। उसे बोस्टन टी पार्टी कहते हैं। वो आजाद हो गए।

चालीस साल ये बहस चली कि ईस्ट इंडिया कंपनी को फ्री ट्रेड करने दिया जाए या नहीं। 1818 में उसे इसकी अनुमति दी गई। क्योंकि उसमें रानी से लेकर प्रधानमंत्री तक के हिस्से थे। लाभ तो तभी होगा अगर हम बाहर टैक्स नहीं देंगे। फ्री ट्रेड हो गया लेकिन एक बात सोची कि अमेरिका में हम पिट गए थे पर हिंदोस्तान में पिटेंगे नहीं। सबसे खराब कानून बनाया गया। जिसका बार-बार प्रयोग किया गया वह है बंगाल रेगुलेशन आफ 1818 का तीसरा रेगुलेशन। जिसमें ये था कि किसी को पकड़ कर देश निकाला दे दीजिए, जेल में बंद कर दीजिए, उसकी बात नहीं सुनी जाएगी। अब इस डंडे के साथ आप व्यापार कर सकते हैं। क्योंकि कोई विरोध करेगा तो उसको पीट सकते हैं। यही कानून सरदार अजीतसिंह व लाला लाजपतराय पर इस्तेमाल हुआ। वही अरबिंदो पर हुआ। आज भी किसी न किसी रूप में 1818 का कानून हमारे पड़ा हुआ है।

ये व्यापार के तरीके के साथ जुड़ा हुआ है। वो जो व्यापार शुरु हुआ उसके चालीस साल बाद 1857 हुआ। उसके कारण 1818 के फ्री ट्रेड में हैं। अभी भी आगरा से सहारनपुर तक उनकी चुंगियां पड़ी हुई हैं। हर बीस मील पर एक चुंगी थी, क्योंकि जो घाटा बाहर पड़ रहा है उसे अंदर से कैसे पूरा करना है वो चुंगियां आज भी वो कहानी बताती हैं।

आज भी वही हो रहा है। जरा गौर कीजिए। वोडाफोन कंपनी ने तीस हजार करोड़ टैक्स देना है वो देने से इंकारी है। कैरेन इंडिया ने बीस हजार करोड़ टैक्स देना है वो इनकारी है। गार्डियन में छपा कि इंगलैंड के विदेश मंत्री भारत के वित्त मंत्री को कहते हैं कि भाई आप हमारी कंपनियों को व्यापार नहीं करने देते। वित्त मंत्री जबाब देते हैं कि नहीं भाई वो तो पिछली सरकार कर गई, हम तो बड़ी मदद करने की कोशिश कर रहे हैं।

आप यदि संवेदनशील हैं तो इन्कम टैक्स अधिकारियों से पूछना कि पिछले साल उन्होंने हड़ताल क्यों की थी। उनके पास आदेश आया कि 72 हजार करोड़ रूपया छोटे कस्बों से टैक्स एकत्रित करना है। गांव में बैंकों में जिसके पास लाख दो लाख रूपया पड़ा है उस पर इन्कम टैक्स के नोटिस आ रहे हैं। ये फ्री ट्रेड की प्रक्रिया है। चिंता की बात है। अभी बजट में एक अध्याय है कि कितना टैक्स बड़ी कंपनियों को माफ किया गया वो एक लाख तीस हजार करोड़ रूपया है। (गोवा में फेस्टीवल आफ आईडिया में रिजर्व बैंक के गवर्नर राजन ने बोला। राजन अर्थशास्त्र के इतिहासकार हैं, उसने पूंजीवाद के अर्थशास्त्र का सारा इतिहास पढ़ा है। इसीलिए वे 2005 में ही 2008 की विश्वमंदी का पूर्वानुमान लगा पाए थे। इसीलिए उनको यहां लाया गया था कि जैसे चीन गिर रहा है यदि भारत भी गिर गया तो पूरा पूंजीवादी आर्थिक तंत्र संकट में पड़ जाएगा)

1857 में खुले व्यापार का इतना प्रभाव हुआ कि राजा और रंक इकट्ठे हो गए। ये सांमतों की लड़ाई नहीं थी। पंजाब में एक जगह है जिसे (काली फौज और गोरी फौज। आज भी आप इलाहाबाद जाएं तो काली पलटन और गोरी पलटन क्षेत्र है) कालों वाला खूह कहा जाता था वहां पर 365 भारतीय सिपाहियों को शहीद करके कुएं में डाल दिया गया था। उस समय का कलेक्टर खुद लिखता है कि उसको लोग मुक्ति घर कहते हैं और इस पर दीया जलाते हैं। किसी को जिज्ञासा हुई कि क्या वाकई इसमें कुछ तथ्य है या ऐसे ही है। वो कुआं देखा गया और उसमें से हड्डियां निकाली गई। 1857 को इतना समझें कि उसमें राजे और रंक, जमींदार और किसान, व्यापारी और कारीगर इकट्ठे लड़े। आपका गांव इकट्ठा लड़ा। भारत के इंकलाब में ये योगदान है जैसे फ्रांस की क्रांति में किसान की बेटी जान आफ आर्क ने फ्रांस की क्रांति का नेतृत्व किया था। हमारे यहां तो झांसी की रानी की पूरी फौज थी। आज की शब्दावली में दलित लड़की झलकारी बाई उसका नेतृत्व किया। उसी याद में नेता जी सुभाष चंद्र बोस ने जापानियों की इच्छा के विरुद्ध झांसी की रानी ब्रिगेड बनाई। हमारी महिलाएं आजादी की लड़ाई में कंधे से कंधा मिलाकर लड़ी।

1857 में पंजाब में समझ में आया कि अब अंग्रेज तो आ गए हैं अब इनसे समझौता कर लेते हैं। रणजोत सिंह मजीठिया के लड़के को फतेहसिंह के पास भेजा कि उनको वह जमीन तो मिल जाएगी साथ में और जमीन मिलेगी।

जो बात उन्होंने कही वो उनके परिवार का आधार बनी। यह बात हम सबके जीवन में भी आती है। उनके दादा ने कहा कि तुम्हारे पिता ने मुझे एक बहुत उलझन में डाल दिया है। कि यदि आपको चुनना पड़े तो क्या आप जायदाद चुनेंगें या उसूल चुनेंगे। उन्होंने कहा कि अपने पिता को बता देना कि मैं उसूल चुन रहा हूं।

इसी उसूल के संदर्भ में भगतसिंह ने भी अपने पत्र में जिक्र किया है। उनके पिता जी एक कानूनी लड़ाई लड़ रहे थे। लेकिन भगतसिंह ने कहा कि दो भ्रम हो रहे हैं कि एक तो मेरे साथी समझेंगे कि भगतसिंह हमें छोड़ रहा है अपनी जान बचा रहा है।

दूसरा यदि मुझे उसूल और जिंदगी में से एक चुनना पड़ा तो मैं जिंदगी नहीं उसूल चुनूंगा। जिंदगी और उसूल की चार पीढ़ियों की प्रक्रिया है। उनके परदादा की, उनके दादा की, उनके चाचा की और भगतसिंह।

भगतसिंह खुले विचारों के बन गए, क्योंकि उस परिवार ने नए विचारों को अपनाया। जिसे हम साझी संस्कृति, साझी विरासत कहते हैं उसकी पैदावार है। उनकी चाची जी सरदार अजीत सिंह की पत्नी वो कसूर की रहने वाली थी। उनकी शादी भी सूफी तरीके से हुई थी। धनपतराय वकील थे उनसे सलाह मशविरा करने

गए थे। उन्होंने कहा कि नौजवान यदि लड़ाई लड़ना चाहते हो वो अकेले नहीं लड़ी जाती। साथी होना चाहिए, ये लड़की तुम्हारा साथ देगी। नानी जी ने कहना कि मुझे नहीं पता था कि ये बैठे हुए हैं। क्योंकि कसूर बाबा बुल्लेशाह का कसूर है। सूफीवाद का कसूर है। उन्होंने सारे गांव की लड़कियों को पढ़ा दिया।

उनके दादा जी के भाई नामधारी मूवमेंट को शुरु करने वाले थे। उन्होंने नामधारी मूवमेंट शुरु किया। वैशाखी वाले दिन। उन्होंने अर्थ व्यवस्था दी कि मेरा सिख न ब्याज लेगा न देगा। उन्होंने कहा कि लड़की को बराबरी देना हमारी संस्कृति का हिस्सा है। उन्होंने अपने 22 सूबों में एक दिल्ली सूबे में महिला को कमांडर बनाया।

मैं नानी जी से पूछता रहता था कि आपको कोई बात याद हो भगतसिंह की। उन्होंने कहा कि मैं तो चंडी की वार पढ़ती रही मेरे लिए प्रश्न था कि ये चंडी की वार पढ़ने की संस्कृति कहां से आई। चंडी की वार को पढ़ना नामधारी संस्कृति का हिस्सा है। जब मैंने पूछा तो उनका उत्तर था कि गुरुगोबिन्द सिंह ने कहा था कि जो साध कर्म करें देवता कहाय, कुकर्म करें शैतान कहाय।

आर्य समाज आया। पंजाब में स्वामी दयानंद को बुलाया। क्योंकि मूर्तियां लगाने लगे थे। उस समय मूर्ति पूजा के खिलाफ एक भारतीय आवाज थी दयानंद की। वो डेढ महीना सुंदरसिंह मजीठिया के घर रहे।

आपकी मुक्ति लोगों की मुक्ति के साथ होगी। आप अकेले मुक्त नहीं हो सकते। सारे समाज के हित में काम करना पड़ेगा। भगतसिंह के साथ 22 अनाथ बच्चे पले थे जो सभी देशभक्त बने। उनमें से दो को फांसी लगी, बाकी जेलों में गए। कहावत बन गई थी एक साथी थे किशनसिंह जी के। वो कहते कि बेबे तू परांत भरकर खिलाती है और परांत भरकर ही उनको विदा कर देती है।

भगतसिंह खुद तथ्यों पर जाते थे, सुनी-सुनाई बातों पर नहीं। उनमें पत्रकारिता का गुण था। जलियांवाला बाग की बात उनको पता चली कि वहां इतने लोग मरे हैं। वो कहते हैं कि मैं जाकर देखूंगा। 12 साल का बच्चा कर्फ्यू लगे में वहां पहुंचता है और वहां से खून से भीगी हुई मिट्टी लेकर आता है। मेरी मां उनसे छोटी थी, जब भगतसिंह आए तो उन्होंने कहा कि बीर जी मैंने तेरे लिए आम रखे हैं। उन्होंने कहा कि आज मेरा मन बहुत विचलित है। क्या विदेशी इतना खून कर सकता है। देखो खून से भीगी हुई मिट्टी। आज फेसबुक, व्हाटसैप, ट्विटर पर चारों तरफ से खबरें आ रही हैं उन पर आंख मूंद कर विश्वास न करके उनको समग्रता से समझने की जरूरत है। आज ये और भी ज्यादा बढ़ गई है।

भगतसिंह सीखते हैं उस ज्ञान तक पहुंचना जिसने ये दृढ़ता दी। उन्होंने गुरुमुखी सीखना शुरु कर दिया। उन्होंने मेरी मां से पूछा कि बीबी तू क्या पढ़ रही है तो उनका कहा कि मैं तो पांच ग्रंथी पढ़ रही हूं। वो कहते मैं ग्रंथ साहब पढ़ आया। उसमें लिखा हुआ है।

चाहे रख लांबे केस चाहे कर मुडार, नितारा अमला नाल।

मेरी मां ने मुझसे पूछा कि क्या ये ग्रंथ साहब में है। लेकिन मैंने तब तक ग्रंथ साहब नहीं पढ़ा था। मैंने ग्रंथ साहब को जानने-पढ़ने का दावा करने वालों से इस संबंध में पूछा तो उन्होंने कहा कि नहीं नहीं ये तो आर्य समाजियों का प्रचार होगा। मुझे अपनी मां की स्मृति पर भरोसा था। मैंने ठान लिया कि ये तो ढूंढना पड़ेगा कि ये वाकई उसमें है या नहीं। सबसे दिलचस्प बात है कि ये कबीर का दोहा है, कि आपके रूप से फर्क नहीं पड़ता।

ननकाना साहब के बाद एक लोकप्रिय गीत बना कि जात तेरी किसी ने पूछणी नहीं, अमलां नाल होणे ने नबेड़े। जात-पात को तोड़िये और अमल पर आइए ये संदेश था जिसे भगतसिंह ने पकड़ लिया। लेकिन वे इससे आगे निकल गए इसको दोहराया नहीं। भगतसिंह ने पढ़ा, समझा, उसे अपनाया और आगे बढ़ गए।

अगर आपके मन में ठीक प्रश्न है तो आप उत्तर पायेंगे। भगतसिंह ने अपने पिता से प्रश्न किया कि आपने मुझे गुरु तेगबहादुर की शहादत की कहानी सुनाई। ये पता लग गया कि गुरु तेगबहादुर जी की शहादत आम आदमी से जजिया(टैक्स)के लिए हुई। जजिया टैक्स पर बहुत अच्छा पत्र शिवाजी का औरंगजेब को है, जो पी सी सरकार लिखित की जीवनी में है। उसमें लिखा है कि इससे दो भ्रम पैदा होते हैं। जो आपका खजाना खाली हो गया वो बेकार की जंग लड़ने से हुआ है। जंग से किसी का खजाना नहीं भरा। खजाना भरने के लिए आप गरीबों पर टैक्स लगाने की बजाए जागीरदारों से सहायता मांगो।

दूसरा भ्रम ये पैदा होता है कि तुम रक्षा कर रहे हो। लड़की गहने डालकर सड़क पर दो मील भी सुरक्षित नहीं जा सकती। यही तुम्हारी रक्षा है।

यही भगतसिंह ने कहा कि गुरु तेगबहादुर 9 साल के बाल गोबिंद छोड़कर गए थे। उन्होंने उनके लिए क्या गुर भेजा। जिस गुर ने बाल गोबिंद को गुरु गोबिंद बना दिया। ये बड़ा खूबसूरत सवाल है। मैंने देखा कि गुरु तेगबहादुर के शबद ग्रंथ साहब में आखिर में अंकित किए गए हैं। वो गुरु गोबिन्द सिंह ने जोड़े हैं। वो चांदनी चौक दिल्ली से भेजे गए थे। उसका एक आखिरी शब्द है।

बल छूटक्यो बंधन पड़े, कछु न होत उपाय।

अगर बल छूट जाए, आप बंधन से छूटकारा नहीं पा सकते। कहानी ये है कि आप बाल गोबिंद से इसका जबाब पूछ लेना। अगर तो प्रश्न का जबाब उसे पता है तो फिर उसके आगे मदद करना। नहीं तो फिर उसे समझा देना। फिर उसका उत्तर है **बल हुआ बंधन छूटे, सब कुछ होत उपाय।**

भगतसिंह ने इसे समझा कि मुझे पता चल गया कि असल में बलवान होने और निर्बल होने की लड़ाई है। बल कैसे बनना है। बाहुबल से आगे के बल भी हैं। विचारों का बल है तो इरादे का बल होगा, इरादे का बल है तो आप संगठन का बल बनायेंगे।

यहां आंबेडकर और भगतसिंह एक हैं। वो भी कहते हैं कि शिक्षित बनो, संगठित हो, संघर्ष करो। किसी समाज को आगे बढ़ाने के ये तीन सूत्र हैं। अपनी विरासत से कैसे सीखा।

अध्ययन की प्रक्रिया 1921 के बाद है। 1921 में गांधी जी ने बनारस में भाषण

दिया था, जिससे कई क्रांतिकारी पैदा हुए। मंमथनाथ गुप्त काकोरी केस में थे, चंद्रशेखर आजाद भी उसी में पैदा हुए। मुझे लगा कि देखा जाए कि ये क्या प्रसंग है। वो बहुत खूबसूरत है। गांधी जी ने कहा 'मेरे साथ मालवीय जी बैठे हैं, जब मैं आया इंग्लैंड-अफ्रीका से तो सोचता था कि सारी जिंदगी इनके पांवों में लगा देता। लेकिन आज हमारा मतभेद हैं। ये कहते हैं कि बच्चे पढ़ें, मैं कहता हूं कि सबसे जरूरी स्वराज है। उसके लिए सब कुछ छोड़ें। उन्होंने कहा कि आप अपने परिवार के लिए पढ़ रहे हैं देश के लिए सोचिए। उसमें भगतसिंह ने भी छोड़ा।

बड़ा खूबसूरत है कि उस समय चंद्रशेखर आजाद 14 साल के थे उनकी पहली फोटो उपलब्ध है। उनको पकड़ा गया आंदोलन में। उनको 12 बेंत लगे। बेंत लगने के बाद भी अपने आप चले, अन्यथा बेंत लगने बाद तो बड़े बड़े फन्ने खां भी गिर जाते थे। बेंत लगाने के बाद चार आने दिए कि दूध पी लेना। वो जेलर के मुंह पर फेंक कर आ गए। जब वो चल कर आ गए। तो उसी शाम बनारस में एक मीटिंग हुई तो उनको मंच पर खड़ा करके चरखे के साथ कि देखिए ये हमारे सत्याग्रही हैं। वो आजाद हो गए। आजाद बन गए।

रामप्रसाद बिस्मिल उन को पारे की तरह कांपने वाला कहते थे। तुम स्थिर नहीं हो। वहीं वो सतारा नदी के किनारे तीन साल रहे। मुझे वहां जाने का मौका मिला। एक तो कुटी थी जिसमें वो साधु बनकर रहे। उसमें एक सुरंग निकाली हुई थी। अगर पकड़ने आ जाए तो निकल जाएं। एक वहां नीम का पेड़ था जिसके नीचे वो बच्चों को पढ़ाया करते थे। तीन साल के बाद वो कांपने वाला पारा फौलाद बन गया। उन्होंने दोबारा पूरा संगठन खड़ा किया। अगर नौजवान समझ लेता है वो उसको पूरा करता है।

बड़ी दिलचस्प है कि वो 16 साल की उम्र में घर से भागे थे। उनकी दादी को चिंता थी कि दो दो पुत्र वधुएं घर में बैठी हैं। 16 साल के जवान हो गया है। इसकी शादी करनी चाहिए।

मिरासी ने आकर एक रिश्ता भी बता दिया कि फलां की लड़की जवान है और वो शादी में हाथी भी देंगे। इस पर भगतसिंह ने कहा कि बड़ी अच्छी बात है, कमाल ही हो जाएगा कि हाथी हमारे गन्ने के खेत खाया करेगा। हम उसकी लीद उठाया करेंगे। जब उनको लगा कि वो गंभीर हो रहे हैं तो घर से भागना ही उचित है। अपनी मां को बताया उनसे पैसे ले लिए, पिता जी का मनीआर्डर ले लिया और घर से भाग गए। वो चिट्ठी लिखी, कि हमारे नामकरण के समय हमारे दादा ने कहा था कि ये मेरे दो पोते हैं ये भी देश की आजादी के लिए सौंप दिए। मैं तो उनका वचन पूरा कर रहा हूं।

कानपुर में गणेश शंकर विद्यार्थी जी के साथ पत्रकारिता की। उन्होंने लोगों के साथ हर चीज सांझी की। वो हमारे पास विरासत है कि हर मसले पर नए तरीके से सोचना। हर प्रश्न को नए तरीके से लिया। उनका संपूर्ण नारा साम्राज्यवाद मुर्दाबाद और इंकलाब जिंदाबाद है।

•

दयाचंद मायना की रागिनी

हाय-हाय रै जमींदारा, मेरा गात चीर दिया सारा
ईख तेरे पात्तां नै,
तुमसे ज्यादा हम चिरगे, गोरी देख म्हारे हाथां नै

कदे धूप कदे छां आज्या, हाय जान मरण के म्हां आज्या
कदे झाड़ा मैं पां आज्या, दे फोड़ कती लातां नै

जूड़ा हलाकै जहरी छिड़गे, मुंह पै कई तत्तैये लड़गे
बीर मर्द भीतर नै बड़गे, बचा-बचा गातां नै

किस्मत आळा हर्फ दीखग्या, खतरा चारों तरफ दीखग्या
एक लटकता का सर्प दीखग्या, बचा लिया दाता नै

सुर गैल सरस्वती वर दे सै, अकल तै मेहनत कर दे सै
'दयाचन्द' छन्द धर दे सै, चौपड़-चौपड़ बातां नै

2

तेरा खेत लामणी आर्‌या सै औ छोरे जमींदार के
काट ले नै धान अपने ढूंगे-2 क्यार के

खूब लगा ले जोर मनै तेरे तै आगै जाणा सै
जवानी का सारा हांगा फेर के म्हं लाणा सै
हमनै मेहनत करकै खाणा सै, बता और म्हारा रोजगार के

खेती कह धणी के सेती कोठी बंगले महल हमारे
उठण, बैठण, लेटण खातर डळे बहान के पहल हमारे
गऊ के जाए बैल हमारे कमाऊ संसार के

ओहे नर कुमावेंगे जो नींद आळकश त्याग जांगै
खरे दाम, खोटे टोटे पड़ोसियां के भाग जांगै
थारै अन्न के ठेके लाग जांगे कोठे भरज्यां न्यार के

तरां-तरां के फूल सज्जनियां दुनियां खिलरी गुलदस्ता
माने आळे 'दयाचन्द' तेरा सुन्दर कहण करारा खसता
कदे महंगा, कदे सस्ता, ये भाव सैं बजार के

•

समता मूलक समाज था आम्बेडकर का सपना

– गुंजन

'देस हरियाणा' के संपादक एवं कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में प्रोफेसर सुभाष चंद्र

इन्द्री (करनाल) स्थित रविदास मंदिर के सभागार में 10 अप्रैल, 2016 को बाबा साहेब भीम राव आंबेडकर की 125वीं जयंती और महात्मा ज्योतिबा फुले जयंती के उपलक्ष्य में 'मौजूदा दौर और डॉ. भीमराव आंबेडकर के विचार' विषय पर संगोष्ठी का आयोजन किया गया। मुख्य वक्ता के रूप में 'देस हरियाणा' के संपादक एवं कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में प्रोफेसर सुभाष चंद्र ने अपने विचार रखे। सुभाष चंद्र ने कहा कि विडंबना की बात है कि आंबेडकर पर होने वाली चर्चा आरक्षण तक महदूद कर दी जाती है। दूसरा, बातचीत आंबेडकर के जीवन तक सीमित रह जाती है। उन्होंने कहा कि आज आंबेडकर के उन विचारों को चर्चा के केन्द्र में लेकर आने की जरूरत है, जोकि उन्हें बहुत बड़ा चिंतक और दार्शनिक बनाते हैं। दार्शनिक के विचार बदलते दौर के मुताबिक हमें दिशा प्रदान करते हैं। उन्होंने कहा कि आंबेडकर एक परम्परा की कड़ी हैं। वे चार्वाक, महात्मा बुद्ध, कबीर, रविदास और महात्मा ज्योतिबा फुले की परम्परा को आगे बढ़ाते हैं। आंबेडकर इतिहास का आकलन करते हैं। धर्मग्रंथों की विवेचना करते हैं। दुनिया भर में होने वाली क्रांतियों का इतिहास पढ़कर वे राजनीतिक चिंतक के रूप में दुनिया के सामने आते हैं। उन्होंने समाज को आगे बढ़ने में रुकावटों में वर्ण व्यवस्था, जाति प्रथा, कर्मकांड और अंधविश्वासों की पहचान की और महिलाओं, दलितों एवं पिछड़ों की समता पर जोर दिया। आंबेडकर ने महात्मा बुद्ध को अपनाया और मनुस्मृति को जलाया। इससे उनके विचारों के बारे में पता चलता है कि वे कौन सी धारा को अपनाते हैं। वे परम्पराओं का गहरा मूल्यांकन करते हैं।

उन्होंने कहा कि आंबेडकर की धारा सच की खोज की धारा है। महात्मा फुले ने सत्यशोधक समाज के माध्यम से सच और झूठ को अलग करने की कोशिश की । डॉ. सुभाष ने कहा कि झूठ के पीछे लूट की गाथा छिपी होती है। अगले जन्म के झूठे सब्जबाग दिखाकर दान को महिमामंडित किया जाता है। डॉ. आंबेडकर व उनकी परंपरा ने सच को खोजने के लिए तार्किक व वैज्ञानिक सोच को औजार बनाया।

उन्होंने कहा कि ज्ञान, राजनीतिक ताकत और सम्पत्ति तीन ही चीजें हैं, जिनसे कोई भी समाज आगे बढ़ता है। वर्ण व्यवस्था समाज की बहुत बड़ी आबादी को इन तीनों चीजों से वंचित करती है। उन्होंने कहा कि जाति प्रथा और पितृसत्ता दो बिमारियां जो महिलाओं और दलितों का शोषण करती हैं। डॉ. आंबेडकर ने इन बिमारियों की पहचान कर ली थी और फिर बिना किसी लाग-लपेट के इनके इलाज के लिए कड़वी दवाई तैयार की। संविधान के द्वारा उन्होंने लोकतंत्र की स्थापना की। शिक्षा, स्वास्थ्य और रोजगार की व्यवस्था करने की जिम्मेदारी सरकार को सौंपी। आज आंबेडकर की मूर्ति पर फूल चढ़ाए जा रहे हैं। राजनीतिक दलों में आंबेडकर को याद करने की होड़ लगी है। लेकिन उनके विचारों को भी पूरी ताकत के साथ पीछे धकेलने की कोशिशें हो रही हैं। शिक्षा को निजी हाथों में सौंपा जा रहा है। बराबर के अवसर सरकारी स्तर पर ही मिल सकते हैं। मेहनत-मजदूरी और नौकरी कर के ही गरीब व्यक्ति अपना गुजारा कर सकता है। लेकिन दलित-वंचित लोग जिन कामों को करते हैं, वे सबसे पहले ठेके पर दे दिए गए। लगातार निजीकरण और ठेका प्रथा को बढ़ावा दिया जा रहा है।

आंबेडकर और फुले ने लैंगिक और जाति पर आधारित भेदभाव व पक्षपात को दूर करने के लिए समता और सामाजिक न्याय का पक्ष लिया। न्यायपूर्ण समाज की स्थापना के लिए उन्होंने सामाजिक सच को उद्घाटित

किया। समता के लिए उन्होंने सम्पत्ति के न्याय संगत बंटवारे की बात कही। सभी प्रकार के अन्याय के खिलाफ उन्होंने लड़ाई लड़ी। उन्होंने कहा कि आज लोकतंत्र पूंजीपतियों के हाथ में कैद होता जा रहा है। आंबेडकर ने राजनीतिक लोकतंत्र से भी पहले सामाजिक लोकतंत्र को जरूरी बताया। साहचर्य, भाईचारे और सद्भाव को तोड़कर अपने स्वार्थ सिद्ध करने के लिए राजनीतिक दल लोगों को आपस में बांटने में लगे हुए हैं। आंबेडकर ने कहा था कि जाति प्रथा उत्पीड़न का तरीका है। जाति को न्यायोचित ठहराने के लिए काम के बंटवारे की बात की जाती है। आंबेडकर ने कहा कि जाति प्रथा श्रम-विभाजन नहीं, बल्कि श्रमिकों का विभाजन करती है। अलग-अलग काम का दर्जा भी अलग-अलग है। मंत्र पढ़ना सबसे बड़ा काम बताया गया। दलितों और महिलाओं के कामों का अवमूल्यन किया जाता है। डॉ.आंबेडकर ने सामाजिक विकास में अवरोधक का काम करने वाली जाति व्यवस्था को समाप्त करने पर जोर दिया और इसके लिए अन्तर्जातीय व्यवस्था सहित ठोस उपाय सुझाए।

संजय बोध ने डॉ. आम्बेडकर के जीवन और संघर्षों पर विस्तार से प्रकाश डाला और उनके विचारों को जन-जन तक पहुंचाने की जरूरत पर बल दिया। कार्यक्रम में कवि दुलीचंद रमन ने अपनी 'सच का एक छोर' कविता सुनाई। कार्यक्रम की अध्यक्षता रविदास जागृति मंच के प्रधान धनी राम व सामाजिक कार्यकर्ता जसविन्द्र पटहेड़ा ने की और संचालन प्राध्यापक अरूण कैहरबा ने किया। इस मौके पर रवि कुमार, सतपाल, मान सिंह, दयाल चंद, मोहम्मद इंतजार, सत्री चहल, अर्जुन खुखनी, सुरेश सिंहमार, अशोक एडवोकेट, बलवान सिंह नरवाल, शिव कुमार, अश्वनी बोध, सोनू, भजन, राजेश कुमार, कुलदीप, कमल किशोर, विशाल, नवीन ग्रोवर, सूरजभान व पवन उपस्थित रहे।

●

रोजलीन की कविताएं

झरना

अनंत कालों से बहता झरना
इतना शांत
कभी नहीं देखा
ऐसा क्या हुआ?
कि -
न जल के
गिरने का शोर सुनता है
और न बहने का।

तुम्हारे घर के किवाड़

जानती हूं
तुम्हारे घर की ओर
मुड़ते हुए
मुझे नहीं सोचना चाहिए
कि मुझे
तुम्हारे घर की ओर मुड़ना है,
तुम्हारी दहलीज पर आकर
नहीं रूकना चाहिए ठिठक कर
कि मेरे कदमों की आहट
-तुम्हारा कोई स्वपन
भंग न कर दे
खटखटाकर तुम्हारा किवाड़
नहीं लेनी चाहिए इजाजत
तुम्हारे भीतर आने की
जबकि
मैं जानती हूं -
सदियों से खुले हैं
तुम्हारे किवाड़
मेरे लिए
देखो न...
फिर भी
कैसे भय से कांपता है दिल
तुम तक पहुंचने के
ख्याल भर से

यदि लड़की भी होती मनुष्य

लड़की को
हक नहीं होता प्रेम करने का
लेकिन,
आते-जाते, घूमते-फिरते, छिपते-छिपाते
कपड़े छत पर
सुखाते-उतारते भी
प्रायः
हो ही जाता है प्रेम
कहीं न कहीं
कैसे भी
आखिर
मनुष्य होने की
फितरत में है 'प्रेम'
जबकि
शायद
लड़की को नहीं समझा जाता
मनुष्य

देखा न --
यदि लड़की भी होती मनुष्य।
तो लिख सकती
प्रेम की कविताएं

एक चुप्पी

एक चुप्पी
हवा को बहने नहीं देगी आज
कोलाहल कोई छूट गया पीछे
सांसों का चलना तो दूर
धड़कन का संपन्दन तक
जैसे विराम हो गया हो
ऐसे ही टूट गया कुछ
कि -
तिड़कने तक की आवाज नहीं

और अब
आंखें नहीं जानती
कोई वजह
सागर के छलछलाने की
पलकों के बाहर
हां,
चुप्पनी उतर आई आंखों में

●

रपट

वर्तमान शिक्षा बालक को एक अच्छी मशीन बनाती है

प्रोफेसर नन्द किशोर आचार्य

15-16 मार्च को पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़ में यूनिवर्सिटी स्कूल ऑफ ओपन लर्निंग के पंजाबी विभाग की ओर से 'शिक्षा और मानवीय विकास के संदर्भ में मातृ भाषा का योगदान' विषय पर दो- दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया गया ।

इस अवसर पर बीज वक्तव्य देते हुए आई आई आई टी, हैदराबाद में प्रोफेसर ऑफ एमिनेंस, प्रोफेसर नंद किशोर आचार्य ने मातृभाषा को मानवाधिकार के संदर्भ में परिभाषित किया । उन्होंने कहा कि जीवन का हर सवाल मानवाधिकारों से संबंधित है और शिक्षा के साथ-साथ मातृभाषा में शिक्षा को भी इसी संदर्भ में लिया जाना चाहिए। हमारे यहां हर बच्चे को मातृभाषा में पाठ्य सामग्री उपलब्ध न करवाने की राज्य-व्यवस्था की नाकामी की सजा बच्चों को पढ़ने में असफलता के रूप में भुगतनी पड़ रही है।

वर्तमान समय में विकास का अर्थ आर्थिक वृद्धि और आर्थिक विकास के संबद्ध किया जाता है जिसने जैविक विकास के प्रत्यय को पीछे छोड़ दिया है। एक आंकड़े के अनुसार 1950 से अब तक 220 भारतीय भाषाएं मर चुकी हैं और वे भाषाएं मुख्यधारा की भाषाओं से अलग हैं। यह बाजार आधारित विकास मॉडल ही इनके पतन का जिम्मेदार है । मातृभाषा से स्वतंत्र चिंतन पैदा होता है जो स्व, स्वाधीन, मुक्त व स्वतंत्र मन का पर्याय है। विचार भाषा से आता है और बाजार ऐसी भाषा को प्रोत्साहित करता है जो विचारहीनता पैदा करती है। विचारहीनता में दीवाना होना बहुत आसान होता है। यही दीवानापन वस्तुओं के अतार्किक उपभोग की ओर ले जाने के लिए जरूरी है जो कि बाजार की बुनियाद है ।

उन्होंने कहा कि जब आप शिक्षा की बात करते हैं तो सबसे पहले इस पर विचार किया जाना चाहिए कि आप शिक्षा के माध्यम से क्या करना चाहते हैं। शिक्षा की जिम्मेदारी किसके प्रति है? शिक्षा की जिम्मेदारी उस शिक्षार्थी के प्रति है, जो शिक्षा ग्रहण करने आता है या उस समाज के प्रति जिसका वह सदस्य है या कि शिक्षा की जिम्मेदारी राज्य और बाजार के प्रति है। हमारे यहां जो शिक्षा व्यवस्था विकसित हुई उसमें शिक्षा से यह उम्मीद की जाती है कि वह राज्य और बाजार के द्वारा जो प्रयोजन तय किये हैं, उनको पूरा करने में मददगार साबित हो। थोड़े दिनों पहले आपने देखा होगा कि अम्बानी-बिरला शिक्षा पर विचार कर रहे थे। इसका क्या अर्थ है? क्या अम्बानी और बिरला कोई शिक्षा शास्त्री हैं ? या अम्बानी और बिरला कोई दार्शनिक हैं ? वे शिक्षा के इन कार्यक्रमों के आधार पर क्या चलाना चाह रहे हैं! सीधी-सी बात है अम्बानी और बिड़ला हमारे यहां बाजार के प्रतिनिधि हैं और वे उसी आधार पर शिक्षा पर विचार कर रहे हैं और राज्य उनसे रिपोर्ट मांग रहा है तो इसका क्या अभिप्राय है! यानी कि राज्य क्या लागू करना चाहता है! तो राज्य हुआ या बाजार का एजेन्ट?

अभी हमारे यहां जो व्यवस्था है उसमें शिक्षा राज्य के मुताबिक चलती है और राज्य बाजार के मुताबिक, तात्पर्य यह है कि शिक्षा राज्य के मार्फ़त बाजार के मुताबिक चल रही है। यहां शिक्षा का उद्देश्य न तो शिक्षार्थी के व्यक्तित्व का विकास है न आन्तरिक गुणों का विकास।

यहां शिक्षा का उद्देश्य उसको बाज़ार के योग्य बनाना है, यानी वह बाजार की उत्पादन प्रणाली में सहायक हो और बाजार का उपभोक्ता बन जाए। हमारी सारी शिक्षा-प्रणाली उसके व्यक्तित्व को उपभोग परक बना रही है। अगर यह प्रक्रिया है तो मनुष्य के स्वतंत्र विकास का सवाल ही कहां है ? जब आप नैतिक विकास की बात करते हैं तो यह देखना होगा कि क्या बाजार की इस व्यवस्था में नैतिक विकास संभव है! अगर वहां किसी तरह की नैतिकता होगी तो वह बाजार के ही काम की होगी वह मनुष्य के विकास के काम की नहीं होगी। वहां ईमानदारी की बात भी बाजार के प्रति होगी, मूल्यों के प्रति नहीं।

वर्तमान शिक्षा बालक को एक अच्छी मशीन बनाती है और अच्छी मशीन वह है जो सोचती नहीं और बिना रुके अधिक उत्पादन करती है; अपने कार्य में निपुण है। दुनिया का हर शिक्षा-शास्त्री और बाल मनोविज्ञान का जानकार कहता है कि बच्चे को मातृभाषा में शिक्षा दो जबकि बाजार कहता है कि उसे उस भाषा में शिक्षा दो जिससे वह उसका एक अच्छा एजेंट बन सके।

इसमें परिवर्तन कैसे हो, उन्होंने कहा कि मुख्य बात तो कंटेंट में परिवर्तन की है। उसकी प्रक्रियाओं में परिवर्तन की आवश्यकता है, जिससे कि बालक में नैतिक चेतना का विकास संभव हो सके। लेकिन वो शायद बाजार भी नहीं चाहता और राज्य भी नहीं चाहता। राज्य व्यक्ति को स्वतंत्र नहीं देखना चाहता और बाजार व्यक्ति को नैतिक नहीं देखना चाहता। इसलिये दोनों चीजें संभव ही नहीं हैं। खास तौर से उस शिक्षा के लिए जो राज्य और बाजार के सहारे चल रही हो। पिछले दिनों देश के विकास का नारा बार-बार उछाला जाता रहा है। देश का विकास तभी संभव है जब प्रत्येक व्यक्ति राष्ट्र के विकास में अपना योगदान दे सके जो वह दे सकता है न कि वैसा,जैसा कि सत्ताधारी उससे चाहते हैं।

विशेष अतिथि के तौर पर संगोष्ठी में उपस्थित पंजाबी के प्रसिद्ध कवि सुरजीत पातर ने कविताओं के माध्यम से मानवता की उस भयानक पीड़ा को प्रकट किया जिससे कि उत्पादन के बदलते साधन शब्दों की विविधता को निगल रहे हैं और मानव अपने आप से बेगाना हो रहा है।

मुलख सिंह-9416255877

(जो हम पढ़ाना चाहते हैं, वह बच्चे के लिए रोचक न हो, या हम सही तरीके से सिखा न पाएं, तो इसमें दोष किसका है? क्या यह विद्यार्थी का दोष है, कि उस विधा का है, या उस शिक्षक का या उस शैक्षणिक व्यवस्था का? इनमें से हम किसे फेल मानें?)

फेल न किया तो क्या किया?

सी.एन. सुब्रह्मण्यम

शिक्षा अधिकार अधिनियम 2009 के अनुसार कक्षा-8 तक छात्रों को फेल नहीं किया जा सकता है। आम तौर पर इसका यह अर्थ लगाया जाता है कि विद्यार्थियों का मूल्यांकन ही नहीं किया जा सकता।

दरअसल, शिक्षा अधिकार अधिनियम में दो अलग-अलग तरह के प्रावधान हैं जिन्हें साथ में रखकर समझना होगा-पहला प्रावधान विद्यार्थियों को किसी कक्षा में रोकने (फेल करने) पर प्रतिबंध लगाता है और दूसरो प्रावधान उनके सतत् और समग्र मूल्यांकन को अनिवार्य बनाता है।

इन प्रावधानों के पीछे दशकों से चल रहा मंथन और देश-विदेश के अनुभव हैं। अनुभव यह है कि बच्चों का सीखना पास-फेल रूपी बंदूक की नोक पर नहीं होता है, न ही न सीखने के लिए उन्हें जिम्मेदार ठहराया जा सकता है। बच्चों को पास-फेल करना वास्तव में व्यवस्थागत विफलताओं को बच्चे के सिर पर मढ़ना है। विश्वभर के अनुभव बताते हैं कि गरीब और वंचित समुदायों के विद्यार्थियों द्वारा शाला त्यागने के पीछे उन्हें फेल करना सबसे बड़ा कारण रहा है।

आज इस कानून के बनने के पांच साल के अंदर इन प्रावधानों, विशेषकर फेल न करने संबंधी प्रावधान को हटाने के प्रयास युद्ध स्तर चल रहे हैं। आम पालक व शिक्षक भी यह मानने लगे हैं कि इस प्रावधान के कारण देश में शिक्षा का स्तर लगातार गिर रहा है। और-तो-और, कई विद्यार्थी भी यह मानने लगे हैं कि फेल न किए जाने के कारण ही ये सीख नहीं पा रहे हैं। न सीख पाने वाले बच्चों को फेल करने के पक्ष में दो तरह की दलीलें दी जाती हैं एक छात्र-केंद्रित और दूसरी व्यवस्था-केंद्रित।

छात्र-केंद्रित दलील

कहा जाता है कि फेल न किए जाने के कारण बच्चों में पढ़ाई के प्रति अश्रद्धा हो जाती है और वे प्रयास करना छोड़ देते हैं। दूसरा यह कि जब कोई विद्यार्थी पिछली कक्षा की बातों को न सीखकर अगली कक्षा में पहुंचता है तो उसे अगली कक्षा की विषयवस्तु समझने में कठिनाई होती है। अत: उसे उसी कक्षा में रोककर सिखाना बेहतर है।

चलिए इन दो दलीलों का परीक्षण करते हैं। क्या परीक्षा और फेल हो जाने का डर वास्तव में बच्चों के लिए प्रेरणा का स्रोत बन सकता है? पढ़ाई के प्रति श्रद्धा या इच्छा विषयवस्तु की रोचकता तथा शिक्षण विधि पर निर्भर होनी चाहिए, न कि किसी दण्ड के डर पर। हमें यह भी स्वीकार करना होगा कि सभी बच्चे हर विषय में समान रूप से सीखना नहीं चाहेंगे। इस कारण पाठ्यक्रम में विविधता और बहुतआयामिता की जरूरत है। पढ़ना-लिखना, तार्किक सोच, सामाजिक समानता और न्याय, पर्यावरण बोध तथा सौंदर्यबोध जैसे कुछ बुनियादी शैक्षणिक उद्देश्यों को हर विधा में पिरोने की जरूरत है ताकि जिस विधा में बालक रूचि लें, उसके माध्यम से वह ये बातें सीख सकें।

जो हम पढ़ाना चाहते हैं, वह बच्चे के लिए रोचक न हों, या हम सही तरीके से सिखा न पाएं, तो इसका दोष किसका है? क्या यह विद्यार्थी का दोष है, कि उस विधा का है या उस शिक्षक का या शैक्षणिक व्यवस्था का है? इनमें से हम किसे फेल मानें?

बच्चे तब सीखते हैं, जब उनमें उस विषयवस्तु के प्रति कोई आकर्षण बने और उसे सीखने के लिए तीव्र इच्छा व उत्साह जागृत हो-जैसे वे रोटी बनाना, साइकिल चलाना या फिर नए मोबाइल फोन इस्तेमाल करना सीखते हैं। क्या इस तरह का उत्साह फेल होने के डर से उत्पन्न हो सकता है।

नि:संदेह किसी गंभीर शैक्षणिक व्यवस्था में मूल्यांकन की अहम भूमिका होती है। हमारा प्रयास सही दिशा में अग्रसर है कि नहीं यह जानने के लिए मूल्यांकन जरूरी है। अगर यह लगे कि हम अपने उद्देश्यों को पूरा नहीं कर पा रहे हैं तो हमें शिक्षण के उद्देश्य या तरीकों को बदलना होगा। लेकिन मूल्यांकन करना और बच्चों को फेल करना समानार्थी नहीं है। मूल्यांकन करके यह समझा जा सकता है कि बच्चे कितना सीखे हैं, मगर न सीखने पर बच्चों को प्रताड़ित करना अलग बात है।

अगली दलील है कि जो बच्चे पिछली कक्षा की बात नहीं सीखे हैं वे अगली कक्षा में और पिछड़ जाएंगे। अत: उसी कक्षा में रोकने से उन्हें फायदा होगा। यहां मान्यता यह है कि उसी तरीके से वही विषयवस्तु दोहराकर विद्यार्थी सीख जाएंगे। इस पहलू को लेकर कई देशों में विस्तृत अध्ययन हुए हैं। उनके नतीजों का निष्कर्ष यही है कि बच्चे जो

किसी कक्ष में सीख नहीं पाते हैं, उन्हें फेल करके रोकने से भी सीखते नहीं हैं। उनकी विशिष्ट समस्या को पहचानकर विशेष शिक्षण देने से वे जरूरी समझ के साथ अगली कक्षा में प्रवेश कर सकेंगे।

आम तौर पर एक कक्षा में हम जो सीखते हैं उसके बहुत कम अंश अगली कक्षा के लिए अनिवार्य बुनियाद होते हैं। कई अवधारणाएं व कुशलताएं ऐसी होती हैं जो एकमुश्त आत्मसात नहीं होती और बार-बार लौटकर पुख्ता करनी पड़ती हैं। अत: बच्चों को किन्हीं अवधारणाओं को न सीखने के कारण फेल करके रोकना अनुचित है।

लेकिन यहां हमें यह ध्यान रखना होगा कि अपने-आपको बेहिचक व्यक्त कर पाना, पढ़ना-लिखना व कुछ बुनियादी गणितीय कौशल कक्षा-4 से अनिवार्य हो जाते हैं और जो बच्चे इन कौशलों को हासिल नहीं कर पाते हैं। वे कक्षा गतिविधियों में पिछड़ने लगते हैं। अत: यह सुनिश्चित करना जरूरी है कि चौथी कक्षा तक सभी बच्चे पढ़ना-लिखना आदि सीख जाएं।

कई शिक्षा प्रशासक यह दलील भी देते हैं कि परीक्षा होने पर ही शिक्षक अपने शैक्षणिक कार्य के प्रति गंभीर होंगे। लेकिन जाहिर है कि अगर शिक्षक खुद ही परीक्षा लेते हैं और बच्चों के फेल होने पर उनसे जवाबतलब किया जाएगा, तो शिक्षक सारे बच्चों को पास करवा देंगे। यह बाह्य बोर्ड परीक्षा का बहाना बन जाता है। आजकल कई राज्यों के प्रशासक और राजनेता यह कहते हुए देखे जा सकते हैं कि आठवीं और पांचवीं में बोर्ड परीक्षा होनी चाहिए और बच्चों को फेल करने का प्रावधान होना चाहिए। इस नौकरशाही मानसिकता की बुनियाद में गहरा अविश्वास है: शिक्षकों के प्रति और अपने द्वारा संचालित पूरे तंत्र के प्रति। इसके लिए वही तंत्र काफी हद तक जिम्मेदार है, क्योंकि शिक्षकों को समय-समय पर कई प्रकार के गैर-शैक्षणिक काम में उलझा कर रखा जाता है। इस कारण पूरे शिक्षा तंत्र में यह विचार व्याप्त है कि शिक्षक बच्चों को सामान्यतया तो पढ़ाएंगे नहीं, केवल विशेष परिस्थितियों में (जैसे बोर्ड परीक्षा) में पढ़ाएंगे। आम अनुभव है कि बाह्य परीक्षाओं को गंभीरता से लिया जाता है, मगर उतनी ही गंभीरता के साथ उनके तोड़ भी निकाले जाते हैं। टवेन्टी क्वेश्चन, प्रश्न पत्र आउट करना, नकल करना, सामूहिक नकल, बोर्ड पर उत्तर लिखवाकर बोर्ड परीक्षा करवाना, उत्तर पुस्तिकाओं की जंचाई में हस्तक्षेप आदि इसी के विभिन्न रूप हैं।

जब तक शाला और शिक्षकों को जिम्मेदारी नहीं सौंपेंगे और उन पर भरोसा नहीं करेंगे, तब तक बाह्य हस्तक्षेप, बोर्ड परीक्षा आदि का ढोंग ही कर सकते हैं। जाहिर है कि जिस व्यवस्था में शिक्षकों के सशक्तिकरण, उचित शिक्षण प्रशिक्षण आदि में पर्याप्त निवेश करना या उन पर जिम्मेदारी छोड़ना भी संभव नहीं होगा। बोर्ड परीक्षा तो पूरी व्यवस्था को विकृत कर देती है। जहां भी बोर्ड परीक्षा की व्यवस्था है वहां के लोग यह बखूबी जानते हैं कि बोर्ड क्लास में ही पढ़ाई करवाई जाती है। बोर्ड कक्षाओं में भी पढ़ाई मात्र परीक्षा की तैयारी के लिए होती है, न कि विषयवस्तु की समझ या उपयोग पर केंद्रित। इस पूरे प्रकरण में बच्चों पर जो असर होता है वह एक राष्ट्रीय आपदा से कम नहीं है।

फेल न करने के पक्ष में

पहली बात तो यह है कि किसी बच्चे के सीखने या न सीखने में उसके प्रयास से कहीं अधिक जिम्मेदारी शिक्षक और शैक्षिक व्यवस्था की है, क्योंकि पाठ्यक्रम निर्धारण वे ही करते हैं। ऐसे में न सीखने का पूरा दोष बच्चे पर मढ़कर बाकी सब बरी हो जाते हैं। जब हम किसी बच्चे को फेल करते हैं तो इसे उसकी विफलता के लिए मिले दण्ड के रूप में देखा जाता है। अगर वे किन्हीं कारणों से निर्धारित शैक्षणिक उपलब्धि हासिल नहीं करते, तो उन्हें दण्डित करना सर्वथा अन्याय-पूर्ण है।

यह दलील दी जा सकती है कि स्कूल में फेल करना दण्ड नहीं, सीखने का एक और मौका है, लेकिन हम सब जानते हैं कि सच्चाई क्या है। फेल होने के कई निहितार्थ हैं-बच्चे को नाकामयाब और निकम्मा माना जाता है, उसे अपने हमउम्र साथियों से अलग करके कम उम्र के बच्चों के साथ पढ़ने के लिए विवश किया जाता है। कक्षा में उसे लगातार दूसरे बच्चों व शिक्षकों एवं रिश्तेदारों के तानों का सामना करना पड़ता है, जो हीनभावना पैदा करता है। और-तो-और, उसे शिक्षा में एक अतिरिक्त वर्ष बिताना पड़ता है। माथे पर फेल होने का कलंक और एक साल खोने पर हम यह अपेक्षा कैसे करें कि वे श्रद्धा और उत्साह के साथ सीखेंगे। ऐसे ज्यादातर बच्चे अंत में शाला ही त्याग देते हैं। पांचवीं और आठवीं में ज्यादातर बच्चों के शाला त्यागने के पीछे यह एक बहुत बड़ा कारण रहा है।

बच्चे तब सीखते हैं, जब उनमें उत्साह और आत्मविश्वास होता है। सीखना दरअसल हर बच्चे के जहन में ज्ञान के निर्माण से होता है जो जोर-जबरदस्ती से नहीं, स्वेच्छा और विश्वास से संभव होता है। जब हम बच्चों को फेल करते हैं तो उनका यह उत्साह और मनोबल टूटता है और बच्चे यह मानने लगते हैं कि वे सीख ही नहीं सकते।

फेल करने का एक सामाजिक पक्ष भी होता है। क्या हर सामाजिक वर्ग के बच्चे एक-से अनुपात में फेल होते हैं? फेल होने वाले बच्चे आमतौर पर अपेक्षाकृत कमजोर सामाजिक वर्ग के ही होते हैं। अगर हम अपने ही समाज में यह जांचें कि कौन-से बच्चे किसी कक्षा के सीखने के स्तर पर नहीं पहुंच पाए हैं, तो हम पाएंगे कि वे अधिकतर दलित, आदिवासी, गरीब होंगे या फिर भिन्न-सक्षम होंगे। हमारी पाठ्यचर्या यह मानकर बनाई जाती है कि सभी बच्चों को वह सांस्कृतिक पूंजी उपलब्ध है जो मध्य वर्ग के बच्चों के पास है, लेकिन ऐसा नहीं है। हमारे देश में सरकारी स्कूलों में पढ़ने वाले अधिकांश बच्चे बिल्कुल गरीब तबके के हैं, सुदूर अंचल के हैं और निरक्षर परिवारों से हैं-उन्हें कितनी शिद्दत से हमारे स्कूलों में पढ़ाया जाता है, यह किसी से छिपा नहीं है। लेकिन उन्हें फेल करने को सब आतुर हैं। ऐसा क्यों?

हमारे संवैधानिक ढांचे में सबको समान अवसर दिलाना एक बुनियादी वादा है। समान अवसर का मतलब है कि किसी भी सामाजिक पृष्ठभूमि में जन्मा व्यक्ति, चाहे वह महिला हो या पुरुष या ट्रांस-जेंडर या भिन्न-सक्षम हो, उसे समाज में किसी भी पद या हैसियत पाने की अर्हता होगी, लेकिन ये पद आदि प्राप्त करने के लिए कुछ शैक्षणिक उपाधियों व उपलब्धियों की जरूरत होती है। जब गरीब व वंचित तबके के बच्चों को फेल किया जाता है तो उनके लिए ये दरवाजे बंद हो जाते हैं। फेल-पास व्यवस्था की एक खूबी यह है कि समाज इसकी जिम्मेवारी से अपने-आपको बचा लेता है-जो बच्चे फेल घोषित किए जाते हैं, यह दोष उन्हीं के सर पर मढ़ा जाता है।

अगर विद्यार्थियों को पास-फेल नहीं करना है तो मूल्यांकन की क्या भूमिका होगी? शिक्षा अधिकार अधिनियम में सतत् और समग्र मूल्यांकन की बात की गई है। सतत् मूल्यांकन का तात्पर्य यह नहीं है कि बच्चों को आए दिन टेस्ट दिए जाएं। इसका वास्तविक आशय है कि कक्षा में बच्चों की भागीदारी और प्रगति पर सतत् नजर रखना। अगर उन्हें सीखने में कठिनाई हो रही है तो उसे पहचानना और समय रहते उसका निराकरण खोजना। सतत् मूल्यांकन शिक्षकों के लिए है, ताकि वे अपने शैक्षणिक प्रयासों के प्रभाव को देख सकें और जरूरत पड़ने पर उपचारात्मक कदम उठाएं। इसका उपयोग शिक्षक की स्वतंत्रता को बढ़ाने के लिए है, उसे नष्ट करने के लिए नहीं। इसी तरह इसका उपयोग बच्चों के न सीखने पर उसे प्रताड़ित करने के लिए नहीं, बल्कि वे जो सीख पाते हैं, उसे सराहने के लिए है।

बच्चों को साल के अंत में एक-मुश्त जांच कर उन्हें पास-फेल करने की जगह लगातार उनके सीखने पर नजर रखकर उनकी मदद करना इसका उद्देश्य है। यह शिक्षक द्वारा किया जाना है जो हरेक बच्चे और उसकी निजी परिस्थिति को समझता है और यह समझ पाता है कि अगर बच्चे ने कोई नया प्रयास किया तो वह किन कठिनाइयों के बीच।

सतत् आंकलन समग्र ही हो सकता है, वह संकीर्ण नहीं हो सकता, क्योंकि शिक्षा केवल चंद अक्षरों को लिखने की क्षमता हासिल करना नहीं है। समग्र से तात्पर्य है कि यह कुछ सीमित शैक्षणिक उद्देश्यों का नहीं,बल्कि बच्चों के हर तरह के प्रयासों का आंकलन है-बच्चे कक्षा में कैसे बैठते हैं, कब, कैसे और कितना बोलते हैं, कितने लोगों से दोस्ती करते हैं, खेलते कैसे हैं से लेकर वे पढ़ने-लिखने, या जोड़ने-घटाने या चित्र बनाने में, कविता या गीत गाने में, अभिनय में, प्रयोग करने में क्या करते हैं। यह सब तब तक संभव नहीं है, जब तक हम हर शाला में पर्याप्त शिक्षकों की व्यवस्था न करें और सेवाशर्तें उपलब्ध न कराएं। परीक्षा पास-फेल शिक्षकों के सशक्तिकरण का विकल्प कतई नहीं बन सकते हैं।

साभार : संदर्भ

●

रपट

कालांवाली में नाटकों का आयोजन

शहीदों की विरासत संभालने का प्रयास

23 मार्च को शहीदी दिवस के उपलक्ष्य में शहीद यादगार समिति, कालांवाली (सिरसा) ने अनाज मंडी में विशाल नाटक मेले का आयोजन किया जिसमें स्थानीय लोगों के साथ-साथ बड़ी संख्या में अध्यापकों, स्कूली विद्यार्थियों व महिलाओं ने भाग लिया।

नाटकों में नेती थियेटर ग्रुप पटियाला के निर्देशक व रंगकर्मी बलविन्द्र बुल्ट के निर्देशन में पहला नाटक 'ऐह केही रुत आई' खेला गया, जिसमें नशे के सौदागरों द्वारा देश की जवानी को बर्बाद करने की घिनौनी चाल का पर्दाफाश किया गया और साथ ही सम्पत्ति व परिवार के सत्ता संबंधों में कन्या भ्रूण-हत्या जैसे संवेदनशील मसले पर भी दर्शकों को आगाह किया गया।

दूसरे नाटक 'तैं की दर्द न आया' में खेत मजदूरों, जो कि आर्थिक और सामाजिक तौर पर बिल्कुल हाशिए पर जी रहे हैं, के प्रति इसी दोहरे आधार पर शोषण के चक्र को चलता दिखाया गया। खासकर तब जब वे एकजुट होकर न्यूनतम मानवीय जीवन की मांग करते हैं तो सबके लिए यह असहनीय हो जाता है। जातिवाद और पूंजी संबंधों को स्पष्ट दिखाने वाले इस नाटक का प्रभाव इतना जोरदार रहा कि जो लोग संवेदनशील थे, वे जनता के इस वर्ग की हालत देखकर झझकोरे गए।

इस दौरान स्कूली विद्यार्थियों की भगत सिंह के जीवन व शहादत पर आधारित कोरियोग्राफी व गीतों द्वारा इसमें सक्रिय भागीदारी रही। मुख्य वक्ता प्रमोद गौरी ने वक्तव्य देते हुए भगत सिंह की रचनाओं का उल्लेख किया और उनसे संदर्भ देते हुए कहा कि जनता को बाद भी वह जीवन जीना नसीब नहीं हुआ जिसकी कल्पना भगत सिंह व अन्य क्रांतिकारी स्वतंत्रता सेनानियों ने की थी। भगत सिंह की आजादी आम लोगों, मजदूरों, किसानों, महिलाओं की आजादी थी। राजनीति सब तय करती है कि देश के अमीर से अमीर और गरीब से गरीब के भाग्य में क्या लिखा है। राजनीतिक निर्णयों द्वारा ही लोगों का भाग्य बदला जा सकता है। जिस वर्ग के पास निर्णय लेने की राजनीतिक शक्ति होती है वह अपने वर्ग के हितों की पूर्ति करता है। अत: आम जन को वर्ग चेतना की जरूरत है जो राजनीतिक चेतना का आधार है।

मंच संचालन मास्टर बूटा सिंह द्वारा किया गया और समिति के संयोजक व वरिष्ठ पत्रकार भूपिन्द्र पन्नीवालिया ने उपस्थित दर्शकों का स्वागत किया व समिति के लक्ष्य, उद्देश्य से परिचय करवाया। इस अवसर पर पुस्तक प्रदर्शनी भी लगाई गई जिसमें बीस हजार रुपये से ज्यादा के साहित्य की बिक्री हुई। विशाल जनसमूह के उत्साह को देखते हुए यह लगा कि लोग वास्तव में वैकल्पिक संस्कृति के महत्व को समझते हैं और उसे बढ़ता देखना चाहते हैं। जरूरत ऐसे कार्यक्रमों के लगातार आयोजन की है।

रछपाल सिंह प्रवक्ता पंजाबी रा.उ.वि. कुरंगावाली-9466373600

गांधी स्कूल एक उम्मीद

नरेश शर्मा

पढ़ेंगे पढ़ाएंगे,
जीवन सफल बनाएंगे,
जहाज भी उड़ाएंगे,
हम भी मास्टर बन जाएंगे,
लड़का-लड़की एक समान,
हम सब एक हैं,

जैसे सलोगन प्रवासी मजदूरों के बच्चों के लिए शाम को चलने वाले गांधी स्कूल के प्रेरक बिंदू हैं। 'दरिया की कसम,मौजों की कसम, ये ताना-बाना बदलेगा गीत के साथ होता है, शाम के समय पढ़ने-लिखने का सिलसिला।'

अप्रैल 2005 में सैक्टर 4 की हाउसिंग बोर्ड कालोनी में एक निर्माणाधीन मकान मालिक द्वारा एक प्रवासी मजदूर के 8 वर्षीय बच्चे को टूटी चोरी के इलजाम में पीटते हुए पुलिस चौकी में लाया जा रहा था। बच्चे के माता-पिता उसे छोड़ देने के लिए गिड़गिड़ा रहे थे। वहां से गुजरते हुए यह देखकर,मैंने बीच-बचाव करने का प्रयास किया तो मकान मालिक भड़क उठा, तुम जैसों ने इनको सिर पर बैठा रखा है,ये चोरी करते हैं,अपराध करते हैं, आया इनका हमदर्द बनकर! यह घटना बार-बार याद आती रही। ऐसे बच्चों की शिक्षा को लेकर कुछ करने का दिमाग में जच गया। पीटे गए प्रवासी बच्चे के माता-पिता व अन्य प्रवासी मजदूरों से बच्चों की पढ़ाई बारे बातचीत करने शाम को उनके घरों में पंहुचा। कुछ ने सहमति जताई। अगले दिन सुबह बच्चे कंचे खेलते और रद्दी उठाते हुए मिले। उनसे प्यार-दुलार करते हुए कुछ बात हुई,कुछ समय साथ खेलने से थोड़ी दोस्ती बनी। अगले दिन मिलने का समय तय हुआ। आरती, रामनारायण व अर्जुन तीन बच्चे पढ़ने के लिए आए। अगली सुबह 5 और धीरे-धीरे 6 महीनों में बच्चों की संख्या 25 हो गई। शुरूआती 6 महीने चौराहे के फुटपाथ पर सुबह के समय क्लास चली। धीरे-धीरे यह क्लास स्थान बदलते-बदलते गांधी स्कूल में बदल गई। प्रोफेसर सूरजभान कई दिन तक बच्चों को पढ़ाने आते रहे।

अब सामने सैक्टर 4 के एक कोठी मालिक ने प्रवासी मजदूरों के प्रति अपने पूर्वाग्रहों के चलते इस प्रयास का विरोध करना शुरू कर दिया। ये बच्चे यहां गंदगी फैलाते हैं, शोर करते हैं, हमारे बच्चे पढ़ नहीं पाते, इन्हें पढ़ाकर क्या डी.सी. बनाओगे? आखिरकार यहां से क्लास को उठाना पड़ा। पिछले 10 वर्षों के दौरान गांधी स्कूल की इस क्लास को 6 स्थान बदलने पड़े। पिछले 2 साल से एक पार्क में खंभे के नीचे शाम को लाईट की रोशनी में गांधी स्कूल चल रहा है। फिलहाल 40 से 60 के बीच प्रवासी मजदूरों के बच्चे गांधी स्कूल में नियमित पढ़ने आते हैं। यहां पर भी सामने का एक पड़ौसी गाहे-बगाहे शराब पीकर बच्चों को गालियां निकालता ही रहता है। प्रवासी मजदूरों के अधिकतर बच्चों को अपने छोटे भाईयों-बहनों को रखने के लिए निर्माणाधीन स्थल पर अभिभावकों के साथ जाना पड़ता था, अब धीरे-धीरे गांधी स्कूल के प्रयास से इन बच्चों का रास्ता स्कूल की ओर खुलता जा रहा है। सभी बच्चे दलित व अल्प संख्यक समुदाय से संबंध रखते हैं जिसमें लड़कियों की संख्या अधिक है।

बच्चों के अभिभावकों से निरंतर बातचीत करते हुए साल भर के भीतर दो कि.मी. दूर स्थित सरकारी स्कूल में बच्चों को दाखिल कराया गया। स्कूल शिक्षकों का रवैया भी इन बच्चों के प्रति चलताऊ बना रहता है। पहचान पत्र, राशन कार्ड,जाति प्रमाण पत्र और आधार कार्ड जैसी शर्तों से इन बच्चों को स्कूलों में भारी परेशानियों से गुजरना पड़ता है। प्रवासी पृष्ठभूमि होने के चलते स्कूल में इन बच्चों को सजा देने और गालियां निकालने जैसे अभ्यास चलते रहते हैं। इसके साथ ही अपनी कक्षा की संख्या बनाए रखने के लिए स्कूल शिक्षकों को इन बच्चों की जरूरत भी बनी रहती है। दिहाड़ी न मिलने पर फीस जमा न करा पाने,बीमार पड़ने,कुछ दिन के लिए गांव

चले जाने की स्थिति में स्कूल से नाम कटने की समस्या बार-बार सामने आती है। सरकारी स्कूलों में आनलाइन बच्चों की हाजरी भेजने के नियम का हवाला देकर इन बच्चों की पीड़ाएं बढ़ा दी जाती हैं और कुछ बच्चे ऐसे कटु अनुभवों से गुजरते हुए स्कूल छोड़कर दिहाड़ी पर जाने लगे।

सामाजिक क्षेत्र में सक्रिय कार्यकर्ता, डाक्टर ,शिक्षाविद् व भलाई की दृष्टि रखने वाले कई नागरिकों की गांधी स्कूल के बच्चों के लिए कापी, पैंसिल, सर्दी के कपड़े ,दरी, बैग व जूतों जैसी जरूरतों को पूरा करने में उत्साह देने वाली भागीदारी रहती है। स्कूल से आने पर कई लड़कियां पड़ोस के दर्जी के पास कपड़ों की तुरपाई का काम कर लेती हैं। एक सूट की तुरपाई के बदले 10 रूपए मिल जाते हैं। कुछ बच्चे छुट्टी वाले दिन मजदूरी करके परिवार की कुछ जरूरतें पूरा करने में सहयोग करते हैं। घरों में झाड़ू-पोचा करने वाली कुछ युवा लड़कियां व मजदूर महिलाएं भी इस क्लास में चाव के साथ पढ़ने आती हैं। ज्यादातर प्रवासी मजदूरों में पिछड़ेपन के चलते विशेषकर लड़कियों में बाल विवाह करने का प्रचलन मौजूद है। शिक्षा के उजाले को महसूस करते हुए गांधी स्कूल की 13 से 17 वर्ष के आयु समूह की 6 छात्राएं मजबूती के साथ फिलहाल शादी न करवाने के लिए अभिभावको से संघर्ष कर रही हैं। अनेक मौकों पर प्रवासी बच्चों और उनके अभिभावकों के बीमार होने की स्थिति में मेडिकल ले जाना, आंखों व दातों का कैम्प लगवाना, सर्दी के कपड़े,दरी व स्टेशनरी एकत्रित करने जैसे कार्यों में जुटना पड़ता है। इस प्रकार के जुड़ाव से गांधी स्कूल के प्रति प्रवासी मजदूरों का विश्वास गाढ़ा हुआ है।

प्राकृतिक आपदाओं में पीड़ितों के लिए राहत राशि जुटाना, महिलाओं और लड़कियों पर होने वाले अपराधों के विरोध में मार्च निकालना, लैंगिक संवेदनशीलता का वातावरण बनाने और सामाजिक सुरक्षा जैसे मुद्दों पर गांधी स्कूल के बच्चों का सक्रिय हस्तक्षेप रहता है। युसुफजई मलाला के समर्थन में गांधी स्कूल के बच्चों ने एकजुटता रैली आयोजित की। नए आने वाले प्रवासी बच्चों को स्कूल में शामिल करने के लिए महीने में बस्ती में रैली निकाली जाती है। तीज और ईद मिलन एक साथ होता है। दो बच्चों पूनम व भूपेन्द्र को इस बार राष्ट्रीय मींस कम मैरिट सर्टिफिकेट स्कोलरशिप मिला है।

बच्चों की संख्या बढ़ते जाने से, वालिंटियरों की कमी और खुद की 50 से 60 बच्चों को अकेले संभालने की सीमाओं के चलते गंभीर रचनात्मक तौर-तरीके विकसित नहीं हो पाए हैं। कुछ प्यार, दुलार, नई-नई बात,गीत,खेल,नाटक और ड्राईंग करते हुए सीखने की ललक पैदा करने के प्रयास जारी हैं। गलत लिखने-पढ़ने पर भी शाबाशी मिलती है और अगली बार उंगली सही जगह चलती है। बीच-बीच में राहुल व संतोष जी जैसे स्वयंसेवियों का गांधी स्कूल में शिक्षक के तौर पर महत्वपूर्ण योगदान रहता है। सरकारी स्कूलों में मिलने वाले मिड डे मील,ड्रैस,किताबें और वजीफे जैसे प्रावधान प्रवासी मजदूरों के बच्चों को स्कूल पंहुचने में महत्वपूर्ण कारक बने हुए हैं।

'बहुत ज्यादा नहीं तो कुछ कदम तो आगे रखे जाएंगे। परदेश आकर प्रवासी मजदूरों के बच्चों का पहला समूह दसवीं व ग्यारहवीं कक्षा तक आ पंहुचा है, नियमित रूप से इन बच्चों के साथ काम करते हुए और इनकी बहुआयामी प्रतिभा से साक्षात होते हुए दिमाग रोशन रहता है।'

हरियाणा, दिल्ली और इसके आस-पास लाखों की संख्या में प्रवासी मजदूर निर्माण और कृषि सहित भांत-भांत के कार्य करते हुए अपनी रोजी-रोटी के जुगाड़ में जी तोड़ मेहनत करते हैं। कोसों दूर चलकर आने वाले इन प्रवासी मजदूरों को यहां पर अनेक तरह से पीड़ादायक सामाजिक,आर्थिक और सांस्कृतिक भेदभाव का शिकार होना पड़ता है। इनके साथ गाली-गलौच, मार-पिटाई व दिहाड़ी के मारे जाने जैसी घटनाएं आमतौर पर सामने आती रहती हैं। कई मौकों पर मध्यमवर्गीय आबादी का रूख इन प्रवासी मजदूरों के प्रति हिकारत व भेदभाव का बना रहता है। इनके प्रति प्रदेश के रोजगार को हड़पने वाले,गंदगी फैलाने वाले, चोरी व अपराधों के जिम्मेदार होने की धारणाएं व्यापक तौर पर देखी जा सकती हैं। जीरी लगाने के समय तो खेतों में खाली पड़े कोठड़े ही इन मजदूरों का बसेरा रहता है। शहरों के बाहरी इलाकों की बस्तियों में प्रवासी मजदूरों को किराए पर देने के उद्देश्य से छोटे-छोटे कमरों की लंबी कतारें बनी हुई दिखती हैं। इन प्रवासी मजदूरों के कई-कई कमरों के बीच एक या दो साझा शौचालय व हैंड पंप बना दिए जाते हैं। प्रवासी मजदूरों को लक्षित करके स्थानीय आबादी में से दुकानें बना ली जाती है जहां पर खाद्यान्न के सामान की गुणवता व भाव में इन मजदूरों का जमकर शोषण होता है। एक छोटे से कमरे में तीन-चार मजदूर भी रहते हुए मिल जाएंगे। कमरे का किराया बचाने के लिए टूटी-फूटी हालत में खाली पड़े कमरों में रैन बसेरा होने पर सांप के काटने और सर्दियों में कोयले से सुलगने वाली भट्ठी की गैस से दम घुटने से प्रवासी मजदूरों की होने वाली मौंतो की घटनाएं भी सुनने में आती हैं। वर्षों की रिहायश होने पर भी ज्यादातर प्रवासी मजदूरों के राशन कार्ड, वोटर पहचान पत्र,आधार कार्ड व जाति प्रमाण पत्र नही बनवा पाएं है। प्रवासी होने व सामाजिक सुरक्षा के पर्याप्त कानूनों के अभाव में निर्माण स्थलों पर होने वाली दुर्घटनाओं में पीड़ित परिवारों को उचित मुआवजा भी नहीं मिल पाता। स्थानीय दबंगई द्वारा प्रवासियों के साथ क्रूर किस्म की बदसलूकी की घटनाएं भी सुनने को मिलती हैं। हमारे इस क्षेत्र में इस विमर्श की गहरी जरूरत है कि मीलों दूर चलकर आने वाले इन प्रवासी वंचितों के प्रति संकीर्णताएं छोड़कर न्याय और बराबरी की नजर पैदा हो।

सम्पर्क: 9416267986

●

जोतिबा फुले पुस्तकालय बना सामाजिक सांस्कृतिक गतिविधियों का केंद्र

मलखान सिंह

गांव दयौरा (कैथल) के युवाओं ने 13 सितम्बर, 2015 को जोतिबा फुले पुस्तकालय खोलकर समाज में बदलाव का जो सपना देखा था, उस सपने ने अब ठोस रूप ग्रहण कर लिया है। युवा लड़कियों एवं लड़कों की सक्रिय भागीदारी ने पुस्तकालय को जीवंत व गतिशील बनाया है। पुस्तकालय में हर रोज युवाओं की उपस्थिति से और आपसी चर्चा-बहसों से एक वैचारिक माहौल बन रहा है। जिसका असर पूरे गांव पर दिखाई दे रहा है। समय-समय पर होने वाली सामाजिक-सांस्कृतिक गतिविधियों ने जोतिबा फुले पुस्तकालय को जीवंत बनाने और आगे बढ़ने में योगदान दिया है। पुस्तकाय में 28 सितम्बर, 2015 को शहीद भगत सिंह जयंती तथा 3 जनवरी, 2016 को सावित्री बाई फुले जयंती मनाई गई। बीच-बीच में गोष्ठियां हुई। इसी कड़ी में मार्च-अप्रैल 2016 में हुए कार्यक्रमों की एक संक्षिप्त रिपोर्ट प्रस्तुत है।

7 मार्च, 2016 को अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस की पूर्व संध्या पर महिला दिवस मनाया गया। इस अवसर पर गांव की 200 महिलाओं ने भाग लिया। इस दिवस पर युवा लड़कियों एवं लड़कों ने कविता, लोकगीतों, रागनी के माध्यम से महिलाओं की समाज में दुर्दशा एवं उनकी विद्रोही चेतना को उद्घाटित किया। मुख्य वक्ता के तौर पर मलखान सिंह ने पितृसतात्मक समाज की साजिशों को सामने रखते हुए कहा कि औरत को केवल बच्चे पैदा करने की मशीन और घर तक सीमित रहने वाली बेजुबान गुड़िया बनाया गया। घर और खेत में चौबीस घंटे काम करने के बावजूद उनके काम की कोई कीमत नहीं है। उन्होंने कहा कि दुनिया में कमजोर चीजों के अधिकतर नाम स्त्रीलिंग से जुड़े हैं। गालियां भी औरत के अंगों से जुड़ी हैं। उन्होंने कहा कि लड़कियों की शारीरिक समस्याओं की ओर हमारा कोई ध्यान नहीं जाता, जिससे उन्हें चक्कर आते हैं। मिरगी के दौरे पड़ते हैं, खून की कमी होती है। लड़कियों की समस्याओं पर हमारे घरों में चर्चा होनी चाहिए। अब महिलाओं को चुप्पी तोड़ कर पितृसत्तात्मक समाज की बनाई चारदिवारी को ढहाना होगा, तभी हम महिला-पुरुष के लिए बेहतर समाज बना सकते हैं।

रामगोपाल ने महिलाओं के रचनात्मक पहलुओं पर बात रखी कि किस तरह औरतें घर व समाज में अहम् भूमिका निभाती हैं। मास्टर रामफल ने महिलाओं की गुलामी को सदियों से चली आ रही दलितों की गुलामी से जोड़कर बताया कि औरतों को दलितों की तरह मानसिक व सामाजिक गुलामी को तोड़ना होगा। उन रीति-रिवाजों को बदलना होगा, जिनकी वजह से उन्हें गुलाम बनाया गया। उन्होंने कहा कि घुंघट निकालना, सिंदूर लगाना, मंगल सूत्र पहनना सारे रिवाज स्त्री को ढोने पड़ते हैं, पुरुष को नहीं। औरतों के हकों की लड़ाई स्त्री-पुरुष की सांझी लड़ाई है।

●

23 मार्च, 2016 को जोतिबा फुले पुस्तकाय में शहीदी दिवस मनाया गया। मंच संचालन मास्टर रामफल ने किया। मुख्य वक्ता हरियाणा विद्यालय अध्यापक संघ के राज्य सचिव कंवरजीत सिंह थे। इस अवसर पर हिम्मत सिंह ने भगत सिंह पर पंडित मांगे राम और मुकेश यादव द्वारा लिखी रागनियों को गाया। मुख्य वक्ता कंवरजीत ने कहा कि दुनिया में दो ही कौम हैं, एक लूटने वाली, दूसरी लुटने वाली। जब तक दुनिया में ये हालात रहेंगे, तब तक भगत सिंह के विचारों की जरूरत रहेगी। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि मैं नास्तिक क्यों हूं और अछूत का सवाल जैसे लेख स्कूली शिक्षा में शामिल होने चाहिएं, ताकि आने वाली पीढ़ियां उनके विचारों से रूबरू हो सकें। उन्होंने कहा कि भगत सिंह और सुखदेव का साम्प्रदायिकता, जातिवाद, धर्म एवं राष्ट्रीय समस्याओं पर स्पष्ट दृष्टिकोण था।

युवा लेखक मलखान सिंह ने कहा कि शहीदों ने आजादी का जो सपना देखा था, वो आज भी अधूरा है। सिर्फ चेहरे बदले हैं, व्यवस्था नहीं। गुरचरण सिधाणी ने कहा कि वंचित और शोषित तबकों को मिलकर साम्राज्यवादी और पूंजीवादी व्यवस्था से लड़ना होगा, तभी शहीदों का सपना साकार होगा।

गांव के युवा सरपंच सुनील कुमार ने भी अपने विचार रखे। इस अवसर पर गांव के 300 युवा लड़के-लड़कियां और बुजुर्ग मौजूद थे। पुस्तकालय की संयुक्त सचिव सीमा ने बाहर से आए वक्ताओं और गांववासियों का धन्यवाद किया।

●

9 अप्रैल 2016 को जोतिबा फुले और डा. आम्बेडकर जयंती के अवसर पर 'जोतिबा, आम्बेडकर और हमारा समाज' विषय पर सेमिनार

आयोजित किया गया।

इस सेमिनार में मुख्य वक्ता 'देस हरियाणा' पत्रिका के सम्पादक प्रोफेसर सुभाष चंद्र थे। युवा लड़की रीना ने कहा कि कब तक समाज में लड़कियों की पीड़ा व तकलीफ को अनदेखा किया जाएगा। उनको कब बराबरी का दर्जा मिलेगा। ज्ञान-विज्ञान समिति के सदस्य अमृत लाल ने फुले व आम्बेडकर के संघर्ष व लड़ाई पर विचार रखते हुए कहा कि आज के समाज में उनके विचारों की कितनी जरूरत है। उन्होंने सावित्री बाई फुले व जोतिबा फुले के द्वारा 1848 में दलितों व महिलाओं के लिए देश में प्रथम स्कूल खोलने व 1873 में सत्य शोधक समाज की स्थापना पर अपने विचार रखे।

'लोक गीतों का बुगचा' किताब की संकलनकर्त्ता शोधार्थी निर्मल ने 'पाड़ बगा दो री बहना चुप की चुनरिया' रागनी पर महिलाओं ने खूब तालियां बजाई। महिलाओं ने निर्मल का खूब साथ दिया। हाईकोर्ट के वकील रवि प्रकाश ने अंधविश्वास पर विचार रखे। बामसेफ के सदस्य सुरेश द्रविड़ ने कहा कि भारत में दलित व बहुजन तबका हमेशा स्वर्ण समाज की उपेक्षा व शोषण का शिकार रहा है। उनको हमेशा अनुयायियों ने अनेक पाखंड व षड्यंत्र रचकर हाशिये पर रखा है। प्रोफेसर सुभाष ने फुले व आम्बेडकर के परिवर्तन और गतिशील विचारों को लोगों के सामने रखा। हमारा समाज, पितृसत्तात्मक और वर्ण व्यवस्था पर टिका हुआ है। इसे फुले व आम्बेडकर के विचारों के साथ आगे बढ़ाकर ही खत्म किया जा सकता है।

इस अवसर पर पुस्तकालय की चेयरमैन सुमन, संचालक ईश्वर, मलखान सिंह, राजेश, गौतम, रामगोपाल, बधराज, प्रवीण, गुरचरण सिंधानी, सोहन, पवन, राजेश शोधार्थी, राजू, हिम्मत, मधु, रीना, सत्या, रीतू, सुलतान, जसवंत, दर्शन, काजल, मा. बलवान, संजीव कुमार व गांव के अन्य लगभग 300 महिलाएं व पुरुषों ने भाग लिया।

●

11 अप्रैल 2016 को सेमीनार में मुख्य वक्ता शहीद भगत सिंह मंच के राष्ट्रीय संयोजक एवं जनसंघर्ष समिति के सलाहकार कामरेड श्याम सुंदर ने कहा कि जोतिबा फूले ने सामाजिक बदलाव के लिए 1873 में सत्यशोधक समाज की स्थापना की। उन्होंने कहा कि आम्बेडकर आजादी, समानता एवं भाईचारे पर आधारित समाज की स्थापना करना चाहते थे, जिसके लिए उन्होंने ताउम्र संघर्ष किया। उन्होंने कहा कि पूंजीवादी दौर को खत्म करने के लिए हमें भगत सिंह, आम्बेडकर, मार्क्स के विचारों को अपनाना होगा।

जन संघर्ष समिति के अध्यक्ष फूल सिंह गौतम ने कहा कि जोतिबा फूले ने पुरोहित वर्ग और जमींदारों, सूदखोरों के खिलाफ आंदोलन खड़ा किया। डीवाईएफआई के जिला सचिव कुलदीप ने कहा कि आज मजदूर-किसान आत्महत्याएं कर रहे हैं। दलितों पर अत्याचार बढ़ रहे हैं।

मंच संचालक रामगोपाल ने कहा कि सम्राट अशोक की न्याय व्यवस्था एवं सुशासन पर चर्चा की और उन्होंने बौद्ध धर्म को विश्व में फैलाया। जो धर्म समानता और विश्व बंधुत्व पर आधारित है।

●

जोतिबा फुले व बी.आर. अम्बेडकर वंचितों के प्रेरणा प्रतीक

गुरबख्श सिंह मोंगा

भवन निर्माण कामगार युनियन, सिरसा के तत्वावधान में महात्मा ज्योतिराव फुले एवं भारत रत्न भीमराव अम्बेडकर का जन्मदिन वाल्मिकी आश्रम, सिरसा में मनाया गया । पंजाब नैशनल बैंक के प्रबन्धक एवं समाज चिन्तक हरदयाल बेरी ने मुख्य वक्ता के तौर पर सभा को सम्बोधित करते हुये कहा कि ज्योतिराव फुले का पूरा जीवन प्रेरणाओं का प्रतीक है, क्योंकि उन्होने कहा था कि शिक्षा के अभाव में बुद्धि का विनाश हो जाता है, बुद्धि के अभाव में नैतिकता का पतन हो जाता है। उन्होंने बताया कि फुले ने अपने दौर में लड़कियों की शिक्षा के लिए स्कूल स्थापित किए लेकिन उन्हें समाज के विरोध का सामना करना पड़ा । इसके साथ-साथ लड़कियों को शिक्षित करने के लिए महिला शिक्षक भी नहीं थी। इसलिए उन्होंने अपनी पत्नी सावित्री बाई को शिक्षित किया। उन्हें देश की पहली महिला शिक्षक होने का गौरव प्राप्त है।

सभा के मुख्य अतिथि श्री अशोक ढोसीवाल ने अपने सम्बोधन में बताया कि महात्मा फुले एक समतामूलक और न्याय पर आधारित समाज की बात कर रहे थे इसलिए उन्होंने अपनी रचनाओं में किसानों और खेतीहर मजदूरों के लिए विस्तृत योजना का उल्लेख किया है। पशुपालन, खेती, सिंचाई व्यवस्था सबके बारें में उन्होंने विस्तार से लिखा है। गरीबों के बच्चों की शिक्षा पर उन्होंने बहुत जोर दिया । उन्होंने आज से 150 साल पहले कृषि शिक्षा के लिए विद्यालयों की स्थापना की बात की। जानकार बताते हैं कि 1875 में पुणे और अहमद नगर जिलों का जो किसानों का आन्दोलन था, वह महात्मा फुले की प्रेरणा से ही हुआ था। इस दौर के समाज सुधारकों में किसानों के बारे में विस्तार से सोच-विचार करने का रिवाज नहीं था लेकिन महात्मा फुले ने इन सबको अपने आन्दोलन का हिस्सा बनाया । स्त्रियों के बारे में महात्मा फुले के विचार क्रांतिकारी थे। मनु की व्यवस्था में सभी वर्णों की औरतें शूद्र वाली श्रेणी में गिनी गयी थीं। लेकिन फुले ने स्त्री-पुरुष को बराबर समझा। फुले ने विवाह प्रथा में बड़े सुधार की बात की। प्रचलित विवाह प्रथा में कर्मकांड में स्त्री को पुरुष के अधीन माना जाता था लेकिन महात्मा फुले का दर्शन हर स्तर पर गैर बराबरी का विरोध करता था ।

सभा की अध्यक्षता कर रहे गुरबख्श मोंगा ने अपने सम्बोधन में कहा कि महात्मा फुले का मानना था कि अशिक्षा मनुष्य के दु:खों का

मूल कारण है। फुले दम्पत्ति ने मिलकर लड़कियों के लिए 18 स्कूल खोले । निम्न जातियों को ब्राह्मणों के चंगुल से मुक्त करवाने के लिए महात्मा फुले ने 1873 में 'सत्य शोधक समाज' की स्थापना की । फुले दम्पत्ति ने अपना तमाम जीवन उच्च वर्ग के अछुतों के प्रति निरंकुशता के खिलाफ संघर्ष को समर्पित कर दिया । 28 नवम्बर, 1890 को महात्मा फुले की मृत्यु हो गई।

डॉ.अम्बेडकर के व्यक्तित्व-कृतित्व पर प्रकाश डालते हुये श्री मोंगा ने बताया कि उन्होने महात्मा बुद्ध और कबीर के बाद महात्मा फुले को तीसरा गुरू माना है। उन्होंने कहा कि डॉ.अम्बेडकर जैसे विचारशील, दूरदर्शी, मर्मज्ञ, चिंतक और महान व्यक्तित्व का प्रभाव धीरे-धीरे समाज में बढ़ रहा है, क्योंकि वे बहुत गहरी पड़ताल और छानबीन करते हैं। उनकी वैचारिकी ने भारत में धीरे-धीरे से ही सही, लेकिन एक व्यवस्थित एवं क्रांतिकारी परिवर्तन क्रमबद्ध और सुव्यवस्थित किया है।

डॉ.आम्बेडकर एक ऐसा लोकतांत्रिक समाज रचना और देखना चाहते थे, जिसमें समानता, स्वतंत्रता और भाईचारे का विचार-दर्शन हो। वे ऐसा समाज रचना चाहते थे, जिसमें आम जनता का शोषण न हो। जाति और मजहब के जहर नहीं हों। लूट-खसूट, उत्पीड़न और गैरबराबरी से समाज पूरी तरह मुक्त हो।

उपरोक्त गोष्ठी में गांव खाजाखेड़ा की छात्राओं द्वारा रोशनी की तरफ एक और प्रयास की प्रेरणा देने वाला गीत प्रस्तुत किया - 'एक जतन और, उजियारा लाने का एक जतन और।' सभा को बलबीर कौर गांधी, राजेन्द्र अहलावत व वीर शांति स्वरूप ने भी सम्बोधित किया । इस समारोह में चौधरी देवीलाल विश्वविद्यालय के पूर्व रजिस्ट्रार डॉ.मनोज सिवाच, डॉ. बलबीर सिंह, परमानन्द शास्त्री, कृष्ण सैनी, सुभाष कुमार, रमेश शास्त्री, डॉ. गांधी, हरबन्स भाटिया, राजकुमार शेखूपुरिया, अशोक पटवारी, मदन खोथ, सुरेश बरनवाल व एम.सी. राकेश कोचर आदि गणमान्य मौजूद रहे ।

●

कृषि संकट
एक व्यापक प्रश्न बने

अमन वाशिष्ठ

16 अप्रैल को 'देस हरियाणा' पत्रिका द्वारा रोहतक में एक परिचर्चा आयोजित की गयी। विषय था -'हरियाणा में खेती किसानी -अंतर्विरोध और समाधान'। इस परिचर्चा में मुख्य रूप से दो प्रश्नों पर विचार किया गया। पहला प्रश्न न्यूनतम समर्थन मूल्य और मजदूरी से सम्बन्धित था। कई बार ये संदेह उठाया जाता है कि न्यूनतम समर्थन मूल्य के बढ़ने से अनाज का जो बाजार भाव बढ़ता है उससे भूमिहीन या दिहाड़ीदार मज़दूर की दिक्कत बढ़ जाती है, चूंकि मज़दूर को तो अनाज खरीदकर ही खाना होता है।

शुरुआत में सत्यपाल खोखर ने कहा कि खेती में जो लागत बढ़ी है वो इस सारे संकट के लिए ज़िम्मेदार हैं। कम्पनियां अपने मुनाफे के लिए गैर ज़रूरी चीज़ों को खेती में फिट कर रही हैं। कृषि विभाग को जो करना चाहिए वो कर नहीं पा रहा। पूरा तंत्र प्राइवेट कम्पनियों के आगे झुक चुका है। इसलिए जब तक 'इनपुट' यानी लागत कम नहीं होती तब तक स्थायी समाधान नहीं हो सकता। रविंदर खत्री ने सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अंतर्गत राशन डिपो की भूमिका पर जोर देते हुए कहा कि सरकार मामूली दामों पर राशन डिपो के द्वारा अनाज उपलब्ध करवाती है। इसलिए मज़दूर के लिए समाधान यही हो सकता है कि राशन डिपो सुचारु रूप से काम करें। सुधीर दांगी ने ये बिंदु रखा कि एग्रीकल्चर का मतलब एग्रो-इंडस्ट्री हो गया है और किसान तक सब्सिडी पहुंच ही नहीं रही। धर्म सिंह अहलावत ने एक अन्य बिंदु सामने रखा। उन्होंने कहा कि खेती अकेली ऐसी जगह है जहां उपज पैदा करने वाला किसान खुद उसका भाव तय नहीं करता। जबकि उद्योग में प्लास्टिक जैसी चीज पर भी पचास प्रतिशत तक मुनाफा कमा लिया जाता है। ये देखा जाना चाहिए कि जिसने अपना खेत ठेके पर दे दिया है वो खतरे के बाहर है जबकि जो व्यक्ति मशीनें लगाकर अब उस पर खेती करेगा वो मुश्किल में होगा। सरिता ने समर्थन मूल्य की अवधारणा को सही ठहराया और कहा कि समर्थन मूल्य किसान को उत्पादन की तरफ प्रोत्साहित करने के लिए होता है। यदि समर्थन मूल्य न हो तो किसान मुश्किल में फंस सकता है। मज़दूर की लिए समाधान राशन-डिपो व्यवस्था में ही है। सर्च संस्थान के पूर्व निदेशक अविनाश सैनी ने चर्चा को आगे बढ़ाते हुए कहा कि अब सब कुछ बाजार के हवाले है। अगर गन्ने का समर्थन मूल्य है तो चीनी का क्यों नहीं है। सब्जियां इस व्यवस्था से बाहर क्यों हैं। क्या जो अनाज बी पी एल को मिलता है वो सच में खाने लायक है? अविनाश के अनुसार 'मज़दूरी बढ़नी चाहिए' इसके बढ़ने पर उत्पादन लागत फिर बढ़ेगी। ये एक पूरा चक्र है। और इस चक्र पर ज़्यादा गहरायी से बात होनी चाहिए। इसके बाद प्रवासी मज़दूरों के बच्चों के लिए एक स्कूल चलाने वाले सामाजिक कार्यकर्ता नरेश कुमार ने अनुभव सांझे किये उन्होंने महम के नजदीक अपने गांव से ही कई आकंड़े देकर खेती में होने वाले बेहद मामूली मुनाफे का जिक्र किया जो एक परिवार को चलाने के लिए बिलकुल नाकाफी है। उनके अनुसार आज खेती से सिर्फ उसका रिश्ता है जिसके पास आमदनी का कोई और स्रोत नहीं है। खेती का पूरी तरह नैगमीकरण (कॉर्पोरटाइजेशन) हो चुका है। सार्वजनिक वितरण प्रणाली की स्थिति न्यूनतम समर्थन मूल्य को मज़बूत करती है। मज़दूर की क्रय शक्ति बढ़ाई जानी चाहिए। इस सवाल की चर्चा का एक दौर पूरा होने के बाद सत्यपाल खोखर ने पुन: टिप्पणी की और कहा कि हम इस एक सवाल को अलग करके नहीं देख सकते। खेती की बहुत सारी समस्याएं जैसे रसायनों का इस्तेमाल ,घटती

जोत के बावजूद ट्रैक्टरों की बढ़ती बिक्री और बैंक ऋण के पहलू इससे जुड़े हैं। हमें मज़दूरी को न्यूनतम समर्थन मूल्य से इस तरह जोड़कर नहीं देखना चाहिए।

इसके बाद परिचर्चा में दूसरा प्रश्न यह लिया गया कि खेती के संकट से सबसे ज़्यादा प्रभावित कौन है। क्या ठेकेदार प्रभावित है या खेत मज़दूर या फिर खुदकाश्त-ज़मींदार या फिर ये सभी बराबर प्रभावित हैं ? इस पर सुधीर दांगी ने आरम्भ करते हुए कहा कि संकट में वो है जो खेत को ठेके पर लेता है। यानी किसी भी आपदा से काश्तकार किसान सबसे बुरी तरह प्रभावित होता है। सत्यपाल खोखर जी ने कहा कि वर्तमान में खेती में कई अलग अलग व्यवस्थाएं है। किसी में फसल आने पर उसका हिस्सा खेत मालिक को दिया जाता है। कहीं नकद और किसी में सांझे की खेती होती है। सबसे ज़्यादा प्रभावित होता है खेत को बंटाई पर लेने वाला। नरेश कुमार ने कहा कि संकट में सिर्फ वही है जिसके पास खेती के अलावा आय का कोई साधन है ही नहीं। वर्तमान हालात ये है कि ठेका भी कम होता जा रहा है जिसकी वजह खेत की उपजाऊ ताकत में कमी है। ठेका और उत्पादन दोनों गिरावट पर हैं। मदन भारती ने कहा कि मज़दूर और किसान में एक अंतर्विरोध तो है। पहले किसान के द्वारा मज़दूर की जो चिंता होती थी आज वो नहीं होती। मज़दूर औरत के प्रति भी व्यवहार में एक तनाव आया है। जिस आदमी ने ठेका लिया होता है वो जमीन से ज़्यादा से ज़्यादा मुनाफा कमाना चाहता है, क्योंकि सबसे ज़्यादा आर्थिक दबाव में वही होता है। सबसे ज़्यादा मार उसी पर होती है। धर्म सिंह अहलावत ने कहा कि मुझे सबसे ज़्यादा संकट 'मिट्टी' पर लगता है जो रसायनों के प्रयोग में फंसी हुई है। अविनाश सैनी ने कहा कि खेती करने वाले किसान के अलावा हम जमीन के मालिक को भी छोड़ नहीं सकते। अगर उसके खेत की मिटटी पर रसायनों का प्रयोग होता है तो वो भी लम्बे समय में प्रभावित तो होता ही है। जहाँ तक मज़दूर के संकट की बात है ,अगर वो संकट नहीं होता तो आज पंजाब-हरियाणा में प्रवासी मज़दूर की जगह स्थानीय मज़दूर काम पर होता। ये भी ध्यान रखना चाहिए कि भी मुआवज़ा ज़मीन पर आश्रित मज़दूर को नहीं मिलता।

परिचर्चा के अंत में प्रोफेसर महावीर नरवाल ने कहा कि बीते वर्षों में गैर-कृषि अर्थव्यवस्था बढ़ी है और लगातार बढ़ रही है। हमारी अर्थव्यवस्था की वृद्धि असल में व्यापार और उद्योग की वृद्धि है। कृषि संकट के समाधान का एक तरीका है कि सहकारी मॉडल को बढ़ावा दिया जाए और पूर्व राष्ट्रपति कलाम के कथनानुसार शहरों की सुविधाएं गाँव तक लायी जाएं।

कृषि के सवालों को एक बहुत लम्बे विमर्श की आवश्यकता है। ऐसी परिचर्चाओं को लगातार बढ़ाया जाए। इसे न सिर्फ किसानों, बल्कि यूनिवर्सिटियों-कॉलेजों में पढ़ने वाले विद्यार्थियों तक लेकर जाए ताकि किसानी का प्रश्न एक व्यापक प्रश्न बने।

सम्पर्क : 97294-82329

सुरेन्द्र आनन्द 'गाफिल' गजलें

देखो, हमारे हाथों मुल्क का इतना भी न बुरा हाल हो
कि शहीदों की रूहों को अपनी कुर्बानी का मलाल[1] हो

अवाम[2] का लहू-पसीना निचोड़ करते हैं ऐश रहनुमां[3]
दौलते[4]-मुल्क की हो लूट-खसोट, तो क्यों न बवाल हो

हुस्नो[5]-नकहत में इंसानियत की हो इजाफा[6] खूब पैहम[7]
फरिश्तों को भी हो रश्क[8] जिससे ऐसा उसका इकबाल[9] हो

आदमी का अपना भी हो कुछ उसूलों[10]-ईमां जिंदगी में
ये नहीं कि चले वैसा हरदम, जैसी वक्त की चाल हो

तस्वीर मुल्क की बदले न क्यों, 'गाफिल' गर हर शहरी[11] को
प्यारी रिज़्के[12] हराम नहीं, हरदम रिज़्के[13] हलाल हो

1. दुःख 2. साधारण जन, 3. नेता 4. देश की सम्पदा 5. सौंदर्य और सुगंध 6. बढ़ौतरी, 7. लगातार 8. किसी को हानि पहुंचाए बिना उस जैसा बनने की भावना 9. तेज, प्रताप 10. सिद्धांत और धर्म, विश्वास 11. नागरिक 12. वर्जित, निषिद्ध, 13. उचित

2

भ्रष्टाचार से है गिला जितना उतना ही क्या हमें प्यार नहीं
उसे कोसते तो हैं सब, पर अपनाने से किसी को इंकार नहीं

बहुत तेज-तर्रार को भी वक्तो-मतलब बना लेते हैं पालतू
आदमी वो बेशक अच्छा है, पर उसमें पहले-सी धार नहीं

जन्नत की ख्वाहिश है सबको, पर मिलती नहीं वो यहां किसी को
क्योंकि उसे पाने के लिए मरने को कोई भी तैयार नहीं

सूरज की किरणें इन्द्रधनुष के सातों रंगों में रक्श[1] करती हैं
तो, फिर जहां को इक रंग में रंगने की कोशिश क्या बेकार नहीं

मरने की दुआ करने वाले कहते कुछ हैं, चाहते कुछ हैं
दिल पे हाथ रख के कह दें वो, जिंदगी से उन्हें प्यार नहीं

शिकवे 'गाफिल' से भले हों तुम्हें, पर उसे समझना न कभी गैर
आओ करीब उसके और बताओ, क्या वो यारों का यार नहीं

1. नृत्य

92, एमसी कालोनी हिसार, मो : 9255555426

मेरे अंदर पढ़ने के प्रति उत्साह व जिज्ञासा बढ़ी

मैं 'देस हरियाणा' पत्रिका के चौथे अंक से जुड़ा हूं। मुझे 'देस हरियाणा' का यह अंक बहुत ही अच्छा लगा। जिससे मैं बहुत ही प्रभावित हुआ। इस अंक को पढ़कर मेरे अंदर पढ़ने के प्रति उत्साह व जिज्ञासा बढ़ी। मैं सबसे पहले प्रोफैसर डा. कृष्ण जी का धन्यवाद करता हूं। जिनकी वजह से मैं इस पत्रिका से जुड़ सका।

15 मार्च 2016 को जब डा. कृष्ण सरजी ने 'मैं मां के सपने पूरा करना चाहता था' कक्षा में पढ़ाया तो उसे सुनकर मेरे अंदर एक जिज्ञासा जागी कि जब हमारे महान नेता बाबा साहेब ने इतनी बड़ी कठिनाइयों का सामना करके देश का संविधान रच डाला तो हम ऐसा क्यों नहीं कर सकते। बाबा साहेब ने तो छुआछूत की इतनी बड़ी बीमारी को झेला है। अब तो छुआछूत की भी बीमारी कम हुई है। अब तो हर तरह की मौज (सुविधा) है, फिर भी हमारे युवा पढ़ने से डरते हैं।

सम्पादक महोदय, जो आप ने लेख 'युग पुरुष डा. भीमराव आम्बेडकर का जीवन-वृत' और 'सरदार भगत सिंह जी का जीवन-वृत' दिया है। इन सभी लेखों को पढ़ने से नोलेज बढ़ी है। इस पत्रिका के पढ़ने से मुझे बाबा साहेब और सरदार भगत सिंह जी के बारे में बहुत कुछ जानने को मिला। सावित्री बाई फुले की कविताएं' जाओ जाकर पढ़ो-लिखो, बनो आत्मनिर्भर, बनो मेहनती' और मुकेश यादव जी की रागनी 'नींद रात नै आई, कौन्या गात उचाटी छाई, हे डंग डंग पै बैरी, मान्नै सै मनै हे पराई' बहुत ही अच्छी लगी। मैं यह कहना चाहता हूं कि 'देस हरियाणा' पत्रिका के माध्यम से बहुत कुछ नया सीखने को मिला। मेरे अंदर पढ़ने की रूचि इसी पत्रिका के माध्यम से बढ़ी।

रोहित कंकरवाल गांव राजेपुर, पटहेड़ा, इंद्री (करनाल)

इस तरह संघर्ष तो कर सकते हैं।

मैंने मार्च-अप्रैल 2016 में छपा 'देस हरियाणा' काचौथा अंक पढ़ा। अनेक प्रकार के आलेख, कहानी, कविताएं, संवाद, युवा कलम, लघु कथा व रागनी को पढ़कर खासकर पं. मांगे राम की रागनी 'सौ-सौ पड़े, मुसीबत बेटा उम्र जवान म्हं' 'भगत सिंह कदे जी घबराज्या बंद मकान म्हं' पढ़कर जिंदगी का सच मालूम हुआ। यह सब पढ़ने का जुनून मेरे अंदर शहीद उधम राजकीय महाविद्यालय के हिन्दी विभाग के प्राध्यापक कृष्ण कुमार की वजह से ही मैं 'देस हरियाणा' पत्रिका से जुड़ पाया हूं। वे ही मेरे आदर्श रहे हैं। इस पत्रिका में सबसे अच्छा आलेख संजीव ठाकुर का 'मैं मां के सपने पूरा करना चाहता था। को पढ़कर ऐसा लगा कि जिस समय दलित वर्ग को पढ़ने की आजादी नहीं थी। फिर बाबा साहब डा. भीमराव अम्बेडकर स्कूल में कक्षा के बाहर जहां सवर्ण जाति के बच्चे जूते-चप्पलें उतारते थे। वहां बैठकर अपनी पढ़ाई की व एक दिन भारतीय संविधान लिख डाला। उस समय में और आज के समय में बहुत अंतर है। आशु वर्मा के लेख आठ मार्च की कहानी को पढ़कर लगा कि इस दिन ही महिलाओं को क्यों मान सम्मान दिया जाता है, अनेक प्रकार की कविताएं सावित्री बाई व लाल सिंह दिल की कविताएं। 'क्यूं मारे जा रहे हैं बेचारे बच्चे' व रामफल दयोरा के आलेख 'दलितों की आत्म छवि में क्रांतिकारी बदलाव' को पढ़कर दिल को सुकून तो नहीं मिला, पर इस तरह संघर्ष तो कर सकते हैं।

कंवरभान शहीद उधम सिंह राजकीय महाविद्यालय मटक माजरी (इंद्री) करनाल

लोक कथा

गुरु सेर, चेला सवा सेर

एक स्कूल का मास्टर अपने आलस के लिए इतना मशहूर था कि कोई भी अपना बच्चा उसके पास नहीं भेजना चाहता था। लेकिन एक दिन एक लड़का पढ़ने आया।

'अच्छी बात है।' मास्टर ने चिढ़कर कहा। उसको यह अच्छा नहीं लग रहा था कि काम करना पड़ेगा। 'तुम मुझसे ही पढ़ना चाहते हो तो जाओ, अपने लिए एक मेज ले आओ।'

'किसलिए?' लड़के ने पूछा।

'उसके ऊपर पान के पत्ते रखना है न, और अपने गुरुदेव की प्रार्थना करनी है। यह कायदा है।'

'हूं।' अपना सर खुजाते हुए, शिष्य ने कहा। 'तो मैं घुटनों और पंजों के बल खड़ा हो जाता हूं। मेरी पीठ पर पान के पत्ते रखे जा सकते हैं। इस तरह हम दोनों मेहनत से बच जाएंगे।'

यह सुन कर मास्टर लड़के के चरणों पर गिर पड़ा।

'शाबाश, बेटे! तुमको मुझसे कुछ भी सीखने की जरूरत नहीं है। मुझको जो विद्या सबसे अच्छी आती है, वह है काम करने से बचना। और इसमें तो तुम मेरे भी गुरु हो!'

-वियतनाम

समझदार लड़का

छोटा तारो स्कूल से घर आया तो उसने अपने पिता से पूछा, 'बापू अगर मुझे गणित में सौ में से सौ नंबर मिलें तो क्या करोगे?'

पिता ने कहा, 'वाह, सौ में से सौ! मैं तो बेहोश हो जाऊंगा।'

'यही तो मैं नहीं चाहता था। मैं नहीं चाहता था कि आप बेहोश हो जाएं, इसीलिए मैं सौ में से सिर्फ पचास नंबर लाया।'

-जापान

दलित साहित्यः एक अन्तर्यात्रा

कमलानंद झा

दलित साहित्य के लिए यह शुभ संकेत है कि अब हिंदी में भी लगातार आलोचनात्मक पुस्तकें प्रकाशित हो रहीं हैं। रचना के साथ-साथ आलोचना का यह तादात्मय दलित साहित्य के स्थायित्व के लिए उत्साहवर्धक है। इन पुस्तकों में दलित साहित्य पर पैनी, सचेत और गंभीर दृष्टि रखने वाले बजरंग बिहारी तिवारी की नयी पुस्तक 'दलित साहित्यः एक अन्तर्यात्रा' सहसा ध्यान खींचती है। क्योंकि बजरंग वर्षों से दलित साहित्य की चिंताओं, सरोकारों, अवधारणाओं तथा उसकी चिंतन प्रणाली से मुखातिब रहे हैं। दलित साहित्य का व्यापक अध्ययन, दूसरी भाषाओं के दलित साहित्य को देखने की बेचैनी उनके सुचिंतित लेखन का आधार रहा है। इनकी आलोचना का वैशिष्ट्य यह है कि जहां वे दलित साहित्य की आवश्यकता, महत्व, प्रासंगिकता और व्याप्ति का संधान पूरे दमखम के साथ करते हैं, वहीं दलित साहित्य की सीमाओं और भटकावों पर उंगली रखने से परहेज नहीं करते हैं। आलोचना का नीर-क्षीर विवेक बजरंग की आलोचना दृष्टि का मुख्य तत्व है।

'दलित साहित्यः एक अन्तर्यात्रा' में लेखक पुस्तक के आरंभिक हिस्से में दलित साहित्य की पृष्ठभूमि, उद्भव-विकास और उसकी अवधारणा पर अत्यंत महत्वपूर्ण सैद्धांतिक पक्षों से रु-ब-रु होते हैं। बात दलित साहित्य के विकास की हो या या उसकी पृष्ठभूमि की, बजरंग क्रमवार इतिहास लिखने की बजाय स्थितियों-परिस्थितियों के घात-प्रतिघात तथा उसकी द्वंद्वात्मकता को केंद्रीयता प्रदान करते हैं। यही वजह है कि वे बिल्कुल आरंभ में ही नोट करते हैं कि ''ऐतिहासिक दबाबों और सामाजिक-सांस्कृतिक परिस्थितियों के फलस्वरूप साहित्य जगत में नई धाराओं, प्रवृत्तियों, आंदोलनों का जन्म होता रहता है। साहित्य की गतिशीलता का यह सबसे बड़ा कारण है। किसी लेखक विशेष के कारण साहित्य में युगांतर नहीं होता, युगांतर होता है ठोस भौतिक परिस्थितियों में आनेवाले परिवर्तनों के आधार पर।'' (पृ. 4)

दलित साहित्य की पृष्ठभूमि की पड़ताल करते हुए बजरंग बिहारी बौद्ध - जैन साहित्य के साथ भक्तिकाल के निर्गुण भक्ति साहित्य तथा प्रगतिशील आंदोलन को मुख्य कड़ी के रूप में शिनाख्त ही नहीं करते बल्कि दलित लेखन की परंपरा और निरंतरता की ओर भी संकेत करते हैं। तात्पर्य यह कि आधुनिक काल की लोकतांत्रिक परिवेश में दलित साहित्य मुख्य धारा के साहित्य के समानान्तर उठ खड़ा हुआ लेकिन उसकी उपस्थिति और अनुगूंज भारतीय संस्कृति और चिंतन परंपरा में हमेशा से रही है। यह दीगर प्रश्न है कि ब्राह्मणवादी कील-कवच ने उसे हाशिये पर धकेले रखा। ज्योतिबा फुले तथा बाबासाहब आंबेडकर आदि ने सारी लानते-मलालतें सहने के बावजूद दलित चिंतन और सरोकार को भारतीय जमीन पर अस्तित्व प्रदान करने में सफल रहे।

लेखक ने पुस्तक में दलित तथा दलित साहित्य किसे कहा जाए आदि विषय पर सूक्ष्मता से विचार किया है। इसमें दो राय नहीं कि यह विचार दलित साहित्य के अध्ययन संबंधी कई गुत्थियों, भ्रांतियों और द्वंद्वों का परिष्कार कर दलित साहित्य को समझने की एक साफऔर समग्रतापूर्ण दृष्टि प्रदान करती है। पुस्तक में सन् 1990 में हुए कुछ राजनीतिक बदलाव को दलित चेतना के विस्तार के लिए महत्वपूर्ण माना गया है। मंडल कमीशन, राम जन्मभूमि के संदर्भ में उग्र धार्मिकता तथा वैश्वीकरण-उदारीकरण ने दलित चिंतन को नये ढंग से गढ़ने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाया।

बजरंग बिहारी तिवारी ने वेदना, नकार और विश्लेषण को दलित साहित्य का तीन महत्वपूर्ण पड़ाव माना है। 'नकार' और 'विश्लेषण' को लेखक कदाचित इसलिए महत्पूर्ण मानते हैं क्योंकि जहां यह आधुनिक दलित चित्त का परिचायक है, वहीं दलित जागरण का कारण भी। 'वेदना' की व्याप्ति और अभिव्यक्ति बौद्ध जैन साहित्य से लेकर भक्ति साहित्य तक में देखने को मिलती है लेकिन 'नकार' और 'विश्लेषण' आधुनिक दलित चिंतन और साहित्य की देन है। 'नकार' के महत्व को रेखांकित करते हुए लेखक बजरंग लिखते हैं, 'वेदना की अभिव्यक्ति जरूरी है लेकिन सिर्फ इतने से मकसद पूरा नहीं होता। जिस समाज व्यवस्था ने यातना के कुएं में ढकेला है उसे नकारना बहुत आवश्यक है। 'नकार' दलित विमर्श का आजमाया हुआ अस्त्र है। गुलामी का नकार, यंत्रणा से नकार, समस्त सवर्णवादी मूल्यों, मान्यताओं का नकार दलित लेखनी की पहचान है। दलित रचनाकार जानता है कि उसके पूर्वजों ने चुपचाप देखा झेला लेकिन नकारने की हिम्मत नहीं दिखा सके, इसलिए यातना की धारा अबाधित रही।' (पृ. 26)

लेखक दलित सहित्य में आत्मालोचन की प्रवृत्ति को इस साहित्य के विकास का एक आवश्यक प्रस्थान बिदु मानते हैं। बकौल लेखक, सब पर उंगुली उठाने वाले दलित

लेखकों ने अपने भीतर झांकने की भी हिम्मत दिखायी। उनके आत्मकथनों में आत्मालोचन की प्रवृत्ति विशेष तौर पर दिखायी देती है। आत्मालोचन के जिन तीन बिंदुओं को लेखक ने रेखांकित किया है, वे हैं 1 वैयक्तिक स्तर पर अपनी विफलताओं चूकों का स्वीकार, 2 आंतरिक जातिवाद की समस्या पर विचार, 3 दलित स्त्री की तिहरी उपेक्षा पर चिंता। आत्मालोचन के इन सभी मुद्दों पर उदाहरण और साक्ष्य के साथ अपनी बात कहने की कोशिश पुस्तक में की गई है।

पुस्तक में स्वतंत्र अध्याय के माध्यम से दलित साहित्य और आंबेडकर दर्शन के आपसी रिश्ते को समझने का प्रयास किया गया है। लेखक ने पूरी वैचारिक प्रतिबद्धता के साथ सिद्ध किया है कि दलित साहित्य का आधार आंबेडकर दर्शन ही है। आंबेडकर के विचार से पल्लवित-पुष्पित होकर ही सभी भाषाओं का दलित साहित्य अपना रूपाकार ग्रहण करता है। पूरे अध्याय में लेखक आंबेडकर दर्शन की सीमाओं से बचने का प्रयास किया है। यह विडंबनापूर्ण तथ्य है कि 'मूर्तिभंजक' आंबेडकर को कुछ दलित रचनाकारों ने देवी-देवता के समान निरा मूर्ति में तब्दील कर दिया है। राष्ट्र और संविधान की तरह आंबेडकर को आलोचना से परे मान लिया गया है। और यह मानना दलित साहित्य के लिए नुकसानदेह है। गेल ओमवेट, सुभाष गाताडे और आनंद तेलतुंबडे जब दलित आंदोलन और आंबेडकर की भूमिका पर अत्यंत गंभीरतापूर्वक आलोचनात्मक तरीके से विचार करते हैं तो उनके खिलाफ लामबंदी की कोशिश की जाती है। प्रत्येक महान व्यक्ति के संघर्ष में सफलता-असफलता, अन्तर्विरोध हो ही सकता है। उन अंतर्विरोधों पर बात करना कहीं से भी उस महान व्यक्ति की निंदा नहीं होती, इस तथ्य को संवेदनशीलता से दलित साहित्य के परिप्रेक्ष्य में समझने की जरूरत है।

पुस्तक में अत्यंत व्यवस्थित और सिलसिलेवार ढंग से दलित कविता, दलित कहानी और दलित आत्मवृत्त पर अलग-अलग विमर्श प्रस्तुत किया गया है। जयप्रकाश लीलावान, मलखान सिंह, ओमप्रकाश वाल्मीकि के साथ-साथ नवोदित दलित कवियों पर लेखक ने सविस्तार विचार किया है। कहने की आवश्यकता नहीं कि ये कवि हिंदी दलित कविता के प्रतिनिधि स्वर माने जा सकते हैं। लेखक इन कविताओं को आशा भरी नजरों से देखते हुए लिखते हैं, ''पिछले दो दशकों से हिंदी दलित कविता की परिधि में आशातीत विस्तार हुआ है। परस्पर मिलते-टकराते कई आयाम इस परिदृश्य को समृद्ध करते हैं।''कई दलित रचनाकार भूमंडलीकरण से उत्पन्न बाजारवाद को दलितों के लिए श्रेयस्कर मानते हुए नारा देते रहे हैं कि 'दलितों को भूमंडलीकरण का स्वागत करना चाहिए।' लेकिन इस विचार के विपरीत दलित कवि जयप्रकाश लीलावान पूंजीवाद से निःसृत भूमंडलीकरण के शातिराना स्वभाव से पाठकों को आगाह करते हैं। इस संदर्भ में लेखक ने उनकी लंबी कविता 'समय की आदमखोर धुन' की महत्ता को उद्घाटित करते हुए उसे 'भारतीय कविता का प्रतिनिधि स्वर' घोषित किया है। बकौल लेखक ''यथार्थ के सुनियोजित आभासीकरण को पहचानती हुई यह कविता उन क्रूरताओं और नृशंसताओं को चिह्नित करती है जिसे 'तकनीक सज्जित निरकुंश वर्चस्व' ने चकाचौंधी आवरण से ढक दिया है। (पृ. 62) मलखान सिंह को लेखक ने 'घनीभूत दलित संवेदना' का कवि कहा है। ओमप्रकाश वाल्मीकि के लिए वे लिखते हैं, ''बदले हुए वैश्विक और राष्ट्रीय संदर्भों में नई चुनौतयों की पहचान, उनसे जूझने का रचनात्मक संकल्प और तदनुसार विजन निर्माण ही वाल्मीकि के विवेकपूर्ण काव्य यात्रा की पहचान है।''

बजरंग बिहारी तिवारी दलित कविता के सचेत पाठक पहले हैं आलोचक बाद में। एक सच्चे पाठक की यही सजग चेतना दलित कविता को सही परिप्रेक्ष्य में देख पाने की दृष्टि दे पाती है। यही कारण है कि वे इन कविताओं की सीमाओं और संभावनाओं की ही पड़ताल नहीं करते बल्कि कविता की भविष्योन्मुखता पर भी गंभीरता से विचार कर ले जाते हैं। उनके अनुसार 'अनुभव की प्रामाणिकता' दलित कविता का नियामक तत्व तो है लेकिन अनुभव के साथ 'विजन' का होना आवश्यक है। विजन प्रामाणिक अनुभवों को एक परिप्रेक्ष्य देने से उभरता है। परिप्रेक्ष्य देने का मतलब है अनुभवों से परे देख सकने की क्षमता। अनुभव जगत को अतिक्रांत कर सकने का साहस'' अनुभव के साथ अध्ययन का योग कविता को अन्तर्दृष्टि प्रदान करता है।

'दलित साहित्य: एक अन्तर्यात्रा' में जहां दलित कहानी की सैद्धांतिकी पर बात की गई है वहीं लेखक ने कुछ उम्दा कहानियों की टोह भी ली है। दलित कहानी के साम्प्रतिक परिदृश्य से लेखक आश्वस्त दिखते हैं। किंतु आरंभिक दलित कहानियों में पूर्व निर्मित ढांचे में कुछ स्थितियों और चरित्रों को डाल देने की प्रवृत्ति अधिक रही है। साम्प्रतिक दलित कहानियां भूमंडलीकरण को ललचायी नजरों से न देखकर भेदक दृष्टि से देखती है और भूमंडलीकरण की चुनौतियों से टकराती हैं। इस दृष्टि से कैलाश वानखेड़े की कहानी 'कितने बुश कितने मनु' के मुरीद हैं लेखक। उक्त कहानी को इस विषय पर लिखी गई पहली 'बड़ी रचना' मानते हुए लिखते हैं, ''अपनी सीमित जानकारी के आधार पर कह सकता हूं कि तमाम भारतीय भाषाओं की दलित कहानी लेखन में ऐसे वैश्विक परिप्रेक्ष्य और गहरी अन्तर्दृष्टि वाली कहानी पहले नहीं आई है।''

लड़कियां

उम्मीदों के साथ खिलखिलाती
अच्छी लगती हैं
ये लड़कियां।

हर मुश्किल का हिम्मत से सामना करती
अच्छी लगती हैं
ये लड़कियां।

कितने रिश्तों को निभाती
अच्छी लगती हैं
ये लड़कियां।

अपने अधिकारों के लिए लड़ती
अच्छी लगती हैं
ये लड़कियां।

मोनिका (15101), बीए प्रथम वर्ष 2016

(पृष्ठ 121) टेकचंद की कहानी 'दौड़' को वे इसी कड़ी की श्रेष्ठ कहानी मानते हैं।

जेंडर के सवालों से जबाव-तलब साम्प्रतिक दलित कहानियों की अन्यतम विशेषता है। लेखक के अनुसार, ''दलित स्त्रियों की संगठनात्मक सक्रियता, संघर्षपूर्ण लेखन और प्रतिरोधी चेतना ने दलित विमर्श में जेंडर के सवालों के प्रति सजगता, संवेदनशीलता और सकारात्मक प्रतिक्रिया को जन्म दिया है। डिटेलिंग दलित कहानी को विशिष्ट बनाता है। लेखक के मतानुसार नये दलित कहानीकारों ने परिवर्तित परिस्थितियों के मद्देनजर ब्यौरों के विनियोजन, पुनर्नियोजन तथा संयोजन की जरूरत महसूस की। डिटेल्स से ज्यादा उन्हें रखने-रचने वाली दृष्टि को महत्व दिया। ब्यौरे के साथ इन कहानियों की भाषिक प्रौढ़ता भी लेखक को अभिभूत करती है, ''कैलाशचंद्र चौहान की प्रवाहपूर्ण भाषा, अनिता भारती की तल्ख स्त्री भाषा, टेकचंद की सुगठित कथा भाषा और कैलाश वानखेड़े की अशेष सर्जनात्मक भाषा पर दलित कहानी उचित ही गर्व कर सकती है।'' (पृष्ठ 126)

दलित साहित्य की पहचान मुख्यत: आत्मकथनों से होती है। पुस्तक में दलित आत्मवृत्त पर कुछ महत्वपूर्ण अध्याय हैं। लेखक बजरंग बिहारी के अनुसार दलित आत्मवृत्त सर्वाधिक मुखर रूप से दलित साहित्य की चुनौतियों से मुठभेड़ करती प्रतीत होती है। कुछ विद्वान विदुषियों का मानना है कि आत्मकथा लेखकों को 'अतीत प्रेम' से मुक्त होना चाहिए, तभी वे उत्तम आत्मकथा लिख पायेंगे। लेखक इस अतीत मुक्ति को दूसरी तरह से देखने की सिफारिश करते हैं, ''श्रेष्ठ आत्मकथाओं के लिए अतीत को भुला देना या अतीत से भागना समस्या का समाधान नहीं है बल्कि अतीत की जटिल गतिशीलता को समझकर ही उसमें रमा जा सकता है।'' आपको स्वयं अपनी स्मृतियों की जिम्मेदारी लेनी होगी, अपने अतीत के तहों में उतरना होगा, उसकी पुनर्रचना करनी होगी। इस पुनर्रचना का नाम ही आत्मकथा है।'' (पृष्ठ 155)

पुस्तक में संकलित 'दलित आत्मवृत्त:स्वरूप विश्लेषण' मेरी संक्षिप्त जानकारी में दलित आत्मकथा पर लिखी गई सर्वश्रेष्ठ आलोचनाओं में एक है। उक्त आलेख में दलित आत्मकथाओं का ऐतिहासिक संदर्भ, उसका महत्व, उसके अन्तर्वस्तु का वैशिष्ट्य, उसकी संरचनात्मकता, स्थापत्य, शिल्प-भाषा के अतिरिक्त स्त्री आत्मवृत्त की संभावनाएं और जरूरत आदि को अत्यंत संश्लिष्ट रूप में सामने रखने का प्रयास किया गया है। यह आलेख सर्वप्रथम तेजसिंह संपादित 'अपेक्षा' में सन् 2010 में प्रकाशित हुआ था। इस बीस पृष्ठीय विस्तृत आलेख में लेखक ने दलित आत्मकथाओं की कुछ सीमाओं की ओर भी संकेत किया। मूल रूप से दलित आत्मकथाओं की विश्वसनीयता पर सवाल खड़े करते हुए लिखा गया कि, ''क्या आत्मवृत्तों की प्रमाणिकता जांची जा सकती है? क्या उन्हें जांचा जाना चाहिए? क्या अभी तक कोई आंतरिक मूल्यांकन प्रणाली विकसित हो पायी है? हम यह कैसे तय करें कि कोई अनुभव विशेष, कोई जीवन प्रसंग कितना सच और कितना अतिरंजित?'' (पृष्ठ 189) लेखक के इस एक जेन्यून सवाल ने दलित साहित्य में हलचल मचा दिया और लेखक के विरुद्ध कुछ दलित लेखकों मोर्चा खोल दिया। आश्चर्यजनक बात यह हुई कि ओमप्रकाश वाल्मीकि सरीखे 'रेशनल' लेखक भी इस मोर्चे में शामिल हो गए। उन्होंने इस सवाल के खिलाफ जनसत्ता में 'दलित साहित्य और पुरोहितवाद' शीर्षक से एक फतवापरक आलेख लिखा। जिसका अत्यंत विनम्र जबाव जनसत्ता में ही लेखक ने 'पुरोहित कौन' शीर्षक से दिया।

पुस्तक में 'जूठन' और 'मेरा बचपन मेरे कंधों पर' की स्वतंत्र समीक्षा प्रस्तुत की गई है। लेखक के अनुसार इस तरह की आत्मकथाएं साहित्य के 'आनंद और विनोदवादी' स्वरूप, हेतु और लक्षण को प्रश्नांकित करती हैं। अब तक आनंदवादी साहित्य सत्ता व्यवस्था पर काबिज लोगों की संपत्ति रहा है, ऐसे साहित्य का एकमात्र प्रकार्य विनोद पैदा करने तक सीमित किया गया। जरूरत साहित्य की इस विनोदमूलक पकृति के रूपांतरण की है। 'विनोद' को 'कचोट' में तब्दील करना इन्हीं लोगों के बूते संभव है, जिन्होंने अनुभव दग्ध जीवन जीया है। (पृष्ठ 193) दरअसल यह विनोदप्रिय साहित्य जिंदगी में सकून पैदा करता है। जूठन के लिए लेखक लिखते हैं, ''जूठन इसी सुनियोजित सकून के पवित्र दुर्ग में विक्षोभ पैदा करने का काम करता है।'' 'दलित साहित्य:एक अन्तर्यात्रा' दलित साहित्य को समझने की दृष्टि तो देती ही है साथ ही दलित साहित्य के वृहत्तर सरोकार से भी साक्षात्कार कराती है।

पुस्तक-'दलित साहित्य: एक अन्तर्यात्रा
लेखक- बजरंग बिहारी तिवारी
प्रकाशक-नवारुण सी-303, जनसत्ता एपार्टमेंट, सेक्टर-9 वसुंधरा, गाजियाबाद, मूल्य-160
मो. 8521912909

●

हरियाणवी कविता

भूप सिंह भारती

होळी म्ह

आया फागण लागे नाचण,
भरकै मस्ती का घूट होळी म्ह।
नार गजबण चढ्या जोबण,
सबनै करै शूट होळी म्ह।।
बणाकै डान्डा बीच बगड़ म्ह,
रोप्या कैर का खूंट होळी म्ह।।
पूजै,मंगलावै,भून्द के लावै,
जौ के बूंट होळी म्ह।
नाचै, कूदै, होळी गावै,
होवै हांस्सी की छूट होळी म्ह।
छोरी छापरी हुई रंग रंगीली,
संग सखी सहेली लगे क्यूट होळी म्ह।
सच्चाई का दामन थामो,
छोडो छल कपट अर झूठ होळी म्ह।
इक दूजे ने गळे लगाओ,
आपस की मेटो फूट होळी म्ह।
हिन्दू ,मुस्लिम, सिख, इसाई ,
बणाओ भाईचारा अटूट होळी म्ह।
कहै भारती प्यार बांटो,
पी कै घृणा का घूंट होळी म्ह।

मो : 9416237425

पहेलियां

निशा 'सत्यजीत'

1. एक बीलांद को कोठ्ठो,
ज्हं म्हं चार भैंस एक झोट्टो।

2 इमरत तै मीठ्ठी, नीम तै कड़ी।
बत्तीसां कै बीच पड़ी।।

3 अहमद मांगे तहमद,
सूफी मांगे धोती।
इतणा कपड़ा कहां से लाया,
मोमदिन मांगे टोपी ?

4 अरड़-मरड़ की लाकड़ी,
गोते खाती जाय।
राज्जा बुझै राणी नै
यो के जिनावर जाय।।

5 एक महल मैं दो भाई।
उन्नै बांध्या एक लुगाई।।

6 बोई थी जामी नहीं
धरती राख्यो न बीज
सब तै थी ऊँची बढ़ी,
बता कौण सी चीज।।

7 सुबह-शाम मैं काम करूं।
पूरे दिन आराम करूं।।

8 एक रांड चंगी-मंगी
छह नाडा लटकावै।
मर्दां बीच कबड्डी घाल्ले,
वा भी नार कहावै।

9 सांझै तो पैदा हुई,
रात नै हुई जवान।
दिन लिकड़े बुढ़ी हुई,
दोफर तजै प्राण।।

10 बोई काकर जामै झाड़।
लाग्गे नींब्बू खिला अनार।।

11 सांझै तो बेट्टो बणयो,
आध्धी रात को बाप।
दिन लिकड़ै माता बणी,
घर-घर डोलै आप।।

12 बिन चुल्हा, बिन कढ़ाई।
बिन आग मिठ्ठी लापसी बनाई।

13 पाहड़ां तै आए बुगले।
हरी टोपी लाल झुगले।।

14 टांड पै टांड, टांड पै बुहारी।
बता तो बता, ना तेरी मां लुहारी।।

15 धोळी घोड़ी, झाबर पूंछ।
ना बेरा तो तेरी मां नै पूछ।

16 तळै बाप ऊपर माई।
भीतर बाहण बाहर भाई।।

17 छोट्टी-सी चीज मटकती जा।
गज का नाड़ा लटकाइ जा।।

18 छोट्टा-सा छोरा पेट पै सोवै।
डंडा लाग्गै जीब्बै रोवै।

19 छोट्टा-सा छोरा अर टुलम्टुल।
कांधै धोती, माथै फूल।।

20 च्यार खड्या च्यार पड्या।
एक-एक म्ह दो-दो बड्या।।

●

उत्तर

1 हाथ का पंजा, 2 जीभ, 3 मूली, 4 हवाई जहाज, 5 सांकल, 6 अमरबेल, 7 झाड़ू, 8 तराजू, 9 ओस, 10 कपास, 11 दूध, दही, लस्सी, 12 शहद, 13 मिर्च, 14 मूंछ, 15 मूली, 16 मटका, 17 सुई, 18 ढोलक, 19 मूर्गा, 20 चारपाई